गुप्त अभिलेख

𑀕𑀼𑀧𑁆𑀢 𑀅𑀪𑀺𑀮𑁂𑀔

डॉ॰ वासुदेव उपाध्याय

बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी
पटना-३

CC-0. [Sarai(CSDS)] Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

गुप्त अभिलेख

[Gupta Abhilekha]

लेखक

डॉ० वासुदेव उपाध्याय

(अवकाशप्राप्त प्रोफेसर, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, पटना विश्वविद्यालय)

मंगला प्रसाद पारितोषिक, जोधसिंह पुरस्कार, बंगाल हिंदी मंडल पुरस्कार,

हीरालाल स्वर्णपदक एवं गुलेरी पदक विजेता

बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी

पटना–८०००० ३

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

© बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, १९७४

विश्वविद्यालय-स्तरीय ग्रंथ-निर्माण-योजना के अंतर्गत भारत-सरकार (शिक्षा तथा समाज-कल्याण-मंत्रालय) के शत-प्रतिशत अनुदान से बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी द्वारा प्रकाशित ।

प्रकाशित ग्रंथ संख्या ९९

प्रथम संस्करण : अप्रिल, १९७४
२०००

मूल्य : ५१·०० (एकावन रुपये) मात्र

प्रकाशक :
बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी,
कदमकुआँ, पटना–८००००३

मुद्रक :
श्री कामेश्वर प्रसाद
कालिका प्रेस,
पटना–८००००४

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

प्रस्तावना

शिक्षा-संबंधी राष्ट्रीय नीति-संकल्प के अनुपालन के रूप में विश्वविद्यालयों में उच्चतम स्तरों तक भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा के लिए पाठ्य-सामग्री सुलभ करने के उद्देश्य से भारत-सरकार ने इन भाषाओं में विभिन्न विषयों के मानक ग्रंथों के निर्माण, अनुवाद और प्रकाशन की योजना परिचालित की है। इस योजना के अंतर्गत अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं के प्रामाणिक ग्रंथों का अनुवाद किया जा रहा है और मौलिक ग्रंथ भी लिखाए जा रहे हैं। यह कार्य भारत-सरकार विभिन्न राज्य-सरकारों के माध्यम से तथा अंशतः केंद्रीय अभिकरण द्वारा करा रही है। हिंदी-भाषी राज्यों में इस योजना के परिचालन के लिए भारत-सरकार के शत-प्रतिशत अनुदान से राज्य-सरकार द्वारा स्वायत्तशासी निकायों की स्थापना हुई है। बिहार में इस योजना का कार्यान्वयन बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी के तत्त्वावधान में हो रहा है।

योजना के अंतर्गत प्रकाश्य ग्रंथों में भारत-सरकार द्वारा स्वीकृत मानक पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया जाता है, ताकि भारत की सभी शैक्षणिक संस्थाओं में समान पारिभाषिक शब्दावली के आधार पर शिक्षा का आयोजन किया जा सके।

प्रस्तुत ग्रंथ **'गुप्त अभिलेख'** डॉ० वासुदेव उपाध्याय की मौलिक कृति है, जो भारत-सरकार के शिक्षा तथा समाज-कल्याण-मंत्रालय के शत-प्रतिशत अनुदान से बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी द्वारा प्रकाशित की जा रही है। यह ग्रंथ विश्वविद्यालय-स्तर के विद्यार्थियों के तथा इतिहास के विद्वानों और अध्यापकों के लिए महत्त्वपूर्ण होगा, ऐसा विश्वास है।

आशा है, अकादमी द्वारा मानक ग्रंथों के प्रकाशन-संबंधी इस प्रयास का सभी क्षेत्रों में स्वागत किया जाएगा।

(हस्ताक्षर)

पटना,
दिनांक ८-४-७४

अध्यक्ष
बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

प्रकाशकीय

प्रस्तुत ग्रंथ **गुप्त अभिलेख** डॉ० वासुदेव उपाध्याय की मौलिक रचना है। डॉ० उपाध्याय अनुभवी लेखक और प्रस्तुत विषय के विद्वान हैं। उन्होंने यह ग्रंथ परिश्रमपूर्वक लिखा है। आशा है, यह ग्रंथ विश्वविद्यालय-स्तर के इतिहास-विषय के विद्यार्थियों के लिए लाभदायक होगा।

इसका मुद्रण-कार्य **कालिका प्रेस,** पटना-८००००४ ने और प्रूफ-संशोधन का कार्य श्री गोपीरमण चौधरी ने किया है। प्रूफ पर मुद्रणादेश लेखक ने स्वयं देने की कृपा की है। आवरण-चित्र का निर्माण और आवरण की छपाई का काम **नेशनल ब्लॉक एण्ड प्रिंटिंग वर्क्स** पटना-८००००४ ने किया है। ये सभी हमारे धन्यवाद के पात्र हैं।

बैजनाथ सिंह विनय

पटना,
दिनांक ८-४-७४

कार्यकारी निदेशक
बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

सांकेतिक शब्दों की तालिका

अ०	= अध्याय
आ० स० रि०	= आर्क्योलाजिकल सर्वे रिपोंट
ई०	= ईसवी
ई० स०	= ईसवी सन्
इ० ए०	= इंडियन एन्टीक्वेरी
इ० हि० क्वा०	= इंडियन हिस्टोरिकल क्वार्टर्ली
का० इ० इ० भा०	= कारपस इंशक्रुपशनम इंडिकेरम भाग
कै० आ० म्यू०	= कैटलाग आर्क्योलोजिकल म्यूजियम
गु० सं०	= गुप्त संवत्
गु० ले०	= गुप्त लेख (फ्लीट)
ज० ए० सो० बं०	= जरनल आफ एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल
जे० बि० रि० सो०	= जनरल आफ बिहार रिसर्च सोसाइटी
जे० आ० ए० एस०	= जरनल आफ रायल एशियाटिक सोसाइटी
पृ०	= पृष्ठ
प्रा० भा० अ० अ०	= प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन
भा०	= भाग
मा० सं०	= मालव संवत्
म० प्र०	= मध्य प्रदेश
मे० आ० स० रि० सं०	= मेमायर आफ आर्क्योलोजिकल सर्वे रिपोर्ट संख्या
बौ० ध० सू०	= बौधायन धर्म सूत्र
वि०	= विक्रमी
श० का०	= शक काल
से० बु० इ०	= सेक्रेड बुक आफ दि इस्ट
सं०	= संवत्

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

दिवंगत

गुरुवर

डॉ० अनंत सदाशिव अलतेकर

की

पुण्य

स्मृति में

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

दो शब्द

वर्षों पहले की घटना है। मेरी पुस्तक "गुप्त साम्राज्य का इतिहास" पर मंगला प्रसाद पारितोषिक मिल चुका था। प्रयाग हिंदी साहित्य सम्मेलन की एक गोष्ठी में श्रद्धेय बाबू श्री पुरुषोत्तमदास टंडन ने मुझ से कहा कि गुप्तवंश के इतिहास के साधन सामग्री पर भी एक पुस्तक होनी चाहिए। अभिलेख प्राचीन भारतीय इतिहास के मूल्यवान साधन माने जाते हैं। अतएव मैंने निर्णय किया कि गुप्त कालीन अभिलेखो पर एक ग्रंथ तैयार करूँगा। समय के थपेड़ो में वह निर्णय धूमिल सा पड़ गया। सामाजिक तथा साहित्यिक कार्यों में संलग्न हो जाने के कारण गुप्त अभिलेख की पांडुलिपि शीघ्र तैयार न हो सकी। डॉ० राम प्रसाद त्रिपाठी (भूतपूर्व कुलपति, सागर विश्वविद्यालय) जब उत्तर प्रदेश हिंदी समिति के अध्यक्ष हुए, तो डॉ० साहब ने इसे प्रकाशित करने का वचन दिया। किंतु अनेक कारणो से यह ग्रंथ प्रकाशित न हो पाया। अब बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी (पटना) उसे प्रकाशित कर रही है, यह प्रसन्नता की बात है।

गुप्त-अभिलेखों का संपूर्ण संग्रह अद्यावधि किसी भाषा में भी वर्तमान नहीं है। फ्लीट महोदय ने कारपस इंशक्रपशनम इंडिकेरम (भा० ३) में गुप्त लेखों का संग्रह किया है परंतु उन दिनों समस्त लेखों का समावेश संभव न था। डॉ० सरकार के सेलेक्ट इंशक्रपशंस में उत्तर गुप्तकालीन अभिलेखों को स्थान न मिल सका। डॉ० राजबली पाण्डेय द्वारा संपादित ऐतिहासिक तथा साहित्यिक लेखों का एक संग्रह चौखंबा संस्कृत सिरीज, वाराणसी से प्रकाशित हुआ है, परंतु इसकी भी वही अवस्था है। "प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन" नामक पुस्तक में मैंने राजवंशों के प्रतिनिधि अभिलेखों का ही विवेचन किया है।

गुप्त-अभिलेखों को एक साथ प्रकाशित करना इतिहास के विद्यार्थियों के लिए नितांत आवश्यक था। इसी विचार से प्रेरित होकर तथा टंडन जी के समक्ष कथित संकल्प को साकार बनाकर विद्वानों के सम्मुख 'गुप्त-अभिलेख' को प्रस्तुत करते हर्ष हो रहा है।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

इस पुस्तक के चार खंड हैं—

(१) **ऐतिहासिक भूमिका**—जिसमें गुप्तवंश से संबंधित समस्त पहलुओं पर विश्लेषणात्मक विवेचन किया गया है।

(२) **मूल लेख**—मूल लेख तिथि-क्रम के अनुसार उपस्थित किए गए हैं। गुप्त प्रशस्तियाँ किसी न किसी संवत् से संबद्ध हैं, अतः उनके तिथि का निर्णय सरल हो जाता है। लेखों में शब्दों के विभिन्न पाठों का विश्लेषण तीसरे खंड में यथास्थान दिया गया है।

(३) **टिप्पणी**—जहाँ तक लेखक की जानकारी है, इस प्रकार की विशद् टिप्पणी किसी ग्रंथ में उपलब्ध नहीं है। भौगोलिक, ऐतिहासिक तथा धार्मिक शब्दों या वाक्यों पर सुचारु रूप में विस्तृत व्याख्या उपस्थित की गई है। प्रायः व्याख्या अपेक्षित शब्दों पर टिप्पणियाँ मिलेगी। गुप्त मुहरों तथा सिक्कों पर उत्कीर्ण लेखों का अनुशीलन गुप्त इतिहास के समझने में अधिक सहायक होगा।

(४) **हिंदी अनुवाद**—हिंदी प्रेमियों को अभिलेखों में निहित ज्ञान-राशि की जानकारी इससे हो जायगी। कृपालु पाठकों को यदि उनमें कुछ आपत्ति प्रकट हो, तो क्षमा करेंगे।

परिशिष्ट में गुप्त साम्राज्य की राजधानी–प्रयाग से संबंधित समस्त प्रमाणों को प्रस्तुत करने का प्रयास है एवं इस गंभीर विषय पर संपूर्ण साक्ष्यों का अनुशीलन प्रार्थित है। स्कंदगुप्त के सुपिया अभिलेख का मूल भी उपस्थित किया गया है। भौगोलिक स्थानों की तालिका इसकी एक विशेषता है। इन शब्दों को समाप्त करने से पूर्व अपने पूजनीय भ्राता आचार्य पं० बलदेव उपाध्याय (भूतपूर्व, निदेशक, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय) का साधुवाद करता हूँ जिन्होंने मेरे जीवन में भारतीय संस्कृति के प्रति अनुराग पैदा किया। पौत्र राजेश कुमार आशीर्वाद का भाजन है जिसने अनुक्रमणी तैयार कर मेरा कार्य सरल कर दिया।

इस कथन को समाप्त करने से पहले मैं बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी के पदाधिकारियों का आभार मानता हूँ जिनकी तत्परता से यह ग्रंथ शीघ्र सुंदर रूप में प्रकाशित हो सका। भारतीय पुरातत्त्व विभाग के पुरालेखवेत्ता के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिनकी कृपा से पुरालेख का निगेटिभ फोटो ग्राफ एवं सुपिया लेख का मूल प्राप्त हो सका।

रामनवमी,
चैत्र शुक्ल २०३१

वासुदेव उपाध्याय

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

विषय-सूची

पृष्ठ

दो शब्द ७

अध्याय १—गुप्तवंश का उदय तथा स्थान १–४

उदय १

जाति ३

स्थान ४

अध्याय २—गुप्तवंश का संक्षिप्त इतिहास ५–२६

आदि पुरुष-गुप्त ५

प्रथम चंद्रगुप्त ६

समुद्रगुप्त ७

द्वितीय चंद्रगुप्त ९

विजय १०

प्रथम कुमारगुप्त ११

स्कंदगुप्त १३

उत्तराधिकार का प्रश्न १४

पुरुगुप्त एवं उसके वंशज १५

दो शाखाएँ १६

बुधगुप्त का शासन १८

विष्णुगुप्त से भानुगुप्त १९

वैन्यगुप्त २०

उत्तर गुप्तनरेश २१

आदित्यसेन २३

गुप्तवंशवृक्ष २५

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

पृष्ठ

अध्याय ३—अभिलेख के आधार २७–३४
प्रस्तर एवं स्तंभ २७
गुहा लेख २८
ताम्रपत्र ३१
मुहरें ३२

अध्याय ४—अभिलेखों से इतिहास ज्ञान ३५–४८
युद्धगाथा एवं राज्यविस्तार ३५
वंश वृक्ष ३६
समकालीनता ३७
राजतंत्र एवं प्रजातंत्र ३८
शासन-पद्धति ४०
केंद्रीय शासन ४१
'कर' की व्यवस्था ४३
प्रांत ४५
विषय ४६
ग्राम ४७

अध्याय ५—गुप्तकालीन समाज ४९–५९
वर्ण व्यवस्था ४९
कायस्थ ५२
आश्रम-प्रणाली ५२
सामाजिक दशा ५५
भोजन एवं पेय ५७
नागरिक का चरित्र ५८

अध्याय ६—गुप्त लेखों में आर्थिक-विवरण ६०–६८
आर्थिक संगठन ६१
श्रेणियाँ ६३
मुद्रानीति ६५
भूमि का स्वामित्व ६६
भूमि माप ६७

अध्याय ७—गुप्त अभिलेखों में धार्मिक-चर्चा ६९–८३
वैदिकधर्म तथा कर्मकांड ६९

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

पृष्ठ

बौद्ध धर्म ७०
जैन धर्म ७२
पौराणिक मत ७३
विष्णु पूजा ७४
अवतार कल्पना ७५
शिव पूजा ७७
दान का विवरण ७९
भारतीयकरण ८२
धार्मिक सहिष्णुता ८२

अध्याय ८—भाषा तथा लिपि ८४–९२
प्राकृत ८४
संस्कृत का प्रयोग ८६
लिपि चर्चा ८७
गुप्तलिपि ८९
गुप्त-लिपि की विशेषता ९०
कुटिल लिपि ९२

अध्याय ९—गुप्त अभिलेखों में तिथि गणना ९३–१०७
तिथि अंकन ९३
गुप्त संवत् ९७
संवत् का नामोल्लेख ९७
शक तथा गुप्तकाल १०१
लेखों का प्रमाण १०३
गुप्त संवत् का संस्थापक १०७

अध्याय १०—गुप्तकालीन लघु अभिलेख १०८–११८
मिट्टी की मुहरें १०८
वैशाली की मुहरें १०९
नालंदा की मुहरें ११०
सिक्कों पर अंकित लेख १११
सिक्कों के लेख से वर्णमाला का ज्ञान ११३
लघु लेखों का अनुशीलन ११४

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

गुप्त - प्रशस्तियाँ

पृष्ठ

समुद्रगुप्त का लेख १२१–१२७

(अ) प्रयाग प्रशस्ति १२१
(ब) एरण प्रशस्ति १२५
(स) नालंदा अभिलेख १२६
(द) गया अभिलेख १२७

रामगुप्त का लेख १२८

पूर्वी मालवा का प्रतिमा लेख १२८

द्वितीय चंद्रगुप्त के लेख १२९–१३४

(१) मेहरौली लौहस्तंभ लेख १२९
(२) उदयगिरि गुहा अभिलेख १३०
(३) मथुरा स्तंभ लेख १३०
(४) उदयगिरि गुप्त लेख १३१
(५) गढ़वा लेख १३१
(६) साँची वेदिका लेख १३२
(७) मथुरा शिलालेख १३३

प्रथम कुमारगुप्त के लेख १३५–१५३

(१) बिलसद शिला स्तंभ लेख १३५
(२) गढ़वा लेख १३६
(३) उदयगिरि गुहालेख १३७
(४) घनाइदह ताम्रपट्ट लेख १३७
(५) मथुरा लेख १३९
(६) तुमैन शिलालेख १३९
(७) करमदंडा शिवलिंग लेख १४०
(८) कुलैकुरि ताम्रपट्ट लेख १४०
(९) दामोदरपुर ताम्रपत्र लेख १४३
(१०) दामोदरपुर ताम्रपत्र लेख १४४
(११) मनकुंवार बौद्ध प्रतिमा लेख १४५
(१२) गढ़वा लेख १४६
(१३) मंदसोर शिलालेख १४६

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

पृष्ठ

स्कंदगुप्त के अभिलेख १५४–१६७
(१) जूनागढ़ शिलालेख १५४
(२) कहौम स्तंभ लेख १६०
(३) इंदौर ताम्रपट्ट लेख १६०
(४) भितरी स्तंभ लेख १६१
(५) बिहार स्तंभ लेख १६४
(६) गढ़वा शिलालेख २४३

द्वितीय कुमारगुप्त का अभिलेख
(१) सारनाथ बौद्धप्रतिमा लेख १६८ .... १६८–१६९
(२) भितरी मुहर लेख १६८

बुधगुप्त का लेख १७०–१७५
(१) सारनाथ बौद्ध प्रतिमा लेख १७०
(२) बनारस स्तंभ लेख १७१
(३) दामोदरपुर ताम्रपट्ट लेख १७१
(४) एरण स्तंभ लेख १७२
(५) दामोदरपुर ताम्रपत्र १७३

वैन्यगुप्त का लेख १७९
(१) गुणैधर ताम्रपट्ट लेख १७६

भानुगुप्त का लेख १८०–१८३
(१) एरण स्तंभ लेख १८०
(२) दामोदरपुर ताम्रपट्ट लेख १८१

उत्तर गुप्तवंशी अभिलेख १८४–१८९
आदित्यसेन का अफसद लेख १८४
मंदारगिरि लेख १८८
शाहपुर लेख १८६

विष्णुगुप्त का लेख १९०
(१) मंगरांव शिलालेख १९०

द्वितीय जीवितगुप्त का लेख १९१–१९२
(१) देव वरनार्क लेख १९१

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

पृष्ठ

सामंतों के अभिलेख १९३-२१८
(१) वैग्राम ताम्रपट्ट लेख १९३
(२) पहाड़पुर ताम्रपत्र लेख १९५
(३) परिव्राजक महाराजा हस्तिन का लेख १९९
(४) जयनाथ का करितलाई ताम्रपत्र २०२
(५) खोह ताम्रपट्ट लेख २०४
(६) सर्वनाथ का लेख २०७
(७) खोह ताम्रपत्र २१०
(८) संक्षोभ का अभिलेख २१२
(९) सर्वनाथ का लेख २१५
(१०) भूमरा शिलालेख २१८

समसामयिक नरेश की प्रशस्तियाँ २१९-२३१
(१) यशोधर्मन का मंदसोर लेख २१९
(२) मंदसोर स्तंभ लेख २२४
(३) तोरमाण का एरण लेख २२७
(४) कुरा अभिलेख २२८
(५) मिहिर कुल की ग्वालियर प्रशस्ति २२९

मुहरों पर अंकित गुप्त लेख (नालंदा) ... २३२-२३४
(१) नरसिंह गुप्त की मुहर २३२
(२) द्वितीय कुमारगुप्त की मुहर २३२
(३) बुधगुप्त की मुहर २३३
(४) वैन्यगुप्त की मुहर २३३
(५) विष्णु गुप्त की मुहर २३४

वैशाली की गुप्तकालीन मुहर लेख २३५-२३८
(१) राजकीय २३५
(२) पदाधिकारियों की मुहरें २३५
(३) श्रेणी एवं निगम की मुहरें २३६
(४) मंदिर तथा धार्मिक लेख २३६
(५) व्यवसायीगण की मुहरें २३७

गुप्त मुद्रा लेख २३९-२४३
(१) स्वर्ण मुद्राओं पर अंकित लघु लेख २३९
(२) रजत मुद्रा लेख २४१

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

ऐतिहासिक टिप्पणी

पृष्ठ

समुद्रगुप्त का लेख २४७–२६५
(१) प्राप्ति-स्थान २२७
(२) तिथि २४८
(३) आर्यावर्त का विजय २४९
(४) दक्षिण विजय २५३
(५) सीमांत राज्यों का विजय २५८
(६) संघ राज्यों का पराजय २६०
(७) विदेश में प्रभाव २६३
(८) सम्राट् की नीति २६६

रामगुप्त के लेख २६७–२७४
(१) रामगुप्त २६७
(२) काचगुप्त की ऐतिहासिक वार्ता २६८
(३) साहित्यिक प्रमाण २६८
(४) प्रमाणों की प्रमाणिकता २७२
(५) काच की स्वर्णमुद्रा २७३

द्वितीय चंद्रगुप्त के लेख २७५–२८१
(१) मेहरौली स्तंभ लेख २७७
(२) चंद्र का समीकरण २७७

प्रथम कुमारगुप्त के लेख २८२–२९२
(१) बिलसद लेख पर टिप्पणी २८२
(२) तुमैन लेख २८३
(३) करमदंडा शिवलिंग लेख २८४
(४) वंशानुगत मंत्रीपद २८४
(५) कुलैकुरि ताम्रपत्र २८५
(६) मंगलमय श्लोक २८६
(७) दामोदरपुर ताम्रपट्ट लेख २८६
(८) शासकों की अवधि २८७
(९) त्रीवीधर्म २८७
(१०) मंदसोर प्रशस्ति २८८

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

पृष्ठ

(११) विक्रम संवत् (मालव संवत्) २८९
(१२) शिल्पीगण २९०

स्कंदगुप्त के अभिलेख २९३–३००
(१) सती स्तंभ २९४
(२) षष्ठी माता २९४
(३) जूनागढ़ लेख २९५
(४) उत्तराधिकार युद्ध २९५
(५) इंदौर ताम्रपट्ट लेख २९६
(६) वेदिक शाखाएँ २९६
(७) पंचमहापातक २९७
(८) हूण युद्ध २९८
(९) बिहार स्तंभ लेख २९९
(१०) सप्त मातृका २९९
(११) सुपिया लेख ३००

द्वितीय कुमारगुप्त एवं बुधगुप्त के लेख ३०१–३१४
(१) बुद्ध प्रतिमा लेख ३०१
(२) रजत मुद्रा लेख ३०२
(३) बुधगुप्त का दामोदरपुर ताम्रपट्ट ३०३
(४) शासन पदाधिकारी ३०३
(५) एरण स्तंभ लेख ३०५
(६) अधीनस्थ शासक ३०५
(७) वैन्यगुप्त का लेख ३०७
(८) बौद्धधर्म की वार्ता ३०८
(९) पूजन सामग्री ३०९
(१०) सत्र की स्थापना ३०९
(११) भूमि माप ३१०
(१२) स्कंदगुप्त के पश्चात् गुप्त वंशावली ३१२
(१३) भानुगुप्त कालीन लेख ३१३
(१४) शासन पद्धति ३१३
(१५) मधुपर्क ३१३

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

पृष्ठ

उत्तरगुप्त वंशी अभिलेख ३१५–३२१

(१) अफसद लेख ३१५
(२) राजवंश ३१६
(३) ईशान वर्मा का पराजय ३१७
(४) आत्म बलिदान ३१८
(५) आदित्यसेन की तिथि ३१९
(६) कुटिल लिपि ३१९
(७) जीवित गुप्त का देववर्णाक लेख ३२०
(८) धर्म श्लोक ३२०
(९) महान् पदाधिकारीगण ३२१

विष्णुगुप्त का मंगरांव लेख ३२२–३२३

(१) हर्ष संवत् में तिथि का उल्लेख ३२३

गुप्तकालीन मुद्राएँ ३२४–३३५

(१) मुद्रा का निर्माण ३२४
(२) वैशाली की मुहरें का विवेचन ३२५
(३) विभिन्न पदाधिकारी ३२७
(४) नालंदा की मुहरें ३२८
(५) गुप्त मुद्रालेखों का विवेचन ३३१

सामंत नरेशों के अभिलेख ३३६–३४९

(१) वैगाम ताम्रपट्ट लेख ३३६
(२) भूमि का क्रय ३३७
(३) भूमिमाप ३३९
(४) पहाड़पुर ताम्रपत्र लेख ३३९
(५) पंच स्तूप निकाय ३४०
(६) परिव्राजक एवं उच्छकल्प राजाओं के लेख ३४१
(७) धार्मिक परंपरा ३४१
(८) पंचपातक ३४३
(९) राजकीय कर ३४५
(१०) चतुर्दश विद्यास्थान ३४६

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

पृष्ठ

(११) वर्णाश्रम स्थापन ३४७
(१२) सर्वनाथ का ताम्रपत्र ३४८
(१३) विभिन्न 'करों' का विवरण ३४९

समसामयिक नरेश की प्रशस्तियाँ ३५०–३६०

(१) मंदसोर लेख ३५०
(२) मालव संवत् ३५१
(३) अरिषट्क ३५२
(४) मालवगण कालगणना ३५३
(५) हूण प्रशस्तियाँ ३५५
(६) तोरमाण विजय ३५५
(७) दशबल ३५७

अभिलेखों का हिंदी अनुवाद ३६१–४२२

(१) समुद्रगुप्त ३६३
(२) रामगुप्त ३६७
(३) चंद्रगुप्त द्वितीय लेख ३६७–३७०
(४) कुमारगुप्त प्रथम लेख ३७१–३८१
(५) स्कंदगुप्त के लेख ३८२–३८८
(६) द्वितीय कुमारगुप्त ३८९
(७) बुधगुप्त ३९०
(८) वैन्यगुप्त ३९२
(९) भानुगुप्त कालीन लेख ३९४
(१०) उत्तर गुप्तवंशी अभिलेख ३९६
(११) आदित्यसेन का लेख ३९७
(१२) सामंतों के अभिलेख ४००
(१३) समसामयिक नरेशों का अभिलेख ४१०
(१४) हूण अभिलेख ४१५
(१५) मुहरों पर अंकित लेख ४१८
(१६) गुप्तमुद्रा लेख ४२०

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

परिशिष्ट :— ४२३-४३४
(१) गुप्त साम्राज्य की राजधानी—प्रयाग ४१३
(२) उत्तरी भारत के राजाओं की समकालीन ४२७
(३) गुप्तयुग का तिधिक्रम ४३०
(४) मागध गुप्त युग का तिथिक्रम ४३३
(५) सुपिया अभिलेख (मूल) ४३४
अनुक्रकणिका ४३५-४४०
भोगोलिक स्थानों की तालिका ४४१-४४४
फलक संख्या १-६०
मानचित्र १ ८
मानचित्र २ १२
मानचित्र ३ २४
मानचित्र ४ ५६

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

भूमिका

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

अध्याय १

गुप्त वंश का उदय तथा स्थान

उदय

ईसवी सन् की तीसरी शताब्दी में प्राचीन मगध के सिंहासन पर एक दूसरे वंश को आरूढ़ पाते हैं। यह राजवंश गुप्तों का था। उत्तरी भारत में उनसे पूर्व अनेक छोटे राज्य स्थित थे। दूसरी सदी में कुषाण साम्राज्य का अंत हो गया था, जिसके पश्चात् ऐसी कोई भी शक्ति न थी, जिसका विस्तृत भूभाग पर शासन हो। इसी कारण गुप्तों से पूर्व का इतिहास कुछ अंधकारमय समझा जाता रहा। इस तथाकथित अंधकार युग में कई छोटे राजा शासन करते रहे, जिनके अभिलेख तथा सिक्के प्राप्त हुए हैं। संभवतः उनमें कुछ कुषाणों के अधीन थे जो समय पाकर स्वतंत्र हो गए। गुप्त शासन से पूर्व उनको वृद्धि का अवसर मिला किन्तु चौथी शताब्दी में सभी गुप्त साम्राज्य में सम्मिलित कर लिए गए। डा० काशी प्रसाद जायसवाल के मतानुसार इस युग में भारशिव नरेशों ने राज्य स्थापित कर शासन किया था। भारशिव तथा यौधेय लोगों ने कुषाण वंश के विनाश में हाथ बँटाया था। पुराणों में विदिशा (मध्य प्रदेश) के नागवंश-लोग ही भारशिव संज्ञा से प्रसिद्ध हुए। विद्वानों का मत है कि वाराणसी में दशाश्वमेघ नामक स्थान भारशिवों द्वारा संपन्न दश अश्वमेघों के कारण विख्यात हुआ। ऐतिहासिक साधनों में इसे नाग या भारशिव की संज्ञा दी गई है। पुराणों में राजाओं के नाम के साथ नाग शब्द का प्रयोग मिलता है, अतएव वह नागवंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इन नागवंशी राजाओं को वाकाटक लेख में 'भारशिवां महाराजा' कहा गया है (बालाघाट तथा चमक प्रशस्ति,

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

ए०इ०, भा० ९, पृ० २६६ तथा फ्लीट, गुप्तलेख, संख्या ९५)। वाकाटक अभिलेखों के आधार पर यह कहा जाता है कि नागवंशी राजा ने यज्ञ के समय अपने सिर पर 'शिवलिंग' रक्खा था, उसी समय से इस वंश का नाम भारशिव हुआ।

पुराणों में विदिशा, मथुरा तथा पद्मावती का वर्णन मिलता है जो नाग लोगों के केंद्र थे। यह राजवंश अनार्य माना जाता है जिसके परिवार में नाग की पूजा होती थी। मथुरा से दत्त या मित्र नामधारी नाग सिक्के भी प्राप्त हुए हैं। पद्मावती के नाग राजा भवनाग का नाम विशेष उल्लेखनीय है जो भारशिववंशी महाराजा माना गया है। विष्णुपुराण के निम्नलिखित वर्णन —"भवनाग पद्मावत्यां कांतिपुरां मथुरायां" से उपरियुक्त कथन की पुष्टि होती है। यह सब कार्य कुषाणों के पश्चात् ही संभव हुआ। संभवतः तीसरे भारशिव नरेश के समय में मथुरा के समीप नाग लोगों की शक्ति प्रबल हो गई थी। गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त ने इन्हें परास्त कर राज्य को गुप्त साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया था। इस प्रकार नाग यानी भारशिव वंश का अंत हो गया।

गुप्तों से पूर्व कौशाम्बी में (प्रयाग के समीप) स्वतंत्र राज्य की स्थापना हो चुकी थी। भीमसेन नामक शासक ने स्वतंत्रता की घोषणा की थी। उसके पुत्र महाराजा पोथसिरि के लेख बंदोगढ़ से मिले हैं जिनकी तिथियाँ (८६, ८८,=१६४ तथा १६६ ई०) शक संवत् में उल्लिखित हैं। इसका तात्पर्य यह है कि कौशाम्बी में कुषाणो का प्रभाव विस्तृत रहा जिसके बाद भीमसेन स्वतंत्र शासक हो गया। कौशाम्बी से अनेक मग सिक्के मिले जिनके परीक्षण के आधार पर डा० अल्तेकर ने कई नरेशों की स्थिति बतलाई है। भद्रमग, शिवभग, विजयमग, आदि अनेक शासक कौशाम्बी के मग वंशी नरेश माने गए हैं। कौशाम्बी का विशेष महत्वपूर्ण स्थान था। पूर्वी भारत से पश्चिमी बंदरगाह का मार्ग कौशाम्बी होकर जाया करता था। अतएव गुप्तों ने भी इस पर अधिकार कर लिया।

गुप्तों से पूर्व युग में दक्षिण पूर्व तथा दक्षिण पश्चिम में वाकाटक वंश तथा क्षत्रप नरेशों का शासन था। वाकाटक नरेश प्रवरसेन प्रभावशाली शासक था जिसके वंशज द्वितीय रुद्रसेन से गुप्त वंशजा प्रभावती गुप्ता का विवाह राजनैतिक कारणों से संपन्न हुआ। दक्षिण पश्चिम भारत पर शासन करने वाले क्षत्रप राजाओं के नाम उनके चांदी के सिक्कों (अर्द्धद्रम) पर अंकित मिलते हैं। उस भूभाग में दो सौ वर्षों तक शक क्षत्रप शासन करते रहे जिनका प्रमाणिक इतिहास प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं है। यह कहना पर्याप्त होगा कि पाँचवी सदी के आरंभ में चंद्रगुप्त द्वितीय ने शकों को परास्त कर समस्त क्षेत्र को अपने साम्राज्य में मिला लिया। चंद्रगुप्त के अभिलेख (विदिशा के समीप सांची एवं उदयगिरि गुहा लेख), चांदी के सिक्के तथा वैष्णव प्रतिमाएँ प्रमाणित करती हैं कि दक्षिण पश्चिम भारत—मालवा, काटियावाड़ तथा गुजरात को गुप्त नरेश ने शकों से छीन लिया।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा पंजाब के राजाओं में भी संगठन का अभाव था अतः ससानियन शासन विस्तृत हो गया। उसी क्षेत्र में पिछले कुषाण नरेश राज्य करते रहे जिन्हें समुद्रगुप्त ने परास्त किया। कहा जाता है कि पिछले कुषाण सिक्कों के अनुकरण पर ही गुप्त मुद्रानीति का शुभारंभ हुआ था जिसे क्रमशः गुप्त राजाओं ने भारतीयता में रंग दिया। इस कथन का अभिप्राय यह है कि यद्यपि पश्चिमोत्तर प्रदेश गुप्त शासन के अंतर्गत न आ सका, तोभी किसी स्थल पर पिछले कुषाण अवश्य पराजित हुए थे। ऐसी विकट परिस्थिति, अशांत वातावरण, विभाजित राष्ट्रीय नीति तथा एकछत्र शासक की अनुपस्थिति में गुप्त वंश का उदय हुआ। जब उत्तरी भारत में एक महत्वशाली, प्रबल तथा पराक्रमी राजा का अभाव था उसी समय राजनीतिक क्षितिज पर गुप्तों का उदय हुआ।

जाति

गुप्तों के वर्ण निर्णय में विद्वानों में गहरा मतभेद है। सर्वप्रथम डा० जायसवाल ने 'कौमुदी महोत्सव' के आधार पर गुप्तों को कारस्कर बतलाया जिसे बौधायन नीच वर्ण का मानते हैं (बौ० ध० सू० १।१।३२)। 'कौमुदी महोत्सव' में चन्द्रसेन का वैवाहिक संबंध मगध राज्य के विरोधी लिच्छवियों से वर्णित है। इतिहासज्ञ से गुप्त-लिच्छवि संबंध की कथा छिपी नहीं है अतएव गुप्त शूद्र थे, यह कहना प्रमाणित नहीं हो सका। चन्द्रसेन स्वयं शूद्र जाति का था अतः साहित्य के आधार पर गुप्तों को शूद्र कहना युक्ति संगत नहीं है। इस परिस्थिति में 'कारस्कर' शब्द पर विशेष बल देना अनुचित होगा। प्रभावती गुप्ता के पूना ताम्रपत्र लेख में उल्लिखित धारण गोत्र से भी कोई प्रमाणिक तथ्य नहीं निकाला जा सकता।

गुप्तवंशी सम्राटों ने अपनी जाति का कहीं उल्लेख नहीं किया है। परन्तु सौभाग्यवश उत्तर-गुप्तवंश (Later Gupta Kings) के वंशजों के विषय में (जाति संबंधी) कुछ ज्ञातव्य बातें मिली हैं। मध्यप्रदेश के शासक महाशिव गुप्त को सिरपुर प्रशस्ति में क्षत्रिय कहा गया है—

चंद्रान्वयैक तिलकः खलु चंद्रगुप्तः राजाख्यया पृथुगुणः प्रथितः पृथिव्याम् (ए० इ०, भा० ११, पृ० १९०)—इस उल्लेख से यह स्पष्ट है कि गुप्तवंशी नरेश क्षत्रिय थे। बम्बई प्रदेश में स्थित धारबाड़ के शासक गुत्तल नरेश को उज्जैन के शासक चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के वंशज मानते हैं। बम्बई गजेटियर (भा० २, पृ० ५७८) में वह सोमवंशी क्षत्रिय कहा गया है। गुप्तों का वैशाली के लिच्छवियों से विवाह कम महत्त्वपूर्ण घटना नहीं है। प्रथम कुमार गुप्त का विवाह लिच्छवि कुमार देवी से हुआ था। उन्हीं लिच्छवियों को बौद्धग्रंथों में क्षत्रिय कहा गया है।

महापरिनिर्वाण सुत्त में वर्णन आता है कि भगवान् बुद्ध के निर्वाण पश्चात् शरीर के राख को कई राजाओं में विभक्त किया गया था। आठ क्षत्रिय जातियों ने उस राख के लिए दावा

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

उपस्थित किया और यह घोषणा की थी कि भगवान् भी क्षत्रिय थे, तथा हम भी क्षत्रिय हैं। अतः शरीर का शेषांश (अवशेष) मिलना चाहिए—

भगवापि खत्तियो मयं पि खत्तियो मयंपि अरहा भगवतो शरीरानां भागम् ।

(दीघनिकाय २, पृ० १८४)

क्षत्रिय जाति के दावा करनेवालों में लिच्छवि भी थे। अतः राख उनको भी मिला और उस पर स्तूप का निर्माण हुआ जिसे खनन के बाद पता लगाया गया है। कल्पसूत्र (से० बु० इ०, २२, पृ० २२६) के आधार पर भी कहा जा सकता है कि लिच्छवि महावीर के मातृकुल यानी क्षत्रिय जाति के वंशज थे। नेपाल की वंशावली में लिच्छवियों को सूर्यवंशी क्षत्रिय कहा गया है (ए० इ०, भा० ३७, पृ० ७९)। मनु ने भी (मनु १०।२२) लिच्छवियों को क्षत्रिय माना है जो बौद्धधर्म स्वीकार करने के कारण व्रात्य कहे गए। समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति भी घोषित करती है कि क्षत्रिय वंशजा राजकुमारी कुमारदेवी गुप्तों से ब्याही थी। अतएव क्षत्रिय लिच्छवियों से विवाह के कारण गुप्त नरेश निःसंदेह क्षत्रिय माने जा सकते हैं।

स्थान

गुप्त राजाओं के आदि स्थान के विषय में विद्वानों में एक मत रहा है कि वे मगध के निवासी थे। संभवतः गुप्तवंश के आदि शासक आरम्भ में लिच्छवियों के सामंत थे और ई० स० २६० में श्रीगुप्त ने दक्षिण पूर्व बिहार में गुप्तवंश की नीव डाली। चीनी यात्री इत्सिंग के कथनानुसार गंगा के किनारे मृगशिखावन मंदिर था जिसके समीप चीनी मंदिर के अवशेष थे। यह कहा गया है कि इस मंदिर को गुप्तवंश के आदि पुरुष श्रीगुप्त ने बनवाया था। गुप्त अभिलेखों में श्री पदवी के साथ गुप्त नाम का उल्लेख है जिसके कारण उस वंश का गुप्तवंश नाम पड़ा। उस मृगशिखावन मंदिर की स्थिति में अधिक विवाद है। गांगूली महोदय उसे मुर्शिदाबाद में स्थित मानते हैं (इ० हि० क्वा०, भा० १४, पृ० ५३२)। दूसरा मत है कि वह मंदिर मगध में स्थित था। तीसरा मत समीचीन ज्ञात होता है कि वह मंदिर मृगदाव (सारनाथ, वाराणसी के समीप) में गुप्त ने तैयार किया था। संभव है गुप्तवंश का आदि स्थान प्रयाग के समीप रहा हो। इसकी संभावना है कि गुप्त लोग कौशाम्बी के समीप रहते थे और भारशिवों के अधीनस्थ सामंत थे। श्रीगुप्त के पौत्र प्रथम चंद्रगुप्त ने मग राजाओं को परास्त कर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। अतएव गुप्तों का मूलस्थान प्रयाग का प्रदेश मानना उचित होगा (ज० बि० रि० सो०, भा० ५७, पृ० ११–२०)।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

अध्याय २

गुप्तवंश का संक्षिप्त इतिहास

आदि पुरुष—गुप्त

प्राचीन भारतीय लेखों में सर्वत्र शासक की वंशावली का उल्लेख नहीं मिलता किंतु सौभाग्यवश गुप्तवंशी अभिलेखों में निम्न प्रकार का वर्णन आया है—

महाराज श्रीगुप्त प्रपौत्रस्य महाराज श्री घटोत्कच पौत्रस्य महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त पुत्रस्य लिच्छवि दौहित्रस्य महादेव्यां कुमार देव्यामुत्पन्नस्य महाराजाधिराज श्री समुद्रगुप्तस्य।

(प्रयाग प्रशस्ति, गु० ले०, सं १)

यह अभिलेख प्रयाग स्तंभ पर खुदा है जिसमें समुद्रगुप्त की विजय-यात्रा की चर्चा की गई है। उसी प्रसंग में विजेता समुद्र के पूर्वजों के भी नामोल्लेख हैं। अतएव गुप्तवंश के आदि पुरुष का नाम श्रीगुप्त था। विद्वानों का मत है कि अभिलेखों में श्री सम्मानसूचक शब्द है अतः राजा का व्यक्तिगत नाम 'गुप्त' था। उसीके कारण उसके वंशज 'गुप्तवंश' के नाम से विख्यात हुए। अभिलेखों में उल्लिखित गुप्त नाम की पुष्टि पुराणों के वर्णन से की जा सकती है। वायुपुराण में "भोक्षंते गुप्त वंशजाः" का उल्लेख राज्य सीमा के संबंध में किया गया है। अतएव श्रीगुप्त की प्रमाणिकता पर सन्देह नहीं किया जा सकता। इसकी महाराज की पदवी से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि वह केवल सामंत की पदवी से विभूषित रहा। उसका पुत्र एवं उत्तराधिकारी घटोत्कच भी सामंतावस्था में ही रहा। इन दोनों के विषय में अधिक कुछ ज्ञात नहीं है। सातवीं सदी में भारत में भ्रमण करने चीनी यात्री इत्सिंग आया था। उसने

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

यह लिखा है कि पाँच सौ वर्ष पहले चेलिकेतो नामक राजा ने मृगशिखावन के समीप एक मंदिर का निर्माण किया था। यह विशेषतया चीनी यात्रियों के निमित्त बना था।

इतिहासज्ञ चीनी शब्द चेलिकेतो को श्रीगुप्त का अनुवाद मानते हैं। अलन ने इस इत्सिंग कथित राजा की समता गुप्तों के प्रथम राजा श्रीगुप्त से की है (गुप्त क्वायन्स इन ब्रिटिश म्यूजियम, भूमिका पृ० १५), कुछ विद्वानों की धारणा है कि महाराज श्रीगुप्त पाटलिपुत्र तथा समीपस्थ प्रदेशों पर शासन करता रहा। किंतु इसके स्वतंत्र होने की वार्ता संदिग्धस्य है। लिच्छवि राज्य सीमा से छूता हुआ प्रदेश का वह सामंत रहा हो। प्रयाग के समीप में भी गुप्तों के निवास तथा सामंतावस्था में श्रीगुप्त के कार्य का प्रश्न उपस्थित किया गया है। मूलतः श्रीगुप्त तथा घटोत्कच महाराज पदवी धारण करते हुए भारशिवों के सामंत रहे तथा कालांतर में स्वतंत्रता की घोषणा उन्होंने की (ज० बि० रि० सो०, भा० ५७, पृ० ११-२०)।

प्रथम चंद्रगुप्त

गुप्तवंश का प्रथम शक्तिशाली एवं प्रतापी शासक प्रथम चंद्रगुप्त माना जाता है जिसने अपनी राज्य सीमा को दूर तक विस्तृत किया। प्रयाग प्रशस्ति में समुद्रगुप्त महाराजाधिराज चंद्रगुप्त तथा लिच्छवि कुमार देवी का पुत्र कहा गया है।

महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त पुत्रस्य लिच्छवि दौहित्रस्य महादेव्या कुमार देव्यामुत्पन्नः। प्रयाग स्तम्भ लेख से ज्ञात होता है कि इस शासक ने सर्वप्रथम महाराजाधिराज की पदवी धारण की तथा लिच्छवीवंश की राजकुमारी कुमार देवी से विवाह संपन्न हुआ था। इस बात की पुष्टि उसके स्वर्ण मुद्रा से होती है, जिसके अग्रभाग में राजा रानी खड़े हैं और दोनों का नाम— **चंद्रगुप्तः एवं कुमार देवी** उत्कीर्ण है। पृष्ठभाग पर **'लिच्छवयः'** शब्द खुदा है। अतएव वैवाहिक संबंध की घटना का समर्थन हो जाता है। किंतु इस संबंध का कारण क्या था, यह विवादास्पद प्रश्न है। क्या लिच्छवि शासक ने प्रथम चंद्रगुप्त को योग्य तथा यशस्वी मानकर विवाह किया अथवा किसी युद्ध के संधि स्वरूप। अलन अंतिम विचार से सहमत हैं, कि प्रथम चंद्रगुप्त ने लिच्छवि पर आक्रमण किया था और संधि के फलस्वरूप कुमार देवी का विवाह गुप्त शासक से किया गया (गुप्त क्वायन्स)। इस राजा ने मगध, साकेत तथा प्रयाग के विस्तृत क्षेत्र पर शासन किया और विजय के पश्चात् राज्याभिषेक के अवसर पर **'महाराजाधिराज'** की पदवी धारण की। उसी समय इसने एक सम्वत् की स्थापना की जिसे 'गुप्तसम्वत्' कहते हैं और इसका आरंभ ई० स० ३१९ वर्ष माना गया है। गुप्तवंश के लिए यह एक विशेष घटना थी। इसी सम्वत् में गुप्त अभिलेखों की तिथियाँ उल्लिखित हैं। अपनी बढ़ती हुई प्रतिष्ठा एवं शक्ति को व्यक्त करने के लिए चंदगुप्त ने 'महाराजाधिराज' का सम्राट्-पद धारण किया। उसके राज्य सीमा का वास्तविक ज्ञान नहीं है। खेद है कि प्रथम चंद्रगुप्त के वीरतापूर्ण कार्य एवं ऐश्वर्य का ठीक-ठीक पता नहीं है। कौमुदीमहोत्सव नामक ग्रंथ के आधार पर गुप्त

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

इतिहास की कुछ बातें उल्लिखित की गई हैं पर उसमें कहाँ तक ऐतिहासिक तथ्य है, यह कहना कठिन है।

समुद्रगुप्त

समुद्रगुप्त के अनंतर गुप्तवंश का इतिहास अधिक पूर्णरूप से ज्ञात है। इस वंश के बहुसंख्यक अभिलेखों की उपलब्धि से निश्चयात्मक बातें कही जाती हैं। प्रथम चंद्रगुप्त का पुत्र एवं उत्तराधिकारी समुद्रगुप्त चौथी शताब्दी के मध्य में सिंहासन पर बैठा। संसार के दिग्विजयी नरेशों में सम्राट् समुद्रगुप्त का नाम एक विशेष स्थान रखता है। वह पराक्रमी, रणकुशल एवं प्रतापी नरेश था। अपनी भुजाओं की शक्ति से उसने आर्यावर्त तथा दक्षिणापथ के शासकों को परास्त किया। अशोक के प्रयाग स्तंभ पर अंकित अभिलेख समुद्रगुप्त के विजय तथा व्यक्तित्व का विशद विवरण उपस्थित करता है। इसमें तत्कालीन भारत की राजनैतिक स्थिति तथा समुद्रगुप्त के कार्यों का हरिषेण ने उल्लेख किया है। इस सम्राट् के इतिहास जानने का यह प्रमुख साधन है। उत्तरी भारत के राजाओं को जीतकर उसने गुप्त साम्राज्य का विस्तार किया पर दक्षिणापथ के नरेशों के साथ **'धर्मविजयीनृप'** के समान व्यवहार किया था। उसकी रणचातुरी शत्रुओं के हृदय में भयसंचार करती रही।

प्रयाग प्रशस्ति में समुद्रगुप्त के विजयों का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया है। हरिषेण ने केवल सैकड़ों युद्धों में सम्राट् की वीरता तथा समस्त शरीर पर घाव का सामान्य रूप से विवरण ही नहीं उपस्थित किया है अपितु युद्धों में पराजित शत्रुओं का नामोल्लेख भी किया है। उत्तरी भारत का युद्ध सामान्य था। शत्रुओं को पराजित कर समुद्रगुप्त ने उनके राज्यों को गुप्त साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। आर्यावर्त के राजाओं की नामावली निम्न प्रकार है—

(१) रूद्रदेव
(२) मतिल
(३) नागदत्त
(४) चंद्रवर्म
(५) गणपति नाग
(६) नागसेन
(७) अच्युत
(८) नंदि, तथा
(९) बलवर्मा आदि

रैप्सन का अनुमान है कि यह नवराजा विष्णुपुराण में उल्लिखित नवनाग नरेश थे। इन नाग राजाओं के सम्मिलित शासन को समुद्रगुप्त ने नष्ट किया और गुप्तराज्य की सीमा मध्य भारत तक विस्तृत की। संभवतः इन पराजित नरेशों को शासन में अंतर्वेदी तथा पद्मावती का भूभाग शामिल था जिसे गुप्तसीमा में ले लिया गया।

आर्यावर्त के पश्चात् आटविक नरेश परास्त हुए जो मध्य भारत के जंगलों में शासन करते थे। इसके अनंतर दक्षिणापथ के राजाओं का नाम प्रयाग प्रशस्ति में वर्णित है जिन्हें समुद्रगुप्त के हाथों पराजित होना पड़ा। दक्षिणापथ के राजाओं को हराकर समुद्रगुप्त ने विजित प्रदेशों के

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

शासकों को उनकी भूमि लौटा दी, जो गुप्तों के छत्रछाया में राज्य करने लगे। ऐसे कार्य के लिए कालिदास ने रघु को '**धर्मविजयी**' राजा कहा है।

ग्रहीत प्रतिमुक्तस्य स धर्मविजयी नृपः।

(रघुवंश, सर्ग ४)

प्रयाग प्रशस्ति में इसे विभिन्न शब्दों में व्यक्त किया गया है—

सर्व दक्षिणापथ राजग्रहण मोक्षानुग्रह जनित प्रतापोन्मिश्रित महाभाग्यस्य।

पराजित राजाओं में महेन्द्र, व्याघ्रराज, मंटराज, स्वामिदत्त, दमन, विष्णुगोप, नीलराज, हस्तिवर्म, उग्रसेन, कुवेर तथा धनंजय की नामावली प्रशस्ति में मिलती है। विद्वानों में इन नरेशों के शासित प्रदेशों के विषय में विवाद है जिसका उल्लेख अगले पृष्ठों (खण्ड) में किया जायगा। संक्षेप में यह कहना उचित होगा कि प्रयाग के समीप विंध्या के मार्ग से समुद्रगुप्त ने दक्षिण कोशल (जबलपुर का भूभाग) में प्रवेश किया था। वहाँ से उड़ीसा होते मद्रास से दक्षिण कांचीपुरम् तक विजय दुंदुभी बजाकर राजधानी वापस चला आया। विजित राज्यों को उनके स्वामी को लौटा दिया जो सामंत के रूप में शासन करने लगे।

समुद्रगुप्त ने दक्षिणापथ के राजाओं को परास्त कर सीमांत नरेशों को पराजित किया जिनकी नामावली हरिषेण ने उपस्थित किया है।

समतट (कोमिल्ला), डवाक (ढाका चंटगाँव), कामरूप (असम), नेपाल, कर्तृपुर (गढ़वाल, उत्तर प्रदेश) आदि सीमांत भूभाग को गुप्त राज्य में मिला लिया गया। समुद्रगुप्त ने माल्लव, आर्जुनायन, यौधेय, आभीर, सनकानिक आदि प्रजातांत्रिक नरेशों को पराजित कर नष्ट कर दिया उसी प्रसंग में उत्तर पश्चिम में रहनेवाले कुषाणवंशी शक्तिहीन नरेशों को भी युद्ध में हराया था। इतना ही नहीं, गुप्तसम्राट् ने श्री लंका पर भी विजय पाई तथा विशाल कीर्ति का प्रसार किया।

प्रयाग प्रशस्ति का विश्लेषण यह बतलाता है कि विदेशियों के साथ समुद्रगुप्त ने मित्रता का व्यवहार स्थापित किया और देशकाल के अनुसार अपनी नीति स्थिर की।

(अ) राजाओं को जीतकर राज्य लौटा देना

(ब) बलपूर्वक पराजित कर साम्राज्य में राज्य को मिला लेना

(स) सेवक बनाना

(द) आज्ञा स्वीकार कर 'कर' देने की क्रिया

(य) नष्ट राज्यों की पुनर्स्थापना

(र) पराजित राजाओं के आत्म निवेदन के पश्चात् राजाज्ञा की भिक्षा माँगने की क्रिया को स्वीकार करना

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

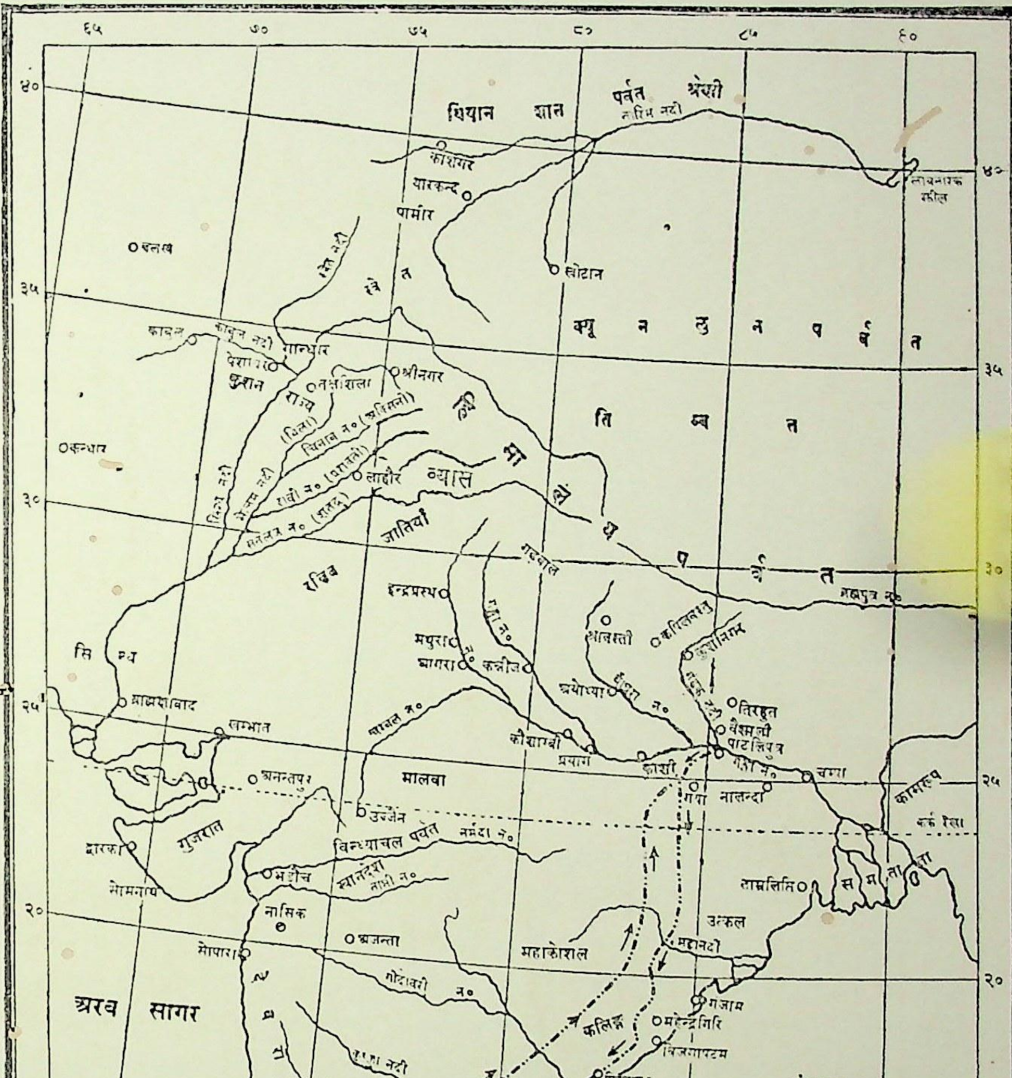

मानचित्र १ (पृष्ठ ८)

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

इन सब कार्यों से समुद्रगुप्त ने नीति निपुणता, अंतर्राष्ट्रीय राजनीति-कुशलता का पूर्ण परिचय दिया था। इसने गुप्त साम्राज्य की वास्तविक स्थापना को सुदृढ़ बनाया जिसे प्रबल शत्रु भी शताब्दियों तक शक्तिहीन न कर सके।

समुद्रगुप्त का सफल जीवन इतिहास में विख्यात है। इसके पिता प्रथम चंद्रगुप्त ने अलौकिक योग्यता के कारण ही मुग्ध होकर दरबारियों के समक्ष स्नेह से व्याकुल तथा आनंद भरे अश्रुओं से देखकर आलिंगन किया और कहा "तुम आर्य हो, समस्त पृथ्वी का पालन करो" ! इस घोषणा से सभासदों में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। इस प्रकार समुद्रगुप्त उत्तराधिकारी नियुक्त हुआ। समुद्रगुप्त संगठनकर्त्ता तथा महत्वाकांक्षी विजेता था। उसने प्रायः चालीस वर्ष की लम्बी अवधि तक शासन किया जिसका अंत करीब ३७० ई० में हुआ।

इसके राज्यकाल में गुप्त मुद्राओं की विशेष ढंग से उन्नति हुई जो कलात्मक दृष्टि से उच्च कोटि के माने जाते रहे हैं। इसकी स्वर्ण मुद्राएँ राजा के जीवन घटनाओं का परिचय देती है। वीणा प्रकार तथा अश्वमेघ प्रकार (विजय के उपरांत अश्वमेघ किया था) को विशेष रूप से उल्लिखित किया जाता है।

द्वितीय चंद्रगुप्त

गुप्तवंश का अतुलनीय शक्तिवान् एवं प्रतापी सम्राट् द्वितीय चंद्रगुप्त माना गया है। जिसने समुद्रगुप्त के पश्चात् शासन की बागडोर संभाली। मथुरा से प्राप्त अभिलेख (गुप्त संवत् ६१) से प्रकट होता है कि वह ३८० ई० के समीप गद्दी पर आरूढ़ हो गया था। समुद्रगुप्त के शासन का अंत ३७५ ई० में हुआ था, अतएव इतिहासज्ञ इस मध्य की अवधि में एक अन्य राजा का शासन मानते हैं जिसे इतिहास में रामगुप्त कहा गया है। रामगुप्त की स्थिति **देवीचंद्रगुप्तम्** नाटक, बाण कृत **हर्षचरित**, **काव्यमीमांसा**, संजन आदि लेख तथा सिक्कों के आधार पर प्रमाणित हो चुकी है। इन सब प्रमाणों के अध्ययन से पता चलता है कि रामगुप्त अत्यंत शक्तिहीन तथा असमर्थ शासक था, जो समुद्रगुप्त के पश्चात् राजा हुआ। उसके समय शकों ने राज्य पर आक्रमण किया परंतु राज्य को सुरक्षित रखने के लिए उसने शत्रुओं से संधि की। संधि के फलस्वरूप उसने अपनी पत्नी ध्रुवदेवी को शकों को समर्पण करना स्वीकार कर लिया। उसका कनिष्ठ भ्राता द्वितीय चंद्रगुप्त इस पतन को देख न सका, अतः अपमानजनक कृत्य का विरोध किया और स्वयं स्त्रीवेष (ध्रुवस्वामिनी का) धारण कर शत्रुओं के शिविर में पहुँच गया। द्वितीय चंद्रगुप्त ने शक राजा को मार डाला और साम्राज्य की प्रतिष्ठा को बचा लिया। अंततोगत्वा किसी प्रकार चंद्रगुप्त रामगुप्त को मार डालने में सफल हुआ तथा उसकी स्त्री ध्रुवदेवी से विवाह भी कर लिया। विद्वानों ने इस उपकथा का पूर्णरूपेण विशद चित्र उपस्थित किया है। समुद्रगुप्त के प्रतापी शासन के पश्चात् गुप्त साम्राज्य का ऐसा अपमान होगा यह शीघ्रता से विश्वास नहीं हो पाता। परंतु रामगुप्त की ऐतिहासिकता सिद्ध हो चुकी है। इसका विस्तृत

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

विवरण हमारे वर्त्तमान विषय के परिधि के बाहर है। यद्यपि यह ऐतिहासिक प्रश्न महत्वपूर्ण है तथापि रामगुप्त के संबंध में अधिक उल्लेख न कर द्वितीय चंद्रगुप्त के राज्य का विवरण उपस्थित किया जा रहा है।

समुद्रगुप्त का ज्येष्ठ पुत्र कौन था, यह ठीक पता नहीं है परन्तु राजकीय अभिलेखों में समुद्रगुप्त द्वारा अंगीकृत्य (तत् परिगृहीत) पदावली का प्रयोग चंद्रगुप्त के लिए हुआ है। उसके उत्तराधिकारियों के लिए "तत् पादानुध्यात" (उसके चरणों द्वारा अनुगृहीत) पद उल्लिखित है। इसका तात्पर्य यह हो सकता है कि समुद्रगुप्त ने अनेक पुत्रों में से चंद्रगुप्त को उत्तराधिकारी चुना था। सांची के अभिलेख में '**महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्तस्य देवराज इति प्रिय नाम**' ऐसा उल्लेख है। अर्थात् उसके अन्य नाम भी थे—देवराज, देवश्री। उसकी दो पत्नियाँ थी—कुबेरनागा तथा ध्रुवस्वामिनी। चंद्रगुप्त की पुत्री प्रभावती गुप्ता के पूना ताम्रपत्र (ए० इ०, भा० १५) में कुबेरनागा का नामोल्लेख है तथा साहित्य में द्वितीय पत्नी ध्रुवदेवी (रामगुप्तकी विवाहिता पत्नी) के नाम मिलते हैं जिसके गर्भ से प्रथम कुमारगुप्त का जन्म हुआ था। इस सम्राट् के लेख निम्न स्थानों से मिले हैं—

(१) सांची, (२) मथुरा, (३) उदयगिरि (विदिशा के समीप) (४) गढ़वा (प्रयाग) तथा (५) मेहरौली स्तंभ लेख (दिल्ली के समीप)।

इस राजा के लेखों में तिथियों ६१, ८२, ९३ का उल्लेख मिलता है जिसका संबंध गुप्त संवत् से जोड़कर द्वितीय चंद्रगुप्त की तिथि ज्ञात हो जाती है। इस आधार पर यह शासक ३८० ई० (६१+३१९) से लेकर ४१३ ई० (सांची लेख ९३=४१३ ई०) तक राज्य करता रहा तथा लगभग बत्तीस वर्षों तक गुप्त साम्राज्य का शासक रहा।

द्वितीय चंद्रगुप्त के जीवन की सबसे महत्वपूर्ण घटना दक्षिण पश्चिम तथा उत्तर के प्रदेशों का विजय है। समुद्रगुप्त ने दक्षिणापथ के राजाओं को परास्त कर उन्हें श्रीहत कर दिया था और सामंत के रूप में आज्ञा स्वीकार कर 'कर' देते रहे। द्वितीय चंद्रगुप्त की प्रखर किरणें सर्व-प्रथम पश्चिम में पहुँची। समुद्रगुप्त ने जिन शक मुरुण्डों को परास्त किया था वही शक पश्चिम भारत में राज्य करते रहे। इनको चंद्रगुप्त ने पराजित कर मालवा, गुजरात तथा काठियावाड़ पर अपने साम्राज्य को विस्तृत किया। पश्चिम भारत के पराजित शक नरेशों की उपाधि 'क्षत्रप थी। यह जाति सर्वप्रथम उत्तर पश्चिम में शासन करने वाले कुषाण राजा के सामंत रूप में पश्चिम भारत में आई और कालांतर में स्वतंत्र हो गई। चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के शक विजय के प्रमाण में तत्कालीन उत्कीर्ण लेख, प्राप्त सिक्के, तथा प्रचलित कथाएँ उपस्थित किए जाते हैं। मालवा के उदयगिरि पर्वत की गुफाओं में लेख खुदे हैं जिसमें वर्णन आया है कि चंद्रगुप्त का मंत्री वीरसेन सम्राट् के साथ उस भूभाग को जीतने आया था।

कृत्स्न पृथ्वी ज्यार्थेन राज्ञैवेह सहागतः (का० इ० इ०, भा० ३, नं० ६)

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

इनको जीतकर मालवा में गुप्त साम्राज्य का शिविर स्थापित किया गया। शक राजाओं ने चाँदी सिक्के (अर्द्धद्रम) प्रचलित किए थे। उसीके अनुरूप गुप्त सम्राट् ने भी अपने वंश में सर्वप्रथम चाँदी के सिक्के निकाला जिनपर "परमभागवत महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त विक्रमादित्य" अंकित है। संभवतः यह विजय ४०१ ई० के समीप घोषित किया गया। उदयगिरि गुफा के दूसरे लेख की तिथि गु० स० ८२ (८२ + ३१९ = ४०१ ई०) उल्लिखित है। शक विजय के पश्चात् उज्जयिनी को राजनीतिक कारणों से द्वितीय राजधानी स्थिर किया। संभव है विक्रमादित्य की उपाधि चंद्रगुप्त द्वारा उसी समय से धारण की गई हो।

दिल्ली के समीप कुतुबमीनार के निकट मेहरौली का लौह स्तंभ खड़ा है जिसपर उत्कीर्ण लेख में 'चंद्र' नामक राजा का वर्णन है। चंद्र के संबंध में अधिक विवाद था किंतु चंद्रगुप्त विक्रमादित्य से इसका समीकरण किया गया है। उस लेख में चंद्र के दिग्विजय का वर्णन है। उसने पूर्वी पंजाब तक का प्रदेश विजित किया था (सिन्धोर्जिता वाल्हिकाः)। दक्षिण भारत पर विजय कर स्वयं शासन करना गुप्तों को अभिष्ट न था। किंतु द्वितीय चंद्रगुप्त ने पश्चिम भारत को साम्राज्य में मिलाकर दक्षिण के अन्य राजाओं से मित्रता स्थापित की। चंद्रगुप्त भलीभाँति समझता था कि दक्षिण नरेशों से मैत्री बिना पश्चिम भारत में सुचारु एवं शांतिपूर्ण वातावरण में शासन नहीं हो सकता। अतः उसने अपनी पुत्री प्रभावती गुप्ता का विवाह वाकाटक नरेश द्वितीय रुद्रसेन से किया। इस विवाह का रहस्य पश्चिम गुप्त प्रदेशों पर दक्षिण राजाओं के आक्रमण को रोकना था। यह नीति अत्यंत लाभकारी सिद्ध हुई। मैसूर के कुंतल प्रदेश के कदंब नरेश के दरबार में गुप्त सम्राट् ने कालिदास को राजदूत बनाकर भेजा था। उस समय कुंतल देश पर ककुत्स्थ वर्मन राज्य करता रहा। कालिदास द्वारा रचित 'कुन्तलेश्वर दौत्य' नामक ग्रंथ के आधार पर उपरि कथन की प्रमाणिकता सिद्ध होती है। इस प्रकार द्वितीय चंद्रगुप्त ने दक्षिणी तथा पश्चिमी भारत पर अपना प्रभुत्व तथा प्रभाव स्थापित किया था।

उसके विशाल साम्राज्य में शान्ति तथा वैभव का चित्र चीनी यात्री फाहियान के विवरण से मिल जाता है। यह यात्री विस्तृत प्रदेशों में भ्रमण करता रहा किंतु भारत के राजनैतिक अवस्था का कोई विवरण प्रस्तुत न कर सका। उसने महान् गुप्त सम्राट् का नामोल्लेख तक नहीं किया है। तथापि उसकी पुस्तक गुप्त युग की संस्कृति तथा सभ्यता की रूपरेखा प्रस्तुत करने में महत्वपूर्ण है। इस राज्य के अनेक विजय, शांति एवं वैभव की अवस्था गुप्त युग को श्रेष्ठ सिद्ध करते हैं।

द्वितीय चंद्रगुप्त ने सोने के अतिरिक्त चाँदी तथा ताँबे का सिक्का भी प्रचलित किया था, जो उसकी प्रभुता, शक्ति, प्रभाव तथा व्यक्तिगत गुणों का परिचायक है।

प्रथम कुमार, गुप्त

द्वितीय चंद्रगुप्त के मृत्यु के पश्चात् प्रायः ४१४ ई० में प्रथम कुमारगुप्त सिंहासनारूढ़ हुआ था। उसके राज्यकाल के तेरह अभिलेख प्राप्त हुए हैं जो किसी भी गुप्त सम्राट् के लेख से

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

बड़ी संख्या में हैं। यद्यपि उनसे राज्यकाल की घटनाओं पर अधिक प्रकाश नहीं पडता है किंतु उनका यह अभिप्राय स्पष्ट हो जाता है कि प्रथम कुमारगुप्त ने पैतृक राज्य को अक्षुण्ण बनाए रखा। इसके काल के लेखों में वैशाली से अनेक मुहरें प्राप्त हुई हैं जिसमें चंद्रगुप्त की पत्नी ध्रुवस्वामिनी के पुत्र गोविंद गुप्त का नामोल्लेख है। (आ० स० रि०, १९०३-४—महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त पत्नी महाराज श्रीगोविंद गुप्त माता महादेवी ध्रुवस्वामिनी) परंतु बिलसद के लेख में (देखिए—प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन, पृ० ३१७) प्रथम कुमारगुप्त ध्रुवदेवी से उत्पन्न बतलाया गया है :

महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्तस्य महादेव्या ध्रुवदेव्यामुत्पन्नस्य महाराजधिराज कुमार गुप्तस्य।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि कुमारगुप्त ही द्वितीय चंद्रगुप्त का उत्तराधिकारी था। उसकी पदवी 'महाराजाधिराज' उल्लिखित है परंतु गोविंद गुप्त महाराज कहा गया है। अतएव दोनों भाईयों में ज्येष्ठ होने के नाते कुमारगुप्त ने शासन संभाला।

प्रथम कुमारगुप्त के अभिलेख तथा प्राप्त सिक्कों से यह प्रकट होता है कि वह अधिक समय (४० वर्ष) तक शासन करता रहा। कुमारगुप्त के अश्वमेध प्रकार के सिक्कों से विदित होता है कि उसने पितामह के सदृश अश्वमेध किया था किंतु किसी प्रकार के विजय की घटना का वृत्तान्त अज्ञात है। महाराष्ट्र (सतारा) तथा गुजरात (अहमदाबाद और भावनगर) से उसके सिक्के उपलब्ध हुए हैं जो पश्चिम दक्षिण पठार में गुप्त प्रभाव का संकेत करते हैं।

अभिलेखों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उसके राज्यपाल तथा सामंत शासन में सहयोग करते रहे।

(१) घटोत्कच पूर्वी मालवा (एरण) में राज्य कर रहा था।
(२) सुदूर पश्चिम में बंधुवर्मा सामंत था जो दशपुर में राज्य करता रहा।
(३) इसके कनिष्ठ भ्राता गोविंद गुप्त वैशाली के भूभाग में शासन कर रहा था जो राज्यपाल रहा होगा।
(४) चिरातदत्त पुंड्रवर्धन (उत्तरी बंगाल) में शासन करता रहा।
(५) पृथ्वीषेण उत्तर प्रदेश (फैजाबाद) का शासक नियुक्त हुआ था।

इनके अनुशीलन से पता चलता है कि प्रथम कुमारगुप्त के शासन तंत्र के विधान में उन्नति हुई।

यद्यपि प्रथम कुमारगुप्त का शासनकाल शांत तथा वैभवपूर्ण था परंतु इनके अंतिम समय में पुष्यमित्र नामक शत्रु ने आक्रमण किया। भितरी प्रस्तर लेख का संदर्भ जो इस महत्वपूर्ण घटना के लिए प्रमाण है, असंदिग्ध है। संभवतः कुमारगुप्त का कोई प्रतिद्वंद्वी राजा पुष्यमित्र था (इसे **युद्धमित्रांश्च** भी पढ़ा गया है)। इस प्रसंग में यह कहना यथार्थ होगा कि वह शक्तिशाली

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

द्वितीय चंद्रगुप्त का राज्यविस्तार

मानचित्र २ (पृष्ठ १२)

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

था जिसका स्कंदगुप्त के भितरी अभिलेख में निम्न रूप में वर्णन मिलता है—

विचलित कुललक्ष्मीः स्तम्भनायोद्यतेन,
क्षितितल शयनीये येन नीता त्रियामा
समुदित बल कोशान् पुष्यमित्राश्च जित्वा
क्षितिप चरण पीठे स्थापितो वामपादः

(प्रा० भा० अभिलेखों का अध्ययन, पृ० ३३३)।

इससे यह प्रकट होता है कि गुप्त सम्राट् को भारी क्षति उठानी पड़ी तथा बिभ्रंश का सामना करना पड़ा था।

प्रथम कुमारगुप्त का कोई भी ऐसा अभिलेख उपलब्ध नहीं है जो उसके युद्ध था राज्य-विस्तार का वर्णन कर सके। कहा जा सकता है कि उसने पिता के राज्य को सुचारु रूप से सुरक्षित रखा। शत्रुजन राजकुमार स्कंदगुप्त द्वारा युद्ध मैदान में मारे गए। इसका साम्राज्य काठियावाड़ से बंगाल तक विस्तृत था। उसने चौदह प्रकार की स्वर्ण मुद्राएँ प्रचलित की, जिससे उस काल की स्थिति का बोध होता है। चाँदी के सिक्कों का विस्तार पहली बार मध्यदेश में प्रथम कुमारगुप्त ने किया, जहाँ सिक्कों पर गरुड़ के स्थान पर मयूर अंकित हैं। राज्य संचालन की शक्ति कुमारगुप्त की योग्यता का परिचायक है। कुमारगुप्त गुणग्राही था तथा सार्वजनिक उपकारिता में संलग्न रहता था। पूर्वजों की तरह इसमें वीरता का अभाव था किन्तु यह सुशासक सम्राट् था। कुमारस्वामी का मत है कि गुप्त कालीन संस्कृति इस युग में चरमसीमा को पहुँच गई थी।

स्कंदगुप्त

ई० स० ४५६ में प्रथम कुमारगुप्त की मृत्यु के पश्चात् स्कंदगुप्त गद्दी पर आया। यह गुप्तवंश का अंतिम सम्राट् माना जाता है। गुप्त अभिलेखों के आधार पर विद्वानों की धारणा है कि प्रथम कुमारगुप्त के पश्चात् उत्तराधिकार का प्रश्न खड़ा हुआ। कुमारगुप्त के अन्य पुत्र भी सिंहासन के लिए प्रतिस्पर्धी थे। भितरी राजमुद्रा में पुरुगुप्त प्रथम कुमारगुप्त का पुत्र कहा गया हैं, माता महादेवी उल्लिखित है। स्कंदगुप्त की माता का नाम अभिलेखों में उल्लिखित नहीं है। अतएव यह संदेह हो जाता है कि स्कंदगुप्त पराक्रम के द्वारा वास्तविक उत्तराधिकारी को हटाकर राजसिंहासन को अपने अधिकार में कर लिया (विशेष जानकारी के लिए देखिए—गुप्त साम्राज्य का इतिहास, भा० १, पृ० १०५)।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

वंश वृक्ष निम्न प्रकार है—

प्रथम कुमारगुप्त = अनंत देवी

स्कंद गुप्त — पुरुगुप्त = चंद्र देवी

बुध गुप्त — नरसिंह गुप्त

कुमारगुप्त द्वितीय

विष्णु गुप्त

आश्चर्य यह है कि राजकीय मुद्रा में स्कंदगुप्त का नाम उल्लिखित नहीं है (भितरी की राजमुद्रा, ज० ए० सो० बं०, १८८९)। स्कंदगुप्त के अभिलेख में भी तीन पूर्वजों की राजमहिषियों के नाम मिलते हैं किंतु स्वयं उसकी माता का नाम अनुपस्थित है। इसीसे संदेह होता है कि वह वास्तविक उत्तराधिकारी न था। दायाधिकार के समर्थक विद्वान भितरी स्तंभ लेख से एक श्लोक उद्धृत करते हैं जो उनके कथन को पुष्ट करता है—

पितरिदिवमुपेते विप्लुतां वंशलक्ष्मी
भुजवल विजितारिर्य्यः प्रतिष्ठाप्यभूयः
जितमिव परितोषान् मातरं साश्रुनेत्रां
हतरिपुरिव कृष्णो देवकीमभ्युपेतः।

पिता के मृत्यु के पश्चात् वंशलक्ष्मी चंचल हो गई। इसको अपनी भुजाओं के बल से पुनः स्थापित किया। शत्रुओं का नाश कर प्रेम अश्रुयुक्त माता के पास गया जिस प्रकार कृष्ण अपनी माता देवकी के पास गए थे। इसका तात्पर्य यह है कि वंशलक्ष्मी को विनलित करनेवाले स्वजन ही थे। स्यात्—इससे बाहरी शत्रुओं का भी संकेत हो सकता है।

भितरी स्तंभ लेख का उपरियुक्त श्लोक सर्वथा प्रमाणयुक्त नहीं है क्योंकि इस अभिलेख के पौर्वापर्य विचार करने से गुप्तवंश-लक्ष्मी का विनाशक बाहरी शत्रु थे (राजघराने के पुरुष नहीं थे)। इन पुष्यमित्रों को परास्त कर स्कंदगुप्त ने प्रतिष्ठा कायम रखी। प्रथम कुमारगुप्त के पुत्रों में स्कंद गुप्त ही पराक्रमी एवं योग्य था, अतएव शासन की बागडोर लेकर कार्य करने लगा। जूनागढ़ की प्रशस्ति में स्पष्ट उल्लेख है—

व्ययेत सर्वान्मनुजेन्द्र पुत्रां लक्ष्मीः स्वयं यं वरयाञ्चकार।

राजलक्ष्मी ने स्वयं ही स्कंदगुप्त को अपना पति चुना। इस सम्राट् के स्वर्णमुद्रा पर भी राजा तथा देवी की आकृतियाँ खुदी है जो जूनागढ़ लेख के कथन को प्रमाणित करतां हैं।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

स्कंदगुप्त ने पैतृक राज्य का संरक्षण करते हुए शत्रुओं के बढ़ते बल-प्रवाह को रोका था। पूर्वजों के सदृश्य किसी दिग्विजय या विजय यात्रा का विवरण नहीं मिलता। किंतु भितरी तथा जूनागढ़ लेखों में हूणों का वर्णन आता है जिसे स्कंदगुप्त ने परास्त किया। हूणों ने मध्य एसिया के मैदान से आकर गांधार पर अधिकार कर लिया था। भारत में भी प्रवेश किया। पाँचवी सदी में गुप्तराज्य पर आक्रमण किया जिसका दुष्परिणाम उन्हें सहन करना पड़ा। यह युद्ध प्राय: ई० स० ४५६ के समीप हुआ था। पराजय के पश्चात् हूणों ने पश्चिमोत्तर प्रदेश में शरण ली।

गुप्त-उत्कर्ष युग का स्कंदगुप्त अंतिम सम्राट् था जिसके पश्चात् गुप्त साम्राज्य की अवनति होने लगी। कोई भी गुप्त राजा शत्रुओं के प्रवाह को रोक न सका। स्कंदगुप्त की मृत्यु के बाद हूण लोगों ने पंजाब तथा मध्य भारत पर अपना राज्य स्थापित कर लिया जिसके लेख उस भूभाग में मिलते हैं (एरण तथा ग्वालियर अभिलेख—प्रा० भा० अ० अ०, पृ० ३५८-५९)।

स्कंदगुप्त की स्वर्ण मुद्राओं से भी हूण आक्रमण के परिणाम का संकेत मिलता है। उसके पिता ने चौदह प्रकार की स्वर्ण मुद्राएँ प्रचलित की थी परन्तु इसने दो प्रकार को ही मुद्रित किया। वह भी विशुद्ध सोने का नहीं। संभवतः युद्ध के कारण कोश में अधिक धातु का आयात न होने के कारण मुद्राएँ मिश्रित धातु की तथा भारी बनी होगी।

स्कंदगुप्त की कीर्ति सर्वत्र व्यापिनी थी। वीरतापूर्ण कार्यों के कारण स्कंदगुप्त गुप्तवंश का 'वीर' कहा गया है—**जगति भुजबलाढ्यो गुप्तवंशैक वीरः**
प्रथितविपुलधामा नामतः स्कंदगुप्तः (भितरी लेख)

अधिरोहण के पश्चात् ही स्कंदगुप्त ने भिन्न-भिन्न प्रदेशों में राज्यपाल नियुक्त किए। सौराष्ट में पर्णदत्त तथा अंतरवेदि में सर्वनाग प्रतिनिधि के रूप में शासन करते रहे। इस प्रकार विस्तृत राज्य—सौराष्ट्र से बंगाल तक—का सुचारु रूप से स्कंदगुप्त शासित करता रहा। यह ४५६ ई० से ४६७ ई० तक शासन की अवधि मानी गई है।

पुरुगुप्त एवं उसके उत्तराधिकारी

पिछले पृष्ठों में इस विषय की चर्चा की गई है कि विद्वान गुप्त राज्य के दायाधिकार निमित्त युद्ध में विश्वास करने लग गए हैं। यदि प्रथम कुमारगुप्त ने स्कंदगुप्त को योग्य, शक्तिशाली एवं प्रतापी समझकर राज्य का स्वामी बनाया, तो उसके भ्राता पुरुगुप्त की क्या स्थिति थी? अशांतिमय वातावरण हटाकर तथा पुष्यमित्र नामक जाति को परास्त कर स्कंदगुप्त ने प्रशंसनीय कार्य किया था। संभवतः प्रयाग में रहकर उसने शासन किया और सामंत या राज्यपाल के सहारे राज्य करता रहा। ई० स० ४६७ में स्कंदगुप्त की मृत्यु हो गई। संभव है उसी तिथि के पश्चात् वृद्धावस्था में पुरुगुप्त ने शासन आरंभ किया। भितरी मुद्रा लेख में (जे० ए० सो० बं०, भा० ५८) पुरुगुप्त तथा उसके वंशज (नरसिंह तथा कुमारगुप्त) राजा के महान् पदवी

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

'महाराजाधिराज' से विभूषित थे। अतएव उन्हें अन्य गुप्त सम्राटों की तरह शासक मानना होगा। पुरुगुप्त से लेकर कुमारगुप्त द्वितीय तक शासन अवधि के विषय में हमारी जानकारी विशेष नहीं है। इसका अनुमान बुद्धगुप्त के सारनाथ प्रतिमा लेख की तिथि के आधार पर निश्चित किया जा सकता है। उस प्रतिमा लेख में गु० स० १५७ (=४७६ ई०) का उल्लेख है। यानी बुधगुप्त से पूर्व पुरुगुप्त के वंश राज्य कर चुके थे। ४६७ ई० (स्कंद की मृत्यु) तथा ४७६ ई० के मध्य दस वर्षों में तीन पीढ़ियों का राज्य समाप्त समझा गया है। बुधगुप्त पुरुगुप्त से अधिक प्रतापी राजा हुआ (आगे वर्णन किया जायगा)। अतएव ४७६ ई० से पहले ही तीन राजाओं (पुरु, नरसिंह, कुमारद्वितीय) का कार्य काल समाप्त समझना चाहिए। यह अवधि तीन पीढ़ियों के लिए छोटी है। अतः कुछ नए सुझाव उपस्थित किए गए हैं कि प्रथम कुमारगुप्त के पश्चात् गुप्त साम्राज्य को दो विभागों में विभक्त कर दिया गया। पाटलिपुत्र से पश्चिम स्कंदगुप्त तथा पूर्वी भाग में पुरुगुप्त शासन करने लगा। इस विचार के समर्थक निम्न प्रकार से दोनों शाखाओं की वंशवृक्ष का उल्लेख करते हैं :—

पहली शाखा

(१) स्कंदगुप्त
(२) सारनाथ लेख वाले (गु० स० १५४) कुमारगुप्त
(३) बुधगुप्त (एरण लेख, सारनाथ लेख, दामोदरपुर लेख)
(४) भानुगुप्त

दूसरी शाखा

(१) पुरुगुप्त
(२) नरसिंह गुप्त
(३) कुमारगुप्त (द्वितीय या तृतीय)
(४) विष्णुगुप्त
(५) वैन्यगुप्त

इस विचार को कालीघाट स्वर्ण सिक्कों के साक्ष से पुष्ट किया जाता है। कालीघाट निधि में पुरुगुप्त से लेकर उसके वंशजों के नाम वाले सिक्के उपलब्ध हुए हैं। जिसकी बनावट तथा भारीपन, उस निधि को स्कंदगुप्त शासन के बाद ही प्रचलित सिद्ध करती है। परंतु इस बंटवारे के विचार को पुष्ट करने के अन्य साधन नहीं है और विरोध में यह कहा जाता है कि पुरुगुप्त के बाद कुमारगुप्त द्वितीय का लेख भितरी तथा सारनाथ से प्राप्त हुए हैं। यदि प्रथम कुमारगुप्त के बाद राज्य का बंटवारा हो गया तो पाटलिपुत्र से पश्चिम (उत्तर प्रदेश) में सारनाथ तथा भितरी से इनके अभिलेख क्यों कर मिले ?

इस अध्ययन का तात्पर्य यह है कि स्कंदगुप्त की मृत्यु के पश्चात् पुरुगुप्त गद्दी पर आया।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

नालंदा तथा भितरी राजमुद्राओं से प्रथम कुमारगुप्त के पश्चात् उत्तराधिकारियों के वंशवृक्ष निश्चित करने में सहायता मिलती है—

प्रथम कुमारगुप्त
- स्कंदगुप्त ४६७ ई० (भितरी स्तंभ लेख)
- पुरुगुप्त (भितरी राजमुद्रा)
  - बुधगुप्त ४७६-४९५ ई० (नालंदा मुहर)
  - नरसिंहगुप्त
    - कुमारगुप्त द्वितीय ४७३ ई०
      - विष्णुगुप्त

इन राजाओं की महान पदवियों से कोई वास्तविक प्रभाव तथा शक्ति का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। परन्तु यह निश्चित ही है कि स्कंदगुप्त के पश्चात् अनेक शासकों की स्थिति का पता चलता है जो गुप्त साम्राज्य के सीमा में राज्य करने लगे। प्राय: उनकी स्वतंत्रता का साक्ष भी मिलता है। उदाहरण के लिए—**घटोत्कच** नामक व्यक्ति मालवा में (४६५ ई०) शासक था। इसी के पश्चात् प्रभाकर का नाम लिया जा सकता है जिसकी स्थिति संदेहात्मक समझी जाती है। ई० स० ४७३ के मालवा अभिलेख के आधार पर समसामयिक शासन का परिज्ञान होता है किंतु उनकी प्रमाणिकता अस्पष्ट तथा अनिश्चित है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि साम्राज्य का पश्चिमी भाग (स्कंदगुप्त के बाद) गुप्तों के हाथ से निकल गया था। पूर्वी भाग में पुरुगुप्त तथा उनके उत्तराधिकारी ने राज्य को अक्षत बनाए रखा। वह अभिलेख में **'तत्पादानुध्यात'** (कानूनी उत्तराधिकारी) उल्लिखित है। पुरुगुप्त का कोई स्वतंत्र लेख अभी तक उपलब्ध नहीं है। जो कुछ भी ज्ञात है वह द्वितीय कुमारगुप्त के भितरी राजमुद्रा का साक्ष तथा कालीघाट स्वर्ण मुद्रा की निधि पर आधारित है। परमार्थकृत बसुवंधु के जीवन वृतांत से विदित होता है कि पुरुगुप्त बौद्धधर्मानुयायी था। उसने बसुवंधु से बौद्धधर्म की शिक्षा ली थी।

उसके पश्चात् नरसिंहगुप्त राज्य करता रहा। इसकी पदवी 'बालादित्य' की थी जिस कारण ह्वेनसांग कथित बालादित्य तथा नरसिंह गुप्त बालादित्य की समानता मानी जाती है। यह संदेहात्मक है क्योंकि दोनों की तिथियों में सौ वर्ष का अंतर है (गुप्त साम्राज्य का इतिहास, भा० १, पृ १२५-८)। नरसिंह का कोई अभिलेख प्राप्त नहीं हुआ है किंतु कालीघाट निधि में इसके स्वर्ण सिक्के मिले हैं। द्वितीय कुमारगुप्त (ई० स०४७३) के पहले इनकी जीवन लीला समाप्त हो गई थी। इसके सिक्के पचास की संख्या में मिले हैं जिनकी तौल माप १४८ ग्रेन है तथा मिश्रित धातु के बने हैं। अतः इनकी तिथि स्कंदगुप्त की स्वर्ण माप तौल (१४४·६ ग्रेन) वाले सिक्कों से बाद ही स्थिर की गई है।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

वैन्यगुप्त

पूर्वी बंगाल से प्राप्त गुणैधर ताम्रपत्र अभिलेख के अनुशीलन से पता चलता है कि उस भूभाग में विष्णुगुप्त के पश्चात् वैन्यगुप्त शासन करने लगा। इस ताम्रपत्र की तिथि गु० स० १८८ (ई० स० ५०७) है। इसके वर्णन से ज्ञात होता है कि वैन्यगुप्त ने बौद्ध विहार को भूमि दान में दी थी। नालंदा मुहर में वैन्यगुप्त के लिए 'महाराजाधिराज' की पदवी उल्लिखित है (मे० आ० स० इ०, नं० ६६, पृ० ६३)। अतएव यह स्पष्ट हो जाता है कि बुधगुप्त के पश्चात् विष्णुगुप्त का उत्तराधिकारी वैन्यगुप्त बंगला देश पर शासन करता रहा। इसी के समकालीन मध्य प्रदेश में भानुगुप्त शासन करता था जिसका अभिलेख एरण (जिला सागर, म० प्र०) से प्राप्त हुआ है। उसकी तिथि गु० स० १९१ (ई० स० ५१०) अंकित है। इसका तात्पर्य यह है कि बुधगुप्त की मृत्यु पश्चात् पाटलिपुत्र से मध्य भारत तक के भूभाग भानुगुप्त के अधिकार में थे और पूर्वी बंगाल (बंगलादेश) विष्णुगुप्त एवं वैन्यगुप्त के अधिकार में।

भानुगुप्त के एरण वाले लेख से पता चलता है कि गुप्त राजा से हूणों का घनघोर युद्ध हुआ था जिसमें राजा का सेनापति गोपराज मारा गया। उस अभिलेख में गोपराज की स्त्री के सती होने का विवरण मिलता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि मध्य भारत में ई० स० ५१० तक भानुगुप्त अधीश्वर था। गुप्त राजाओं के आंतरिक विभेद साम्राज्य को पतनोन्मुखी बना दिया। हूणों का विजय भी इस ह्रास का एक प्रमुख कारण हो सकता है।

भारतीय पुरातत्व सामग्रियों के अध्ययन से पता चलता है कि तोरमाण तथा मिहिर-कुल नामक दो हूण सरदारों ने मध्य भारत तक राज्य विस्तृत किया। उनके पूर्वजों के विषय में कोई संतोषजनक बातें कही नहीं जा सकती परंतु यह सत्य है कि हूण जाति ने भारत में प्रवेश कर गांधार प्रदेश को जीतकर गुप्त साम्राज्य पर आक्रमण किया था। स्कंदगुप्त ने उन्हें परास्त भी किया। पर कालांतर गुप्तों की शक्ति को क्षीण जानकर उन्होंने भानुगुप्त के सामंत गोपराज को युद्ध में मार डाला। हूण अभिलेख तथा सिक्के मध्य भारत में हूण राज्य की स्थापना के साक्षी हैं। इस प्रकार भारत में गुप्त साम्राज्य की शेष शक्ति, प्रभाव एवं शासन का अंत हो गया।

हूण आक्रमण गुप्त साम्राज्य के पतन का एक प्रमुख कारण था। किंतु अन्य प्रदेशों में भी सामंत स्वतंत्रता की घोषणा कर रहे थे। बुधगुप्त के रजत सिक्के यह प्रकट करते हैं कि काठियावाड़ एवं गुजरात में मैत्रकों ने स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया था। मालवा में यशोधर्मा का आधिपत्य था जिसके मंदसोर अभिलेख में मिहिरकुल का निर्देश है। लेख में यशोधर्मा गर्व करता है कि विख्यात राजा मिहिर ने उसके चरणों में सम्मान भेंट किया—

चूड़ापुष्पोपहारैः मिहिरकुल नृपेणार्चितं पादयुग्मम् (मंदसोर लेख—का० इ० ई०, भा० ३)

सैनिक विजयों द्वारा यशोधर्मा की सफलता के विषय में हमारा ज्ञान उस मंदसोर लेख में ही सीमित है। यह मानना पड़ेगा कि ई० स० ५२० के समीप अकस्मात् राजनीतिक

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

क्षितिज पर उल्का सदृश यशोधर्मा प्रकट हुआ और शीघ्र ओझल भी हो गया। उसका साम्राज्य उसी के साथ विलीन हो गया।

मंदसोर के आसपास का प्रदेश उसके राज्य का केंद्र रहा होगा। हूणों के पश्चात् उसकी शक्ति का अभ्युदय प्रकट होता है। परंतु संग्राम के क्षेत्र में चमत्कारी सफलता के अतिरिक्त कोई स्थायी फल दृष्टिगत नहीं होता। यशोधर्मा का अंत एक पहेली है। गुप्त साम्राज्य के सामंतो में एक विप्लव सा उठ खड़ा हुआ। उस समय अराजकता के फलस्वरूप अनेक शक्तियाँ स्थापित हो गई। उनमें सर्वाधिक शक्तिशाली मौखरी थे, जो कन्नौज पर शासन करते रहे। मगध में भी एक गुप्त वंश का राज्य स्थित था जो उत्तर-गुप्त नरेश के नाम से प्रसिद्ध हैं। यों तो गुप्त-साम्राज्य के खंडहर पर मालवा, बलभी, कन्नौज, थानेश्वर, मगध तथा गौड़ में राज्य खड़े हो गए परन्तु मागधगुप्त वंश का विवरण यहाँ दिया जायगा। प्राय सभी राजागण समसामयिक थे। मागधगुप्त राजनीतिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुके थे। यह गुप्तनामधारी राजा किस वंश के थे अथवा गुप्त सम्राटों से इनका क्या संबंध था, इसका प्रमाणिक वृतांत अज्ञात है। अतएव गुप्त नामांत होने के कारण उनका विवरण प्रस्तुत करना सर्वथा उचित होगा।

उत्तर-गुप्त नरेश (Later Guptas)

छठी शताब्दी के मध्य में गुप्त साम्राज्य के छिन्न-भिन्न हो जाने पर अनेक स्वतंत्र राजा उत्तरी भारत में शासन करने लगे। यद्यपि राजनीतिक क्षेत्र में गुप्त नामधारी नरेश का कोई महत्व न था किंतु इनका शासन शताब्दियों तक स्थिर रहा। इन राजाओं के 'गुप्त' नामांत से यह प्रश्न उठता है कि इस वंश का किसी प्रकार का संबंध गुप्त सम्राटों से था या नहीं? गुप्त साम्राज्य के एक भाग (मगध) पर शासन करने, समान गुप्त नाम धारण करने तथा अन्य नरेशों के समकालीनता से यह संभावना उपस्थित होती है कि पिछले गुप्त वंश का किसी रूप में पूर्व सम्राटों से संबंध रहा हो। किंतु यह अत्यंत आश्चर्यजनक प्रतीत होता है कि पिछले गुप्तों के अभिलेख में किसी प्रकार के संबंध का उल्लेख नहीं है। इस वंश के अफसद लेख में प्रथम राजा कृष्ण गुप्त को एक अच्छे वंश (**सद् वंश**) वाला कहा गया है। संभवतः प्रशस्तिकार के समय में यह अज्ञात था कि कृष्ण गुप्त का संबंध पूर्व गुप्त सम्राटों से था, अन्यथा प्रशस्तिकार अवश्यमेव उल्लेख करता। वह उस संबंध के विषय में अवहेलना न करता। इस परिस्थिति में पोषक प्रमाणों के अभाव में उत्तर-गुप्तों का पूर्व गुप्त-सम्राटों से पारिवारिक संबंध जोड़ना कठिन है। इस स्थान पर इतना कहना उचित होगा कि वंश परंपरा में न होते हुए भी मगध के समीपवर्ती प्रदेशों पर वे राज्य करते रहे। मागधगुप्त नाम सार्थक प्रतीत होता है। उत्तर-गुप्त वंश का प्रतापी राजा आदित्यसेन ने मगध में ही राज्य किया (अफसद लेख)। उसके उत्तराधिकारियों के लेख मगध में ही उपलब्ध हुए हैं।

मागधगुप्त वंश में कुल ११ राजा हुए जिसमें प्रथम तीन—(१) कृष्ण गुप्त (२) हर्ष गुप्त

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

तथा (३) प्रथम जीवित गुप्त पाँचवी सदी के पिछले हिस्से में स्वतंत्र शासक के रूप में राज्य करते रहे। परन्तु इनके शासन का सबल प्रमाण नहीं मिलते। लेखों में इनके लिए कोई पदवी नहीं मिलती। संभव है सामंत (महाराज पदवीधारी) के रूप में गुप्त सम्राटों के अधीन हों तथा उनके युद्ध में भी सम्मिलित रहे हों। चौथा राजा कुमारगुप्त शक्तिशाली शासक था जिसने मौखरी वंश के महाराजाधिराज ईशान वर्मा को सन् ५५४ ई० में परास्त किया था।

भीमः श्रीशानवर्मक्षितिपति शशिनः
सैन्य दुग्धोदसिन्धुः
लक्ष्मी संप्राप्ति हेतु सपदि
विमथितो मंदरीभूययेन (अफसद लेख—का० इ० इ०, भा० ३)

इस विजय से यह संभावना बन जाती है कि उत्तर-गुप्त शासक पृथक राज्य स्थापित करने में समर्थ हो गए थे। इस तरह मौखरी या अन्य शक्तियों का सामना भी किया। गुप्त राजा मगध तथा उतरी बंगाल पर अधिकार बनाए रखे। मौखरियों से परंपरागत युद्ध में कुमारगुप्त का पुत्र दामोदर गुप्त सर्व वर्मन मौखरी द्वारा मार डाला गया। अतः मगध कुछ समय के लिए मौखरी के अधिकार में चला गया। यह स्थिति अधिक समय तक स्थायी न रह सकी क्योंकि महासेन गुप्त ने अपने पराक्रम से मगध को पुनः प्राप्त कर लिया।

सातवी शताब्दी के पूर्वाद्ध की वार्ता है कि कन्नौज तथा थानेश्वर पर सम्मिलित रूप से हर्ष-वर्धन शासन करने लगा। महासेन गुप्त का पुत्र माधव हर्ष के साथ रहता था और उसी माधवगुप्त ने मगध सिंहासन को सुशोभित किया। हर्षवर्धन के मृत्यु के पश्चात् माधवगुप्त के पुत्र आदित्यसेन ने अपने बाहुबल से राज्य का विस्तार किया था जिसका साक्ष्य उसके अभिलेखों से मिलता है।

इस स्थान पर यह उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है कि आदित्यसेन के पितामह महासेनगुप्त के विषय में यह विवाद है कि वह मालवा का शासक था। हर्षचरित (उ० ४) में कुमारगुप्त तथा माधवगुप्त **'मालव राजपुत्रौ'** कहे गये हैं :—

मालव राजपुत्रौ भ्रातरौ भजाइव में शरीरा
दव्यतिरिक्तौ कुमारगुप्त माधवगुप्त नामा।

इस आधार पर कुछ विद्वानों का मत है कि आदित्यसेन से पूर्व उत्तर-गुप्त राजा महासेन गुप्त मालवा में शासन करता था। मगध में राज्य करने वाला प्रथम राजा माधवगुप्त था जिसके वंशजों ने इसी भूभाग में स्थायी रूप से राज्य किया था। आदित्यसेन के पश्चात् सभी गुप्त अभिलेख मगध प्रदेश से ही प्राप्त हुए हैं। डा० राय चौधरी ने भी ऐसा ही विचार व्यक्त किया है कि आदित्यसेन से पूर्व शासक मालवा के शासक थे किंतु माधव गुप्त के पश्चात् मगध गुप्त-शासन का केंद्र हो गया।

हर्ष के पश्चात् उत्तरी भारत में गुप्तों की प्रधानता हो गई जिसका श्रेय आदित्यसेन को

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

है। इस राजनीतिक परिवर्तन में माधवगुप्त के पुत्र आदित्यसेन ने एक विस्तृत साम्राज्य स्थापित किया और पूर्व-गुप्तों की प्रतिष्ठा को वापस लाने का प्रयास किया।

उसके लेख चार स्थानों से उपलब्ध हुए हैं। जिनकी तिथि हर्ष संवत् से जोड़ी जाती है।

(१) अफसद का लेख (जिला गया)
इसमें लोक निर्माण एवं कल्याण की बातें वर्णित हैं।

(२) शाहपुर लेख (तिथि ६६)
यह तिथियुक्त लेख हर्ष संवत् (ई० स० ६०६) से संबंधित है जिस आधार पर शासक की तिथि ६७२ ई० निश्चित हो जाती है।

(३) मंदार का शिलालेख (बाँका, भागलपुर)
आदित्यसेन द्वारा अश्वमेघ की वार्ता लिखी है तथा राजा "**पृथिवीपति**" कहा गया है।

सातवीं सदी के उत्तरार्ध में हर्ष के मृत्यु के पश्चात् थोड़ी अराजकता फैल गई थी। इस उथल-पुथल में आदित्यसेन ने नीति से काम लिया। इसके लेख पटना, गया तथा भागलपुर जिलों से प्राप्त हुए हैं, अतएव गुप्त राज्य अंग एवं मगध में विस्तृत था। इसकी शक्ति के कारण ही लेखों में "परमभट्टारकमहाराजाधिराज" तथा "पृथिवीपति" की महान् पदवियाँ उल्लिखित हैं। आदित्यसेन ने अपने विजय के उपलक्ष में 'अश्वमेघ' किया था। पूर्वी बंगाल (बंगला देश) से कुछ सोने के सिक्कों पर घोड़े की आकृति दीख पड़ती है अतएव भट्टशाली उसे आदित्यसेन का सिक्का मानते हैं। अन्य पृष्ठपोषक प्रमाण के अभाव में विशेष कहा नहीं जा सकता पर इस प्रतापी राजा के शासन में गुप्त राज्य की उन्नति हुई यह निश्चित है। लोकोपकारिता के अनेक कार्य किए गए।

इन राजाओं की तिथियाँ दो अभिलेखों से निश्चित की जाती हैं। प्रथम हरहा लेख की तिथि ई० स० ५५४ है (वि० स० ६११)। उस समय मौखरी 'महाराजाधिराज' ईशान वर्मा कुमारगुप्त द्वारा हराया गया जिससे समकालीनता स्पष्ट प्रकट हो जाती हैं। दूसरा लेख मंदार से प्राप्त सूर्य प्रतिमा के चरणपीठ पर खुदा है उसकी तिथि ६६ यानी (६०६ + ६६ = ६७२ ई०) मानी गई है। अतएव कृष्णगुप्त से आदित्यसेन तक राजाओं का शासन ई० स० ६७२ तक अवश्य समाप्त हो गया होगा। गुप्त नरेशों की लौकिक कार्य का विवरण इनके लेखों से मिलेगा।

आदित्यसेन के उत्तराधिकारी का नामोल्लेख देववरनार्क अभिलेख में मिलता है—

श्री आदित्यसेनदेव तस्यपुत्रः तत्पादानुध्यातो परमभट्टारिकायां राज्ञ्यां महादेव्यां श्री कोणदेव्यामुत्पन्नः परममाहेश्वर परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर देवगुप्तदेव।

(का० इ० इ०, भा० ३, सं० ४६)

इसके पदवी से शक्तिशाली, महत्वाकांक्षी तथा प्रतापी नरेश की स्थिति का अनुमान

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

लगाया जा सकता है। किन्तु उत्तर-गुप्त नरेश ऐसे महान सम्राट् न थे जिन्हें **'परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर'** कहा जा सके। गुप्त सम्राटों की भी ऐसी पदवी न थी। शाहपुर के लेख से ई० स० ६७२ आदित्यसेन की अंतिम तिथि मानी गई है। अतः देवगुप्त उसके पश्चात् गद्दी पर आया। ई० स० ६८० के समीप चालुक्य राजा विनयादित्य द्वारा (सकलोत्तरापथ नाथ) उत्तरी भारत के किसी शासक के पराजय का विवरण मिला है। संभवतः उत्तरी भारत का राजा देवगुप्त हो। तत्पश्चात् उसका पुत्र विष्णुगुप्त शासक के रूप में वर्णित है। इसके सतरहवें वर्ष का एक लेख बक्सर तथा कैमूर पठार के उत्तर मंगरांव नामक स्थान से मिला है। उसमें भगवान श्री सुभदेश्वर के मंदिर में दीपक निमित्त एक पल तेल के दान का वर्णन है। मंगरांव लेख की तिथि के विषय में विद्वानों में मतभेद रहा है। एक पक्ष का कथन है कि उस प्रशस्ति में केवल १७ अंक पढ़ा गया है। यानी वह तिथि राज्यकाल से संबंधित है। दूसरा मत यह है कि इस लेख में ११७ अंकित है जिस का संबंध हर्ष संवत् (ई० स० ६०६) से किया जाता है। तात्पर्य यह है कि विष्णुगुप्त ई० स० ७२३ में (६०६ + ११७) राज्य करता था। उसका राज्य मगध से दक्षिण शाहाबाद (आरा) तक विस्तृत था (ए० इ०, भा० २६)।

पूर्वी भारत से कुछ सोने के भद्दे सिक्के प्राप्त हुए हैं। उन पर अग्रभाग में 'विष्णु' तथा पृष्ठभाग में 'चंद्रादित्य' खुदा है। संभव है कि इन सिक्कों को विष्णुगुप्त ने प्रचलित किया हो। इन आधार पर यह गुप्त नरेश प्रभावशाली ज्ञात होता है जिसकी पदवी भी महान थी।

द्वितीय जीवित गुप्त इस वंश का अंतिम शासक था जो विष्णुगुप्त के बाद सिंहासन पर बैठा। इसके जीवन संबंध में किसी घटना का उल्लेख नहीं मिलता। आरा (बिहार प्रदेश) के देववरनार्क लेख में प्राचीन अग्रहार दान लिखने की शैली को काम में लाया गया है। इससे गोतमी किनारे जयस्कन्धावार की स्थिति का परिज्ञान होता है। इस गुप्त राजा ने दान देकर अपने दयापूर्ण तथा विशाल हृदय का परिचय दिया है। अभिलेख के परीक्षण से ज्ञात होता है कि जीवितगुप्त ने बालादित्य तथा मौखरी के अग्रहार-दान का अनुमोदन किया। इस आधार पर यह कहना कठिन होगा कि गुप्त राज्य मगध से उत्तर प्रदेश तक विस्तृत था क्योंकि गोमती किनारे जयस्कन्धावार का उल्लेख है। अतएव यह कहना कहाँ तक उचित होगा कि मगध से उत्तर प्रदेश तक गुप्तों का संतोषप्रद रूप में राज्य विस्तृत रहा तथा शासन भी करते रहे।

मागधगुप्तों के वंश का अंत किस प्रकार हुआ तथा कौन शासक उनके स्थान पर राज्य करने लगे, यह एक जिज्ञासा है। प्राकृत ग्रंथ गौडवहो से मागधगुप्तों की समाप्ति का कुछ परिज्ञान हो जाता है। उसमें गौड़ (उत्तरी बंगाल) नरेश गौडाधिप तथा मगधनाथ (मगध का स्वामी) की पदवियों से विभूषित है अतएव इस प्रमाण के अनुसार यह कहना सर्वथा उचित होगा कि कन्नौज के राजा यशोवर्मा द्वारा मागधगुप्तों का अंत किया गया। तात्पर्य यह है कि आठवीं सदी में मगध राज्य का अंत हो गया।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

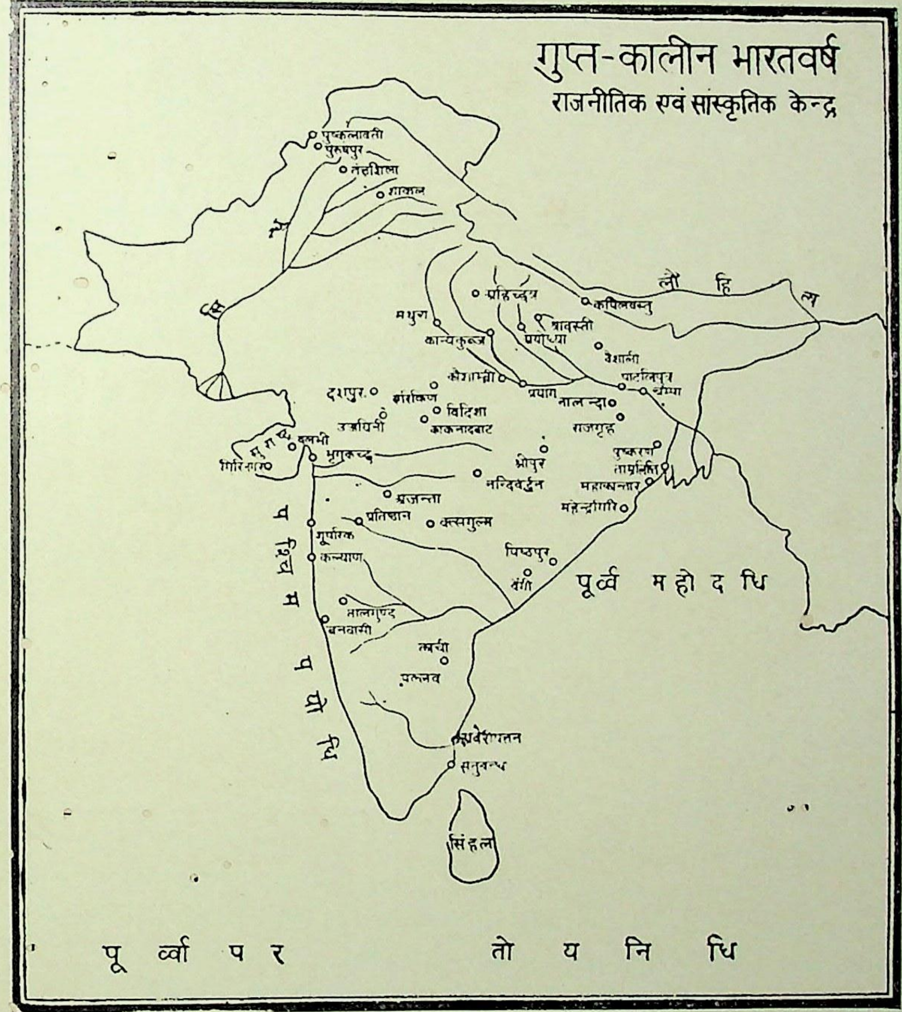

मानचित्र ३ (पृष्ठ २४)

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

गुप्त-वंश-वृक्ष

१ गुप्त

२ घटोत्कच

३ प्रथम चंद्रगुप्त = श्रीकुमारदेवी ई० स० ३२०)

दत्तदेवी = ४ समुद्रगुप्त (ई० स० ३५०–७०) ×

× ५ रामगुप्त या काच ६ कुबेरनागा = द्वितीय चंद्रगुप्त = ध्रुवदेवी (ई० स० ३८०–४१३)

वाकाटक द्वितीय रुद्रसेन = प्रभावतीगुप्ता

घटोत्कचगुप्त ७ प्रथम कुमारगुप्त = अनंतदेवी (ई० स० ४१५–५५) गोविंदगुप्त

८ स्कंदगुप्त[1] (ई० स० ४५५–४६७ ई०) पुरुगुप्त[2] = चंद्रदेवी (ई० स० ४६८–६९)

बुधगुप्त[3] (ई० स० ४७६-४९५) नरसिंहगुप्त (ई० स० ४६९–७२)

भानुगुप्त (५१०–५२५ ई०) द्वितीय कुमारगुप्त (४७२–४७५ ई०)

विष्णुगुप्त वैन्यगुप्त (ई० स० ५७०)

---

१. सिद्धम्ः सर्वराजोच्छेत्तु पृथिव्यामप्रतिरथस्य चतुरुदधिसलिलास्वादितयशसो धनदवरुणेंद्रांतकसमस्य कृतांतपरशोः न्यायगतानेकगोहिरण्यकोटिप्रदस्य चिरोत्सन्नाश्वमेधाहर्तुः महाराज श्रीगुप्तप्रपौत्रस्य महाराज श्रीघटोत्कचपौत्रस्य महाराजाधिराज श्रीचंद्रगुप्तपुत्रस्य लिच्छविदौहित्रस्य महादेव्यां कुमारदेव्यामुत्पन्नस्य महाराजाधिराज श्रीसमुद्रगुप्तस्य पुत्रः तत्परिगृहीती महादेव्यां दत्तदेव्यामुत्पन्नः स्वयं चाप्रतिरथः परम-भागवतो महाराजाधिराज श्रीचंद्रगुप्तस्तस्य पुत्रः तत्पादानुध्यातोमहादेव्यां ध्रुवदेव्यामुपन्नः परमभागवतो महाराजाधिराज श्रीकुमारगुप्तः तस्य सुतोऽयम् गुप्तवंशैकवीर प्रथितविपुलधामा नामतः स्कंदगुप्तः।—फ्लीट—गु०ले०, नं०१२। प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन, खंड २, मूल लेख-पृष्ठ ७० : ७३।

२. भितरी की राजमुद्रा।

३. नालंदा की मुद्राएँ।

नोट—इन लेखों में गुप्त वंश-वृक्ष का पूरा विवरण मिलता है।

नोट—चिह्न (=) से विवाह का संकेत किया गया है।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

मागध-गुप्त-वंश-वृक्ष

१ कृष्णगुप्त

२ हर्षगुप्त — हर्षागुप्त = आदित्यवर्मन् मौखरी

३ जीवितगुप्त प्रथम

४ कुमारगुप्त तृतीय

५ दामोदरगुप्त

६ महासेनगुप्त — महासेनगुप्ता = आदित्यवर्धन

७ माधवगुप्त — कुमारगुप्त[1]

८ आदित्यसेन[2]

९ देवगुप्त — पुत्री = भोगवर्मन् मौखरी

१० विष्णुगुप्त[3]

११ जीवितगुप्त द्वितीय[4]

---

१. हर्षचरित उच्छ्वास ४।

२. अफसद का लेख।

३. मंगराँव प्रशस्ति (हर्ष सम्वत् ११७ = ई० स० ७२३)

४. देव-वरनाक की प्रशस्ति।

नोट — चिह्न (=) से गुप्तवंश की राजकुमारी का विवाह उन व्यक्तियों से संकेत किया गया है।

अध्याय ३

अभिलेख के आधार

प्रशस्तियों ने भारतीय इतिहास लिखने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। वर्तमान एवं मध्ययुग के अनेक साधन—कागज, भोजपत्र या ताडपत्र प्राचीनतम भारत में अज्ञात थे। अतएव लेखकों ने राजाओं की आज्ञा तथा प्रशस्तियाँ लिखने के आधार को ढूढ़ना प्रारम्भ किया। ईसवी पूर्व सदियों में प्रस्तर का सहारा लिया गया। राजाओं ने ऐसी चट्टान को खोजा जो यातातात की दृष्टि से प्रमुख स्थान पर स्थित थे। अत्यंत प्राचीन युग में सीमा के समीप प्रस्तर खंडो पर राजाज्ञा अंकित किए गए ताकि यात्रीगण उसे पढ़कर शासक की नीति या आदेश से विज्ञ हो जायें। राज्य के भीतर प्रधान राजमार्गों के मुहानों पर भी राजाज्ञा प्रसारित की गई। उसके लिखने के आधार भी शिलास्तंभ थे। इस प्रकार समयानुकूल तथा स्थान विशेष को दृष्टि में रखकर अभिलेख विभिन्न आधार पर उत्कीर्ण किए गए। विभिन्न शासकों को परिस्थिति के अनुकूल कार्य करना पड़ा तथा उस माध्यम से राजाज्ञा प्रसारित की गई।

गुप्त काल में जितने अभिलेख उत्कीर्ण हुए उन्हें अधिकतर प्रशस्तियों की श्रेणी में रखखा जाता है। सारांश यह है कि गुप्त नरेशों को अभिलेख अंकन के आधार पर विशेष आग्रह न था। समयानुकूल तथा स्थिति के अनुसार आधार का चुनाव किया जिन्हें कई श्रेणियों में विभाजित करते हैं। गुप्त सम्राटों ने निम्न प्रकार के आधारों का सदुपयोग किया था।

(१) प्रस्तर स्तंभ

(२) धातु स्तंभ

(३) गुहा की दीवार

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

(४) शिला खंड
(५) प्रतिमा चरण पीठ
(६) ताम्रपत्र
(७) मुहरे (मिट्टी की)
(८) सिक्कें (स्वर्ण, रजत तथा ताम्र)

कीर्ति लाभ की अभिलाषा कोई नयी बात नहीं है। **कीर्तिः यस्य स जीवति।** इस लक्ष्य की पूर्ति तथा उद्देश्य को लेकर भारत के प्राचीन नरेशों ने अभिलेख उत्कीर्ण कराए। गुप्तवंश के शासन आरंभ होने पर अनेक प्रशस्तियाँ लिखी गई। सर्वप्रथम समुद्रगुप्त ने प्रशस्ति खुदवाने का श्रीगणेश किया। उसके राजकवि हरिषेण ने सुंदर प्रशस्ति लिखकर समुद्रगुप्त को अमर बना दिया तथा जिस समय तक मानव उसे पढ़ते रहेंगे सम्राट् को भूल नहीं सकते। सम्राट् समुद्रगुप्त प्रयाग में राज्य करता था उसे प्रशस्ति खुदबाने के लिए निकट स्थान में कोशाम्बी का अशोक स्तंभ दिखलाई पड़ा। उस कोशाम्वी स्तंभ पर लेख खोदकर मौर्य सम्राट् अशोक ने संध को दृढ़ करने की चेतावनी दी थी। समुद्रगुप्त के सामने कोई विकल्प नहीं था। अतएव हरिषेण रचित प्रशस्ति को अशोक के धर्म लेख के निचले भाग में उत्कीर्ण कराना पड़ा। वह प्रयाग स्तंभ-लेख के नाम से प्रसिद्ध है और समुद्रगुप्त के विजय—यात्रा का वर्णन करता है। इस गुप्त नरेश ने एरण (सागर, मध्य प्रदेश) स्तंभ पर दूसरा लेख खुदवाया जो उसकी गाथा सुना रहा है।

उसके उत्तराधिकारी द्वितीय चंद्रगुप्त के सम्मुख भी वही प्रश्न उपस्थित हुआ। उसने पश्चिमी भारत पर आक्रमण कर मालवा, गुजरात एवं काठियावाड़ को जीत लिया और उस प्रदेश की जनता को नवीन परिस्थिति से अवगत कराने के लिए अधिकारी वर्ग ने दो स्थानों पर लेख खुदवाए। प्रथम लेख उदयगिरी गुहा की दीवार पर खुदा है। गुहा की दीवार पर लेख अंकित करने की परिपाटी प्राचीन काल से चली आ रही थी। अशोक ने बराबर गुहा (गया के समीप बिहार प्रदेश) की दीवार पर अपना धर्म लेख खुदवाया था। ईसवी सन् की दूसरी सदी में क्षत्रप एवं सातवाहन नरेशों ने नासिक में अनेक गुहाएँ तैयार की थीं। उस स्थान पर शक राजा नहपान के जामाता ऋषभदत्त द्वारा लेख खुदवाए गए जिसका अनुकरण सातवाहन नरेशों ने किया। गौतमी पुत्र सातकर्णि ने युद्ध में नहपान को परास्त कर दिया था अतः जनता के परिज्ञान के निमित गुहा लेख उत्कीर्ण कराना आवश्यक था। उसी दिशा में मालवा क्षेत्र में भी उदयगिरी में गुफाएँ गुप्त काल में खोदी गई। एक स्थान पर वराह भगवान् की विशाल प्रतिमा खड़ी है। गुहा का बरामदा नष्ट हो गया है। वहीं दूसरी गुहा के दीवार पर लेख खुदा है। इस लेख में शक-विजय का वर्णन है कि पाटलिपुत्र का निवासी सेनापति वीरसेन गुप्त सम्राट् द्वितीय चंद्रगुप्त के साथ पृथिवी विजय करने आया था। इस प्रकार गुप्त शासन की प्रधानता प्रकट होती है। मथुरा के समीप में भी शिलाखंड के अभाव में चंद्रगुप्त ने प्रस्तर का ही प्रयोग किया था।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

उसका मथुरा लेख सर्व प्रसिद्ध है। इसकी तिथि गु० स० ६१ अंकित है। इससे प्रकट होता है कि ई० स० ३८० (६१+३१९) में इस स्थान पर (मथुरा) द्वितीय चंद्रगुप्त ने सर्व प्रथम लेख खुदवाया था। उस सम्राट् का एक लेख दिल्ली के समीप मेहरौली में स्थित लौह स्तंभ पर उत्कीर्ण है जिसमें एक चंद्र नामक शासक के दिग्विजय का वर्णन है। राजा चंद्र के समीकरण में मतभेद रहा है पर यह निर्णय सर्वमान्य हो गया कि वह चंद्र सम्राट् द्वितीय चंद्रगुप्त ही है; कोई दूसरा शासक नहीं। मेहरौली का लौह स्तंभ आधुनिक युग का आश्चर्यमय वस्तु है जो वैज्ञानिकों को विस्मय में डाल दिया है। चौथी शताब्दी से अद्यावधि यह धातु स्तंभ धूप तथा वर्षा में खड़ा है परंतु उस पर किसी प्रकार का दोष (जंक) दीख नहीं पड़ता। साधारणतया लोहे में पानी के स्पर्श से जंक लग जाता है किंतु मेहरौली का लौह स्वयं पूर्ववत खड़ा है। गुप्त युग के उच्चतम रसायनिक क्रिया का द्योतक है। इन आधारों के अतिरिक्त चंद्रगुप्त के सामने एक नई वस्तु का दृश्य था जिसे सांची स्तूप कहते हैं। सांची में स्तूप-पूजा तथा उसकी शोभा को निरीक्षण करने हजारों नर-नारी आया करते थे। अतएव गुप्त नरेश ने सांची वेदिका के पूर्वी भाग में सूची पर लेख उत्कीर्ण कराया ताकि आगंतुक यात्रीगण उस प्रशस्ति को पढ़ सकें। अभिलेख में वर्णन है कि उसने काकनाड (सांची का दूसरा नाम) महाबिहार मे भिक्षुओं के भोजन तथा रत्नगृह में दीपक निमित्त पचीस दीनार (स्वर्ण मुद्रा) का दान किया था। इस प्रकार उस प्रदेश में गुप्त नरेश की ख्याति की वृद्धि हुई। द्वितीय चंद्रगुप्त के शासन काल में ही सबसे अधिक संख्या में विभिन्न आधार का उपयोग किया गया। प्रस्तर तथा धातु निर्मित आधार पर लेख खोदे गए थे। मेहरौली का लौह स्तंभ आज भी वैज्ञानिकों के लिए कौतुहल का विषय है।

गुप्त नरेश प्रथम कुमारगुप्त के सामने भी वैसे प्रश्न थे। उसने स्थिति के अनुसार विभिन्न आधारों पर अभिलेख उत्कीर्ण करना निश्चित किया। उत्तर प्रदेश से उपलब्ध लेखों को तीन प्रकार के आधार पर खुदवाया गया था। भिलसद (एटा, उत्तर प्रदेश) नामक स्थान पर स्तंभ पर लेख मिला है। गु० स० ९६ (=ई० स० ४१५) में यह उत्कीर्ण स्तंभ लेख मंदिर से संबद्ध धर्मसत्र (सदावर्त या छत्र) की स्थापना की घोषणा करता है। (देखिए—प्रा० मा० अभि०, पृ० ११०) दूसरा लेख करमदंडा (फैजाबाद) शिवलिंग के अधोभाग प्रस्तर पर उत्कीर्ण है। इसकी तिथि ११७ (=४२६ ई०) अंकित है। तीसरा अभिलेख मनकुंवर (जिला इलाहाबाद) से प्राप्त बुद्ध प्रतिमा के आधार चौकी पर खुदा है। इसमें प्रथम कुमारगुप्त के राज्य में गु० स० १२९ (=४४८ ई०) में बुद्धमित्र द्वारा प्रतिमा-स्थापना का वर्णन है। उस समय तक पश्चिमी भारत का मालवा प्रदेश गुप्त साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया था। मध्य प्रदेश के ग्वालियर राज्य में मंदसोर नामक स्थान समीप शिलाखंड पर एक विस्तृत अभिलेख खुदा है जिसकी तिथि मालव संवत् में लिखी है। उस भूभाग में मालवा संवत् प्राचीन काल से प्रचलित था। उस गणना को मालवा गणतंत्र ने प्रचलित किया था। अतः प्रथम कुमारगुप्त ने उस परिपाटी को ध्यान में रखकर मंदसोर का लेख उस काल गणना से संबंधित किया। बड़े मार्मिक शब्दों

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

में अनेक छंदों में यह लेख दशपुर के वैभव का वर्णन करता है तथा वहाँ की व्यापारिक संस्था श्रेणी (शिल्प संस्थान) का विवरण प्रस्तुत करता है। उसी प्रसंग में शिल्प संस्था के अनेक कार्यों का भी उल्लेल किया गया है। उत्तरी बंगाल में प्रथम कुमारगुप्त को एक सर्वथा नवीन आधार का उपयोग करना पड़ा जिसका प्रयोग पूर्वकाल में अज्ञात था। ताम्रपट्ट पर लेख खुदवाने की परिपाटी प्रायः गुप्त काल से आरंभ हुई और मध्ययुग में सर्वोत्तम उपयोगी आधार सिद्ध हुई। प्रथम कुमारगुप्त के दामोदरपुर (राजशाही, बंगला देश) ताम्रपत्र लेख अत्यंत प्रसिद्ध हैं। गु० स० १२४ तथा १२८ में लेख खोदे गए थे। इन दानपत्रों की प्रमुखता एक विशिष्ट कारण से मानी जाती है। उत्तरी बंगाल के उस भूभाग को गुप्त शासन की एक भुक्ति (कमिश्नरी) के रूप में परिणत कर दिया गया। उसका विषयपति भी भूमिदान से संबंधित रहा। दान पत्रों में भूमि विवरण के साथ दानग्राही एवं शासक (दान कर्त्ता) की वंशावली उल्लिखित की जाती थी। भूमि का क्षेत्रफल भी वर्णित मिलता है। प्रशस्तिकारों ने लेख के अंत में कुछ धार्मिक श्लोकों को स्थान दिया जिनमें दान वापस लेने की निंदा की गई है। दान पालन करने वाले राजा की प्रशंसा तथा मंगल कामना भी अंकित है। सर्वप्रथम कुमारगुप्त के दान पत्रों में मंगलमय तथा श्रापयुक्त श्लोको को स्थान दिया गया। उस काल से मध्ययुग के दानपत्रों में यह एक नियमित कार्य शैली बन गई और उन पद्यों का अंकन आवश्यक समझा गया।

प्रथम कुमारगुप्त के पुत्र एवं उत्तराधिकारी स्कंदगुप्त को साम्राज्य के विभिन्न प्रांतो में पृथक-पृथक अभिलेख आधार का उपयोग करना पड़ा। उसने पश्चिम भारत के काठियावाड़ प्रदेश में गिरनार पर्वत के चट्टान पर लेख खुदवाया जिसकी विशेष महत्ता थी। गिरनार पर्वत (जूनागढ़, काठियावाड़) पर अशोक के चौदह प्रधान शिलालेख खुदे थे। तत्पश्चात् दूसरी सदी (१५० ई०) में महाक्षत्रप रूद्रदामन ने भी लेख उत्कीर्ण कराया। अशोक का लेख ब्राह्मी लिपि तथा प्राकृत भाषा में लिखा था किंतु रूद्रदामन का अभिलेख काव्यमय संस्कृत का प्रथम ऐतिहासिक दृष्टांत है जिसके पूर्व लिखित संस्कृत का प्रचलन अज्ञात है। महाक्षत्रप रुद्रदामन के मुद्रालेख प्राकृत भाषा में हैं किंतु कारणवश उसने लेख को संस्कृत में खुदवाया। पाँचवी सदी में स्कंदगुप्त ने अपने लेख को संस्कृत भाषा में ही गिरनार पर्वत पर उत्कीर्ण कराया। इसमें राजनीतिक चाल क्या थी इस रहस्य का पता नहीं। दक्षिण पश्चिम भारत में शको का भारतीय-करण हो रहा था। संस्कृत (देववाणी) भाषा में लेख उत्कीर्ण करा कर रूद्रदामान ने उसी कार्य पद्धति (भारतीयकरण) का अनुसरण किया था। स्कंदगुप्त के सम्मुख दूसरा विकल्प न था। उस ऐतिहासिक स्थल पर अभिलेख खुदवा कर स्कंदगुप्त ने अपने को अमर बना दिया। उस अभिलेख के अनुशीलन से पता चलता है कि स्कंदगुप्त को पश्चिमी भारत में अपना प्रतिनिधि नियुक्त करना था। शासन के भार को वहन करने वाला समझ कर पर्णदत्त की नियुक्ति हुई। उस भूमाग के सुप्रसिद्ध जलाशय 'सुदर्शन' के विकृत दशा में सुधार लाकर स्कंदगुप्त यश का भागी बना, ऐसा वर्णन उपलब्ध है।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

पश्चिमी भारत के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश में सारनाथ के समीप भितरी नामक स्थान से शिला स्तंभ पर उत्कीर्ण अभिलेख प्रकाश में आया है। इसके आरंभ में प्रशस्तिकार ने स्कंदगुप्त के पूर्वजों का नामोल्लेख कर गुप्तसम्राट् के गुणों का वर्णन किया है। उस स्थान पर आक्रमणकारी हूणों के पराजय की वार्ता को प्रमुख स्थान दिया गया है, जिसके पश्चात् स्कंदगुप्त पूर्णरूपेण शासक हो गया। उत्तर प्रदेश के बुलंद शहर जिला के अंतर्गत इंदौर स्थान से स्कंदगुप्त का एक ताम्रपत्र मिला है, जिसमें स्थानीय तैलिक श्रेणी का विवरण है। उस श्रेणी ने सूर्य भगवान् की स्थापना की थी। बिहार प्रदेश में भी दान देकर स्कंदगुप्त ने प्रस्तर स्तंभ पर लेख खुदवाया। स्तंभ लेख खंडित है तथापि शेष अभिलेख के अध्ययन से गुप्तवंशाली का परिज्ञान हो जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि स्कंदगुप्त ने शिला खंड, प्रस्तर तथा ताम्रपत्र इन तीन आधारों का प्रयोग किया था।

यद्यपि प्रस्तर के बाद ही ताम्रपट्ट का प्रयोग हुआ, किंतु यह परिपाटी प्राचीन नहीं है। गुप्तवंश में प्रथम कुमारगुप्त से आरंभ होकर भानुगुप्त तक ताम्रपट्टिका पर लेख उत्कीर्ण होते रहे। ताम्रपत्रों के अध्ययन से कई विषयों पर प्रकाश पड़ता पड़ता है। राजनीतिक स्थिति के अतिरिक्त धार्मिक तथा सामाजिक बातों का उल्लेख पाया जाता है। स्कंदगुप्त का इंदोर ताम्रपत्र लेख 'शासन' समझा जाता है। गुप्तों के सामंत हस्तिन तथा संक्षोभ के अनेक ताम्रपत्र मध्य भारत के खोह नामक स्थान से मिले हैं। मध्य युगी ताम्रपत्र अत्यंत महत्वपूर्ण अभिलेख माने जाते हैं जो चतुर्भुजाकार होते हैं। राजकीय मुद्रा उस पर अंकित रहती है जिससे अभिलेख की प्रमाणिकता सिद्ध होती है। ताम्रपत्रों के आकार पर ही लेखों का विस्तार निर्भर रहता है।

गुप्त शासकों ने पांचरात्र मत के अनुसार चर्या और क्रिया को प्रधान कार्य समझा। अतएव दोनों कार्यों के निमित ताम्रपट्टिका पर दान लिखवाना आवश्यक समझा गया। ताम्रपट्टिका पर भूमि का पूर्ण विवरण लिखकर दानग्राही को दे दिया जाता जो उसे सुरक्षित रखता था। यही कारण है कि गुप्त नरेशों ने ताम्रपत्र का उपयोग किया। अभिलेख लिखने का कार्य उत्तरोत्तर बढ़ता गया। गुप्त शासन काल में इनका अधिक प्रचार एवं प्रसार हुआ।

स्कंदगुप्त गुप्त वंश का अंतिम प्रतापी, शक्ति संपन्न तथा प्रभावशाली नरेश था जिसकी मृत्यु के उपरांत सामंत स्वतंत्र होते गए। पश्चिमी भारत गुप्त साम्राज्य से पृथक हो गया। उसके उत्तराधिकारी सीमित क्षेत्र के शासक हो गए। उनके अभिलेख सीमित स्थान तथा अल्प संख्या में मिले हैं। सारनाथ के समीप भितरी (गाजीपुर, उत्तर प्रदेश) नामक स्थान से एक बड़ी मुद्रा (Seal) मिली है जिसमें प्रथम कुमारगुप्त के वंशज (स्कंदगुप्त को छोड़कर) के नाम उल्लिखित हैं। पुरु, नरसिंह तथा कुमार (द्वितीय) के नाम एक ही स्थान पर मिलते हैं। तीनों का कोई पृथक-अभिलेख प्रकाश में नहीं आया है। यानी एक मुद्रा लेख से तीन नरेशों के नाम उपलब्ध हैं। प्रायः दस वर्षों में तीनों शासक का राज्यकाल माना जाता है। ई० स० ४७६ में बुधगुप्त शासक

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

हुआ जिसके लेख, (अ) प्रस्तर स्तंभ, (ब) प्रतिमा आधारशिला तथा (स) ताम्रपत्र पर अंकित हैं। एरण (सागर, मध्य प्रदेश) स्तंभ लेख में उसके सामंत का विवरण है जो गु० स० १६५ (= ४८४ ई०) में शासन करता रहा। उत्तरी बंगाल में अनेक ताम्रपत्र उपलब्ध हुए हैं। दामोदरपुर (दीनाजपुर, बंगला देश) नामक स्थान से कई ताम्रपत्र प्राप्त हुए थे। गुप्त वंश के ताम्रपत्र अधिकतर दामोदरपुर या मध्य भारत (खोह) से प्रकाश में आए हैं। इन आधार के अतिरिक्त बुधगुप्त ने बुद्धप्रतिमा के आधार चौकी पर अभिलेख खुदवाया था जो सारनाथ संग्रहालय में सुरक्षित है। इसी स्थान से कुमारगुप्त नामक राजा का भी लेख प्राप्त हुआ है। बंगाल में शासन करने वाले अन्य शासकों ने भी ताम्रपत्र पर दान लेख उत्कीर्ण करवाया था।

उत्तर—गुप्त नरेशों में आदित्यसेन के कई शिलालेख मिले हैं। अफसद (नवादा, जिला गया) का अभिलेख अत्यंत प्रसिद्ध है जिससे अनेक शासकों के विषय में हमारी जानकारी होती है। आदित्यसेन तथा विष्णुगुप्त का मंगरांव शिलालेख हर्ष संवत् से संबद्ध हैं। अभिलेखों के आधार संबंधी चर्चा समाप्त करने से पूर्व गुप्त मुद्राएँ (Seals) तथा सिक्कों (Coins) की वार्ता नितांत आवश्यक प्रतीत होती है। यद्यपि मुहर तथा सिक्कों पर विशेष प्रकार के संक्षिप्त अभिलेख खोदे गए हैं पर आधार की दृष्टि से वे कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। नालंदा तथा वैशाली से गुप्त कालीन मुहरें अधिक संख्या में उपलब्ध हुई हैं। कच्ची मिट्टी के पिंड पर लेख अंकित कर उसे आग में पकाया जाता था। उसी को मुहर का नाम (Seal) देते हैं। प्रशस्ति लिखने के आधार की सूची में इसकी गणना भी विशेष रूप से होनी चाहिए। राजकीय मुहरों का नाम भी लिया जाता है जिनपर शासक का नाम खोदा गया था। वे साधारणतया ताम्रपट्टियों से जुड़े रहते हैं। अन्य कर्मचारियों की भी मुहरें प्राप्त हुई हैं जिन्हें कार्यालय के पत्राचार में प्रयोग किया जाता था। निजी मुहरे भी खुदाई से निकली हैं। इस तरह की मुहरें उत्तरी भारत के अनेक स्थानों से प्राप्त हुई हैं (आ० स० रि०, १९०३-०४)। वैशाली, कसिया, नालंदा, राजघाट, कौशाम्बी तथा भीटा से अधिक मुहरें प्रकाश में आई हैं। धातु मुहरों पर देवतागण की आकृति खुदी दिखाई पड़ती है। भीटा की मुहरों पर शिवलिंग, त्रिशूल तथा बृषभ की आकृतियाँ खोदी गई थीं। आकृतियों के निचले भाग में गुप्त लिपि में लेख भी अंकित हैं। नालंदा से धातु एवं मिट्टी की मुहरें प्रकाश में आई हैं। गुप्त वंश के भितरी राजमुद्रा पर गरुड़ की आकृति है। नीचे द्वितीय कुमारगुप्त के वंश की चर्चा है। पांचवीं सदी से वैशाली (वसाढ़, उत्तर विहार) में अधिक मुहरें तैयार होती रही। मिट्टी की मुहर धातु के साँचे द्वारा तैयार की जाती जिन पर आकृति तथा लेख दोनों उभर आते थे। वास्तव में साँचा ही लेख का आधार था जिस पर उलटे रीति से आकृति या लेख उत्कीर्ण किए जाते थे। मृत पिंड पर दबाव पड़ने से साँचे का कलात्मक नमूना उभर आता और इस कच्ची मिट्टी को आग में पका कर स्थायी मुहर तैयार किया जाता था। वैशाली की मुहरों पर राजकुमार गोविंदगुप्त, रानी ध्रुवदेवी के नाम भी खुदे हैं। उस पर खुदे अभिलेखों से निगम नामक संस्था पर भी प्रकाश पड़ता है। इन पर व्यापारिक

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

श्रेणियों तथा कार्यालय के नाम उत्कीर्ण है। इस प्रकार मुहरों के अध्ययन से गुप्त-शासन-पद्धति पर प्रकाश पड़ता है। कुछ मुहरों पर तीरभुक्ति (तिरहुत प्रमंडल) के राज्यपाल या सामंत का वर्णन है। उनपर खुदे कुछ लेख निम्न प्रकार के हैं—

(१) **तीरभुक्त उपरिकाधिकरणस्य** (तिरहुत के राज्यपाल का कार्यालय)
(२) **कुमारामात्याधिकरणस्य** (कुमारामात्य के कार्यालय का)
(३) **श्रेष्ठी निगमस्य** (श्रेष्ठी के संघ का)
(४) **श्रेष्ठी श्रीदासस्य** (श्रीदास सेठी की मुहर)

मुहरों के अतिरिक्त सिक्कों पर लेख खोदे जाते थे। गुप्त राजाओं के स्वर्ण सिक्कों पर शासक के नाम तथा संस्कृत में छंदवद्ध लेख (Legend) खुदे हैं। संभवतः गुप्तकाल में संस्कृत राजभाषा थी। सिक्के-लेख भी अमूल्य आधार हैं जिनसे गुप्त राजा के सामाजिक जीवन घटनाओं का परिज्ञान हो जाता है। समुद्रगुप्त ने दिग्विजय के पश्चात् अश्वमेव किया तथा सैकड़ों युद्धों में शत्रुओं को पराजित किया था। प्रथम कुमारगुप्त द्वारा सिंह तथा गैंडा के मारने की घटना का परिज्ञान मुद्रालेख (Legend) से हो जाता है। गुप्त चांदी के सिक्के भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। पश्चिम भारत के विजयोपरांत द्वितीय चंद्रगुप्त ने रजत सिक्के प्रचलित किए। स्वर्ण तथा रजत सिक्कों की प्रमुखता भूलाई नहीं जा सकती।

अंतिम आधार के रूप में कुम्हरार से मिट्टी के पात्र की भी गणना होती है। गुप्तकालीन विहार की खुदाई से पुरातत्व सामग्रियों में मिट्टी के पात्र भी उपलब्ध हुए हैं। एक पात्र पर "**आरोग्य विहारे भिक्षुसंघस्य**" वाक्य पढ़ा गया है। संभवतः वह पात्र औषधालय में प्रयुक्त किया जाता रहा, इस कारण उस प्रकार का लेख खोदा गया था। संक्षेप में यह कहना उचित होगा कि गुप्तकाल में प्रायः सभी प्रकार के आधारों का उपयोग शासक कर चुके थे।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

अध्याय ४

अभिलेखों से इतिहास-ज्ञान

प्राचीन भारतीय इतिहास के निर्माण सामग्रियों में उत्कीर्ण लेख सर्वोपरि माने गए हैं। अभिलेखों के ऐतिहासिक मूल्यांकन करते समय सतर्क रहना पड़ता है क्योंकि सभी साधन सत्य की कसौटी पर उतारे नहीं जा सकते। पूर्व मध्ययुग से अभिलेखों में कुछ अत्युक्ति तथा प्रशंसात्मक बातें उल्लिखित हैं। प्रशस्तिकार ने अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करने के निमित्त कुछ ऊंचे स्तुतिपूर्ण वाक्य लिखे भी हैं जो आश्चर्यजनक नहीं माने जा सकते। उदाहरण के लिए गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त तथा उत्तर-गुप्त वंश के अंतिम नरेश द्वितीय जीवित गुप्त की पदवियों पर विचार करने से उपरियुक्त बातें स्पष्ट हो जाती हैं। समुद्रगुप्त की पदवी प्रयाग प्रशस्ति में "महाराजाधिराज" मात्र उल्लिखित हैं किंतु देव बरनार्क लेख में जीवितगुप्त—**"परम माहेश्वर परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर"** की महान पदवी से विभूषित किया गया है। यानी समुद्रगुप्त ऐसे दिग्विजयी तथा शक्तिशाली शासक के लिए प्रयुक्त न होकर द्वितीय जीवितगुप्त ऐसे नगण्य राजा के लिए उल्लिखित हैं। अतः ऐसे अवसर पर अतिशयोक्ति को ध्यान में रखकर लेख पर विचार करना चाहिए। लेख को विश्वसनीय समझने से पूर्व उसके पुष्ट करनेवाले साधनों पर विचार करना आवश्यक है। अभिलेखों से इतिहास निर्माण में जिस श्रेणी तक सहायिता मिलेगी उसे उतना ही ऐतिहासिक घोषित किया जायगा। सभी विषयों पर गंभीरतापूर्वक गहन रीति से अनुशीलन कर प्रशस्ति का ऐतिहासिक मूल्यांकन करना चाहिए। एक घटना की पुष्टि अनेक लेखों से भी होती है। इस प्रकार इतिहास-लेखन में अभिलेखों ने जो सहायता पहुँचाई है वह अन्य पुरातत्व सामग्रियों से श्रेष्ठतर है।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

प्राचीन अभिलेखों के अध्ययन से गुप्त वंश के शासकों की कीर्ति, विजय तथा शक्ति का अनुमान लगाया जा सकता है। अधिकतर लेख युद्ध गाथा की बातें बतलाते हैं।

युद्ध-गाथा एवं राज्य विस्तार

प्रयाग प्रशस्ति में समुद्रगुप्त के विजय का वर्णन है कि वह सम्राट् पाटलिपुत्र से लेकर दिल्ली के भूभाग पर शासन करता रहा। अपने दिग्विजय के यात्रा में प्रयाग के दक्षिण कोशल (मध्यप्रदेश) होकर उड़ीसा को पार कर काँची तक (मद्रास से चालीस किलोमीटर दूर) उसने विजय पताका फहराई थी। उसने दक्षिणापथ के राजाओं को मुक्त कर धर्मविजयी नरेश का प्रशंसनीय कार्य किया था। गुप्त सम्राट् ने उत्तर तथा दक्षिण भारत में समान रूप से शत्रुओं को परास्त कर सम्राज्य का श्रीगणेश किया। उसके उतराधिकारी द्वितीय चंद्रगुप्त के मालवा के दो लेख—(१) उदयगिरि गुहा लेख तथा (२) साँची वेदिका लेख गुप्त सम्राट् के मालवा, गुजरात तथा काठियावाड़ के विजय की गाथा सुनाते हैं। गुप्त नरेश ने पाटलिपुत्र के निवासी सेनापति वीरसेन के साथ पश्चिमी भारत का विजय कर शकों को वहाँ से वहिष्कृत किया था। इस प्रकार के उल्लेख शासक द्वारा विजय की वार्ता प्रस्तुत करते हैं। दिग्विजय की यात्रा से गुप्त शासक के साम्राज्य विस्तार का परिज्ञान हो जाता है। समुद्रगुप्त महत्वाकांक्षी होने के कारण दिल्ली-ग्वालियर के भूभाग के शासक नागवंशी राजाओं को परास्त कर पाटलीपुत्र से ग्वालियर (मध्य प्रदेश) तक राज्य का विस्तार किया। दक्षिणापथ के पराजित शासकों को मुक्त करने से काँची तक के क्षेत्र पर उसका आधिपत्य फैल गया। उत्तरी भारत में ही साम्राज्य का विस्तार हुआ। उसके उत्तराधिकारी द्वितीय चंद्रगुप्त ने पैतृक साम्राज्य का विस्तार गुजरात, काठियावाड़ तक किया। अतएव साँची तथा उदयगिरि के अभिलेख गुप्त राज्य के विस्तृत क्षेत्र (राज्य) के द्योतक हैं। चंद्रगुप्त के पुत्र प्रथम कुमारगुप्त ने राज्य का संरक्षण मात्र से संतोष किया क्योंकि उसके शासन काल में किसी विजय की चर्चा लेखों में उपलब्ध नहीं हैं। उसने अश्वमेध अवश्य संपन्न किया जो कुमारगुप्त के अश्वमेध स्वर्ण मुद्रा से प्रमाणित होता है। परंतु उसके विजय के पोषक प्रमाणों का अभाव है। उसके उत्तराधिकारी स्कंदगुप्त के अभिलेखों में गिरनार का शिलालेख (जूनागढ़, काठियावाड़) प्रसिद्ध है। इससे यह परिणाम निकलता है कि स्कंदगुप्त के शासन काल तक काठियावाड़ तक साम्राज्य अवश्यमेव सुरक्षित रहा। कुमारगुप्त के पश्चात् स्कंदगुप्त पश्चिम भारत से उत्तरी बंगाल तक के भूभाग पर शासन करता रहा, जो स्कंदगुप्त के पश्चात् विकृत हो गया। स्कंदगुप्त के राज्य काल में हूणों का आक्रमण हुआ, जिसका उल्लेख भितरी स्तंभ लेख के निम्न पंक्तियों में मिलता है—

(१) हूणैर्य्यस्य समागतस्य समरे दोर्भ्यां धरा कंपिता

(२) विचलित कुललक्ष्मी स्तंभनायोद्यतेन

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

(३) पितरि दिवमुपेते विप्लुतां वंशलक्ष्मी भुजबल विजतारिर्यः प्रष्ठिाप्य भूयः
(प्राचीन भारतीय अभिलेख, पृ० ३३३)

अपितु उस आक्रमण को विफल बनाकर स्कंदगुप्त समस्त साम्राज्य पर सुचारु रूप से शासन करता रहा (काठियावाड़ से उत्तरी बंगाल)। उसकी स्वर्ण मुद्रा के अध्ययन से गुप्त राज्य के आर्थिक कठिनाई की वार्ता स्पष्ट हो जाती है। किंतु साम्राज्य पर किसी प्रकार के आक्रमण की घटना अज्ञात है। यह सत्य है कि स्कंदगुप्त के बाद गुप्त शासन की 'अवनति' होने लगी। काठियावाड़ में मैत्रक लोगों का उदय संकेत करता है कि पश्चिमी भारत पर गुप्त अधिकार समाप्त हो गया था। स्कंदगुप्त के जूनागढ़ अभिलेख के पश्चात् किसी गुप्त नरेश ने उस स्थल पर प्रशस्ति नहीं खुदवाई। उस भूभाग में पश्चिमी ढंग के रजत सिक्कों का प्रचलन की समाप्ति प्रमाणित करती है कि पश्चिम भारत में गुप्तशासन का अंत हो गया था। स्कंदगुप्त के उत्तराधिकारियों में बुधगुप्त का नाम विशेषतया उल्लेखनीय है जिसने शक्ति बल तथा प्रभाव के कारण मध्यदेश (एरण) से उत्तरी बंगाल तक शासन किया था। इसके दामोदरपुर के ताम्रपत्र अभिलेख उपरियुक्त बातों को प्रमाणित करते हैं। पश्चिम में वाराणसी तक (बौद्ध प्रतिमा का लेख के आधार पर) इसका अधिकार प्रकट होता है। सारांश यह है कि अभिलेखों का अनुशीलन एवं विश्लेषण गुप्त सम्राटों के युद्ध गाथा तथा राज्य विस्तार पर प्रकाश डालते हैं।

वंश वृक्ष

गुप्त शासकों की प्रशस्तियों के अध्ययन से विदित होता है कि उनमें गुप्तवंश की वंशावली प्रस्तुत की गई है। प्रशस्तियों में राजवंश की परंपरा का उल्लेख है। शासक के राज्यकाल में जितने लेख खोदे गए प्रायः सब में वंशावली का विवरण मिलता है। ईसवी पूर्व सदियों में ऐसी परिपाटी नहीं थी। सर्वप्रथम ई० स० १५० में जूनागढ़ लेख में महाक्षत्रप रूद्रदामन की तीन पीढ़ियों का उल्लेख किया गया है। गुप्त अभिलेखों में वंशावली का उल्लेख विशेष स्थान पर है। जिस शासक की प्रशस्ति है उसके पूर्वजों के नाम मिलते हैं। उदाहरण के लिए समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में श्रीगुप्त से लेकर समुद्रगुप्त तक राजाओं के नाम उल्लिखित हैं—

श्रीगुप्त प्रपौत्रस्य महाराज श्रीघटोत्कच पौत्रस्य महाराजाधिराज श्रीचंद्रगुप्त पुत्रस्य लिच्छविदौहित्रस्य महादेव्यां कुमारदेव्यां उत्पन्नस्य महाराजाधिराज श्रीसमुद्रगुप्तस्य।

श्रीगुप्त से वंशावली का विवरण द्वितीय चंद्रगुप्त के लेखों में नहीं मिलता। मथुरा स्तंभ लेख में केवल समुद्रगुप्त (पिता) तथा चंद्रगुप्त (पुत्र) के नाम उल्लिखित हैं। प्रथम कुमारगुप्त के भिलसद स्तंभ लेख में श्रीगुप्त से लेकर कुमारगुप्त के नाम मिलते हैं। यही दशा स्कंदगुप्त के भितरी स्तंभ लेख एवं विहार स्तंभ लेख का है। इन दोनों में पूरी वंशावली निम्न रूप से दी गई है :—

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

महाराज श्रीगुप्त प्रपौत्रस्य महाराज श्रीघटोत्कच पौत्रस्य महाराजाधिराज श्रीचंद्रगुप्त पुत्रस्य लिच्छविदौहित्रस्य महादेव्यां कुमारदेव्यामुत्पन्नस्य महाराजाधिराज श्रीसमुद्रगुप्तस्य पुत्रः तत्परिगृहीतो महादेव्यांनन्त देव्यामुत्पन्नः स्वयं चाप्रतिरथः परम भागवतो महाराजाधिराज श्रीचंद्रगुप्तस्य पुत्रः तत्पादानुध्यातो महादेव्यां ध्रुवदेव्यांमुत्पन्नः परम भागवतो महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्तः तस्य—सुतोऽयम नामतः स्कंदगुप्तः।

अभिलेखों के परीक्षण से प्रकट होता है कि केवल स्तंभों पर वंशावली लिखने की रीति अपनाई गई। प्रथम कुमारगुप्त के मंदसोर तथा स्कंदगुप्त के जूनागढ़ प्रशस्तियों में वंशावली की रूपरेखा तक नहीं दीख पड़ती। इस वंशावली के अध्ययन से ज्ञात होता है कि लिच्छवि वंश से वैवाहिक संबंध का सर्वत्र उल्लेख है। कुमारदेवी के पश्चात् लेखों में महादेवी के नाम मिलते हैं। पश्चिमी भारत (मालवा, काठियावाड़) के लेखों में केवल शासक का नामोल्लेख है। जैसे—

(अ) कुमारगुप्ते पृथिवीं प्रशासति (मंदसोर लेख)

(ब) नृपतिगुन निकेतः स्कंदगुप्तः पृथुश्री (जूनागढ़ लेख)

इन अभिलेखो में प्रशस्तिकार ने गुप्त वंशावली का वर्णन न कर केवल शासक का ही उल्लेख किया है। इसमें क्या रहस्य था, इसे व्यक्त करना कठिन है।

यदि द्वितीय कुमारगुप्त की भितरी राजमुद्रा पर विचार किया जाय तो दूसरी वंश परंपरा का ज्ञान हो जाता है। अन्य लेखों के सदृश प्रथम कुमारगुप्त तक राजाओं के नामों की समता है परंतु उसके पश्चात् स्कंदगुप्त का नामोल्लेख न कर पुरुगुप्त का नाम दिया है—

श्रीकुमारगुप्तः तस्य पुत्रः तत्पादानुध्यातो महादेव्यां अनंतदेव्यामुत्पन्नः महाराजाधिराज श्रीपुरुगुप्तः तस्य पुत्रः पादानुध्यातो महादेव्यां श्रीचंद्रदेव्यां उत्पन्नः महाराजाधिराज श्रीनरसिंहगुप्तः तस्य पुत्रः तत्पादानुध्यातो परम भागवतो महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्तः।

(प्राचीन भारतीय अभिलेख, पृ० ३३६)

इस प्रकार लेखों के अनुशीलन से गुप्त वंशावली का परिज्ञान हो जाता है। इसके परीक्षण से यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि पूरी वंशावली का उल्लेख प्रशस्तिकार ने किस समय किया अथवा किसी अभिलेख में केवल शासक का नाम ही क्यों दिया? ऐसे संदिग्ध विचार के विपरीत पोषक प्रमाण न होने से किसी तथ्य पर पहुँचना कठिन है।

समकालीनता

भारतीय लेखों में प्रशस्तिकार संरक्षक के विजय यात्रा का विवरण उपस्थित करते समय अन्य समकालीन नरेशों के नाम भी प्रसंगवश उल्लेख करता है। युद्ध में शासक तथा प्रतिद्वंदी का

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

नामोल्लेख भी आवश्यक है। इसी कारण अशोक के द्वितीय तथा तेरहवें शिलालेख में अन्य राजाओं के नाम मिलते हैं। ईसवी सन् की पहली सदी में कुषाण नरेश कदफिस तथा भारतीय यूनानी राजा हरमेयस के संयुक्त सिक्के समकालीनता सिद्ध करते हैं। नासिक गुहालेख में सातवाहन राजा सातकर्णि तथा क्षत्रप नरेशों नहपान आदि के नाम मिलते हैं। इसी प्रकार प्रयाग स्तंभलेख में हरिषेण ने उन राजाओं के नाम दिए हैं जो समुद्रगुप्त द्वारा पराजित हुए थे। इसके अतिरिक्त प्रत्यंत नृपति (सीमा पर शासन करने वाले), समतट, डवाक, कामरूप, नेपाल आदि राज्यों के नाम उल्लिखित हैं। उस समय दक्षिणापथ के शासक महेन्द्र तथा विष्णुगोप (कांची का राजा) आदि को समुद्रगुप्त ने परास्त किया था। अतः वे समुद्रगुप्त के समकालीन हो जाते हैं। प्रथम कुमारगुप्त तथा स्कंदगुप्त के अभिलेखों में हूण आक्रमण का वृत्तांत वर्णित हैं। संभवतः हूण सरदार तोरमाण स्कंदगुप्त का समकालीन शासक था। उत्तर-गुप्त नरेश आदित्यसेन के अफसद शिलालेख में वर्णन आता है कि हर्षवर्धन तथा उसका पिता माधवगुप्त मित्र थे। बाण ने भी हर्षचरित में ऐसा ही उल्लेख किया है। अतएव माधवगुप्त तथा हर्षवर्धन को समकालीन मानने में किसी को आपत्ति नहीं हो सकती। कहने का तात्पर्य यह है कि लेखों के आधार पर समकालीनता स्थिर करने में बड़ी सहायता मिलती है।

प्राचीन प्रशस्तियों तथा मुद्रालेख के अध्ययन से यह विदित होता है कि प्राचीन भारत में दो प्रकार की शासन पद्धतियाँ वर्तमान थीं—(अ) राजतंत्र तथा (ब) प्रजातंत्र। प्रजातंत्र के लिए गण या संघ शब्द का प्रयोग मिलता है। ईसा पूर्व छठी सदी में षोडश महाजनपद युग से ही दोनों पद्धतियाँ वर्तमान रहीं और उनका क्रम गुप्तकाल तक चलता रहा। उत्तरी बिहार में वृज्जिसंघ इतिहास में सुप्रसिद्ध प्रजातंत्र था जिसका उल्लेख बौद्ध ग्रंथों में मिलता है। भगवान् बुद्ध कई बार वहाँ वर्षावास कर चुके थे। उसी प्रसिद्ध लिच्छवि वंश की राजकुमारी कुमार देवी का विवाह प्रथम चंद्रगुप्त से हुआ था। यही कारण है कि गुप्तवंश के अभिलेखों में समुद्रगुप्त सदा **लिच्छवि दौहित्रस्य कुमारदेव्यामुत्पन्नः**' कहा गया है। प्रथम चंद्रगुप्त के सोने के सिक्के पर भी अग्रभाग में राजा के नाम के साथ '**श्री कुमार देवी**' अंकित है। पृष्ठभाग पर '**लिच्छवयः**' उत्कीर्ण है। अतएव गुप्तवंश से संबंधित इस गणराज्य का इतिहास अत्यंत पुराना है। मौर्य-युग से ही यौधेय, मालव, आर्जुनायन आदि संघों के नाम मिलते हैं जिसका पाणिनि ने भी उल्लेख किया है। यूनानी लेखकों ने इनका वित्ररण दिया है कि संघ-मुख्य राजाओं (राजतंत्र के शासक) से युद्ध होता रहा। अभिलेखों में विजय या पराजय की बातें मिलती हैं। ईसवी सन् १५० में महाक्षत्रप रुद्रदामन से यौधेयगण का युद्ध हुआ था जो क्षत्रिय वंश के 'वीर' कहे गए हैं। पश्चिमी भारत में शासन करने वाले गण-मुख्यों ने समय-समय पर कुषाण राज्य पर भी आक्रमण किया था। विद्वानों का मत है कि कुषाण राज्य की अवनति में यौधेय संघ ने हाथ बँटाया था। यही कारण है कि गण के सिक्कों पर '**यौधेयानां गणस्य जयः**' वाक्य खुदा है। यह संघ शासन

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

गुप्तकाल तक चलते रहे। प्रयाग प्रशस्ति में समुद्रगुप्त के हाथों उनके पराजित होने का विवरण पाया जाता है। निम्नलिखित उद्धरण उसे पुष्ट करता है—

मालव, आर्जुनायन, यौधेय मद्रकाभीरप्रार्जून सनकानीक काकखरपरिकादिभिश्च
(प्रयाग लेख)

इससे सारांश निकलता है कि समुद्रगुप्त ने संघ शासन का अंत कर दिया। ईसवी पूर्व सदियों से जो गण शासन थे उनका विनाश गुप्तकाल में हो गया। यानी इनका शासन सात सौ वर्षों (ईसा पूर्व तीसरी सदी से चौथी शताब्दी तक) प्रचलित रहा। इसके बाद प्रजातंत्र राजतंत्र में विलीन हो गए। मध्ययुगीन अभिलेखों में संघ शासकों का उल्लेख नहीं पाया जाता।

संघ शासन के विरोधी संस्था—राजतंत्र अनेक शताब्दियों से भारत में प्रचलित रहा। प्राचीन मगध में शिशुनाग वंश ने राजतंत्र को बलवान बनाने का प्रयत्न आरंभ किया। बिम्बिसार ने साम्राज्य स्थापना की भावना से छोटे राज्यों का अंत करना चाहा। पर वह पूर्ण रूपेण सफल न हो सका किन्तु मौर्य सम्राट् चंद्रगुप्त मौर्य साम्राज्य की स्थापना में सफल हो सका। उसने अफगानिस्तान से बंगाल तक तथा हिमालय से दक्षिण में मैसूर तक के विशाल भूखंड पर शासन किया। मौर्यों से पूर्व मगध में ही नंदों का शासन सीमित था। साम्राज्य स्थापना की उत्कट भावना ने ही चंद्रगुप्त मौर्य को विजयी बनाया तथा विशाल साम्राज्य की स्थापना में उसे सफलता मिली। उसके पौत्र अशोक ने साम्राज्य को सुरक्षित रखा। कलिंग युद्ध विद्रोह दबाने का एक मात्र उपाय था। साम्राज्य की वृद्धि में अशोक की कोई कामना न थी। उसकी नीति के कारण मृत्यु पश्चात् मौर्य साम्राज्य का बँटवारा हो गया। शताब्दियों पश्चात् ईसवी सन् के आरंभ में कुषाण नरेश कनिष्क साम्राज्य निर्माण की भावना से प्रेरित होकर मध्य एशिया से वाराणसी (उत्तर प्रदेश) तक के विस्तृत भूखंड पर शासन किया था। उसके उत्तराधिकारी क्रमशः शक्तिहीन होते गए। चौथी शताब्दी में गुप्त नरेश समुद्रगुप्त को यह लालसा थी कि वह वृहत्राज्य स्थापित करे। इसी कारण उत्तरापथ तथा दक्षिणापथ के दिग्विजय का संकल्प किया। प्रयाग स्तंभ लेख में उसके विजय का पूर्ण वृत्तांत उल्लिखित है। उत्तरी भारत के राजाओं को जीतकर राज्य-सीमा बढ़ाया। दक्षिणापथ के शासकों के साथ धर्म विजयी राजा के सदृश व्यवहार किया। प्रत्यंत नृपति को जीता। संघ-मुख्यों को परास्त किया। इस प्रकार साम्राज्य के विस्तार एवं सुदृढ़ करने में सफलीभूत हो सका। विष्णुपुराण के आधार पर यह ज्ञात होता है कि उससे पूर्व प्रयाग से मगध तक ही गुप्त राज्य सीमित था। संभव है प्रथम चंद्रगुप्त के मन में साम्राज्य की भावना काम कर रही हो। किंतु वह प्रयत्नशील होकर भी अधिक सफलता प्राप्त न कर सका। परंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के कारण ही महाराजाधिराज की पदवी धारण की तथा गुप्त संवत् आरंभ किया। समुद्रगुप्त द्वारा गण राज्यों का पराजय राजतंत्र की प्रमुखता का द्योतक है। सम्राट् ने प्रबल शक्ति द्वारा प्राचीन भावना (साम्राज्य स्थापना) को साकार बनाया और फलतः प्रजातंत्र को निर्मूल कर दिया। इसके पुत्र द्वितीय चंद्रगुप्त

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

के अभिलेख बतलाते हैं कि वह भी पिता के विचार का समर्थक था। सेनापति वीरसेन के साथ मालवा, गुजरात, काठियावाड़ को विजीत किया। इस प्रकार चौथी सदी में गुप्तों के कारण प्रजातंत्र का विनाश हुआ एवं राजतंत्र की शक्ति को प्रश्रय मिला। गुप्त युग में राजतंत्र के विचार धारा की वृद्धि हुई। विशाल साम्राज्य की स्थिति न होने पर भी गुप्त शासक राजतंत्र शासन-पद्धत्ति का अनुसरण करते रहे।

अभिलेखों तथा मुद्रालेखों (Legends) में उल्लिखित पदवियों से भी शासक के स्थान का परिज्ञान हो जाता है। प्रजातंत्र-मुख्यों की कोई विशेष पदवी नहीं थी। शासन करने वाले प्रमुखों के नाम सिक्कों पर अंकित मिलते हैं। किंतु राजतंत्र पद्धति में राजा की महान् पदवियाँ भी उल्लिखित हैं। सर्वप्रथम भारतीय यूनानी शासकों ने इसे आरंभ किया और बैसिलियस बैसिलियान पदवी यूनानी सिक्कों पर खुदवाया। प्राकृत भाषा में 'महरजस रजरजस' का प्रयोग मिलता है। संस्कृत में इसे 'राजातिराज' कह सकते हैं। प्रयाग स्तंभ लेख में शाहानुसाहि पदवी उसी क्रम में उल्लिखित है जो पिछले कुषाण नरेशों द्वारा उत्कीर्ण करायी गयी थी। गुप्तलेखों में 'महाराजाधिराज' पदवी स्वतंत्र राज्य स्थापित हो जाने के पश्चात् शासकों के लिए प्रयुक्त है। आरंभ में श्रीगुप्त तथा घटोत्कच नामक शासकों के लिए 'महाराज' पदवी ही मिलती है जो उनकी सामंतावस्था का द्योतक है। 'महाराजाधिराज' की स्वतंत्र पदवी का श्रीगणेश प्रथम चंद्रगुप्त ने किया था और स्कंदगुप्त तक यही क्रम लेखों में पाया जाता है। मेहरौली लौह-स्तंभ लेख में द्वितीय चंद्रगुप्त के लिए—**प्राप्तेन स्वभुज्जितं च रुचिरं चैकाधिराज्यं क्षितौ**। वाक्य उल्लिखित है। यानी चंद्र नरेश ने एकछत्र राज्य स्थापित किया था। धनाइदह ताम्रपत्र में प्रथम कुमार गुप्त के लिए **'परमभट्टारक महाराजाधिराज'** पदवी विशेषतया उल्लिखित है। इससे भी महान् पदवी उत्तर गुप्त कालीन नरेशों के लिए 'परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर' (जीवित गुप्त के लिए) प्रयुक्त है। परन्तु, ऐसे उल्लेख का कोई महत्त्व नहीं दिया जा सकता। मगध की छोटी सीमा में शासन करते हुए, ऐसे महान् पदवी धारण करना संदेह पूर्ण है।

शासन पद्धत्ति

भारतीय लेखों के अनुशीलन से प्राचीन भारत के शासन पद्धत्ति का परिज्ञान हो जाता है। प्रशस्ति के खोदते समय अथवा दान पत्र लिखते समय कर्मचारियों से संबंधित राजाज्ञा का प्रसारण आवश्यक हो जाता है। प्रजाहित के लिए जिन आज्ञाओं की घोषणा की जाती है, उसे भी पदेन अधिकारियों को संबोधित कर प्रसारित किया जाता था। मौर्य सम्राट् अशोक के धर्म लेखों में राजुक तथा प्रादेशिक पदाधिकारियों के नाम मिलते हैं। साम्राज्य के विभिन्न प्रांतों का उल्लेख भी किया गया है (प्रा० भा० अ० पृ० ६२)। कुषाण युग में शक महाक्षत्रप राज्यपाल के रूप में शासन करता रहा। उनके नाम मथुरा तथा सारनाथ लेखों में उल्लिखित हैं। गुप्त अभिलेखों में भी शासन पद्धत्ति का विशद् वर्णन पाया जाता है।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

गुप्त युग में राजा की उत्पत्ति का दैवी-सिद्धांत विचार ही लोकप्रिय था। यही कारण है कि प्रयाग स्तंभ लेख में समुद्रगुप्त को पृथिवी पर देवता (लोकधाम्नोदेवस्य) कहा गया है। लेखों में तथा स्मृतियों में वर्णन आता है कि राजा आदर्श स्थापना की कामना करता था। सम्राट् का ज्येष्ठ पुत्र युवराज घोषित किया जाता तथा विशेष अवस्था में राजा के अन्य पुत्र प्रांत के राज्यपाल नियुक्त किए जाते थे। प्रयाग स्तंभ लेख के चौथे श्लोक के अध्ययन से यह प्रकट होता है कि समुद्रगुप्त योग्य होने के कारण अन्य राजकुमारों के समक्ष (तुल्य कुल म्लानाननो द्वीक्षितः) युवराज चुना गया। युवराज को प्रबंध संबंधी अनेक अधिकार दिये जाते थे। प्रथम कुमारगुप्त के पश्चात् भी राज्य के उत्तराधिकार का झगड़ा उपस्थित हुआ था। स्कंदगुप्त, शक्तिशाली, योग्य तथा कुशल राजकुमार होने के कारण पुरुगुप्त के बदले शासक नियुक्त किया गया। युवराज शासन में सम्राट् की सहायता करता रहा। प्रथम कुमारगुप्त का भ्राता गोविंद गुप्त मालवा का राज्यपाल था। लेखों के वर्णन चीनी यात्री फाहियान के कथन से पुष्ट होते हैं। सभी प्रकार के साक्ष्य के विश्लेषण से गुप्त कालीन शासन पद्धत्ति का परिज्ञान हो जाता है।

गुप्तकालीन शासन व्यवस्था उच्च कोटि की थी। सुशासन के निमित्त उसके चार विभाग निश्चित किये गये थे।

(१) केंद्रीय शासन।

(२) प्रांतीय शासन।

(३) विषय (जिला) का प्रबंध।

(४) ग्राम-शासन।

केंद्रीय शासन राजसत्ता से संबंध रखता था। सेना, राजनैतिक शासन तथा न्याय की व्यवस्था केंद्रीभूत थी। प्रत्येक उपविभाग के आमात्य थे। तौभी राज्य का संपूर्ण भार मंत्रियों पर स्थिर नहीं किया जाता था। स्वयं सम्राट् समुद्रगुप्त तथा चंद्रगुप्त ने विजय के नामित्त युद्ध में भाग लिया था। प्रयाग स्तंभ लेख में समुद्रगुप्त के शरीर में आयुध से छिद्र का वर्णन है। ऐसा कहा गया है कि समुद्रगुप्त युद्ध में दक्ष था, अपने भुजबल से विजय किया तथा शरीर में अनेक चोट के चिह्न बने थे—

विविध समर शतावतरण दक्षस्य स्वभुजबल पराक्रमैकबंधो व्रण शतांक शोभा समुदयो कान्ततर वर्ष्मणः।

द्वितीय चंद्रगुप्त स्वयं ही मालवा, गुजरात तथा काठियावाड़ विजय हेतु सेनापति वीरसेन के साथ यात्रा की—कृत्स्न पृथिवी जयार्थेन राज्ञैवेह सहागतः।

(उदयगिरि गुहालेख)

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

गुप्त नरेश चक्रवर्ती राजा थे। अतः उनकी प्रभुता सर्वत्र व्याप्त थी। लेखों में चारों समुद्र पर्यंत कीर्ति-विस्तार का वर्णन मिलता है (**चतुरुदधि सलिलस्वादित यशसः**)। गुप्त नरेशों के अधीन अनेक सामंत थे जिन्हें लेखों में 'महाराजा' कहा गया है। दक्षिणापथ के पराजित शासक सभी समुद्रगुप्त के सामंत बनकर शासन करते रहे और 'कर' देना स्वीकार कर लिया था (करदान आज्ञाकरण प्रणाम)। गुप्त सम्राटों के अधीनस्थ बुंदेलखंड के परिव्राजक तथा उच्चकल्प के सामंतों के लेख उपलब्ध हुए हैं। उनके लेखों में '**गुप्तनृप राज्यभुक्तौ**' के वाक्य उल्लिखित हैं।

दुर्भाग्य की बात है कि गुप्तों के केंद्रीय सरकार के विषय में हमें विस्तृत ज्ञान नहीं है। गुप्त सम्राट् की सहायता के लिए विद्वान् एवं कुशल आमात्यगण नियुक्त किए गए थे। उस मंत्री-परिषद् का प्रधान राजा होता था। उन मंत्रियों की विभिन्न पदवियों से कार्य के विभाजन का अनुमान हो जाता है। विभिन्न मंत्रियों तथा विभागाध्यक्षों के कार्यालय होते थे। प्रयाग स्तंभलेख के प्रशस्तिकार हरिषेण स्वयं समुद्रगुप्त के शासन काल में तीन पदों पर कार्य कर चुका था—

(अ) अन्तर्राष्ट्रीय मंत्री (सांधिविग्रहिक)।

(ब) कुमारामात्य।

(स) न्यायकर्त्ता (महादंड नायक)।

वह बहुत बड़ा संस्कृत का विद्वान् था। इसी कारण चम्पू काव्य शैली में प्रयाग-प्रशस्ति लिखने में समर्थ हुआ। द्वितीय चंद्रगुप्त का मंत्री वीरसेन व्याकरण, साहित्य, न्याय तथा लोकरीति का ज्ञाता था—

कौत्सशाब इतिख्यातो वीरसेन कुलाख्यया, शब्दार्थ न्याय लोकज्ञ कवि पाटलिपुत्रकः।
(उदयगिरि लेख—प्राचीन भारतीय अभिलेख, पृ० ३१५)

उसी वीरसेन के लिए 'अन्वय प्राप्त सचिवो' (क्रमागत मंत्री का पद प्राप्त किया) वाक्य अभिलेख में उल्लिखित है। कर्मदंडा शिवलिंग लेख में वर्णन आता है कि प्रथम कुमारगुप्त का मंत्री पृथ्वीषेण उसके पिता चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के मंत्री शिखरस्वामी का पुत्र था (प्राचीन भारतीय अभिलेख, पृ० ३१९)। इससे मंत्रियों के वंशानुगत पद का आभास मिलता है। गुप्त सम्राटों ने अन्तर्राष्ट्रीय नीति के विचार से राजपूतों की नियुक्ति कार्य संपन्न हेतु किया था। महाकवि कालिदास स्वयं कुंतलेश्वर के दरबार में चंद्रगुप्त विक्रमादित्य का राजदूत बनकर गया था। उस विभाग के मंत्री को 'सांधिविग्रहिक' कहा गया है जिसको (उस पद को) हरिषेण सुशोभित कर चुका था।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

न्यायालयों का भी शासन पद्धति में उच्च स्थान था। गुप्तकाल में न्याय की सीमा अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गई थी। गुप्त लेखों तथा वैशाली के मुहरों में दंडनायक, महादंडनायक या सर्वदंडनामक पदवियों सहित कर्मचारियों के उल्लेख मिलते हैं (आ० स० रि०, १९१३-१४)। गुप्त लेखों के विश्लेषण से उस समय के न्यायालय का परिज्ञान हो जाता है। तत्कालीन न्यायालयों में शारीरिक दंड देनेवाला व्यक्ति 'दांडिक' कहा जाता था। फाहियन ने गुप्त कालीन न्याय को सरल बताया है। केंद्रीय पुलिस विभाग के कई कर्मचारी होते थे। वैशाली मुहरों में पुलिस (आरक्षी) विभाग के प्रमुख अधिकारी को 'दंडपाशिक' कहा गया है।

अभिलेखों में केंद्रीय मंत्रिमंडल के अन्य पदाधिकारियों के निम्नलिखित नाम उल्लिखित हैं। इस मंत्रिमंडल को राज्यपाल या विशिष्ट कर्मचारियों की नियुक्ति करने का अधिकार था।

(१) महादंड नायक (न्यायाधीश)।

(२) सांधिविग्रहिक (राजदूत या वैदेशिक मंत्री)।

(३) सेनापति।

(४) भांडागाराधिकृत (कोषाध्यक्ष)।

(५) शाल्किक (कर लेने वाला)।

(६) गौल्मिक (जंगल का अध्यक्ष)।

(७) महाक्षपटलिक (अभिलेख विभाग का अधिकारी)।

(८) पुस्तपाल (महाक्षपटलिक का सहायक)।

(९) अग्रहारिक (दानाध्यक्ष)।

(१०) धर्माधिकरण (न्यायालय) की मुहरे नालंदा तथा वैशाली में मिली हैं।

(११) करणिक (आधुनिक रजिस्ट्रार)।

(१२) लेखक या लिपिक।

'कर' की व्यवस्था

प्राचीन साहित्य के अध्ययन से कुछ पदाधिकारियों का ज्ञान हो जाता है। भागधुक (राजकीय कर संग्रह करने वाला) तथा समाहर्ता (उपहार ग्रहण करने वाला) के नाम वैदिक रत्निन की सूची में मिलते है। शासन में अर्थ की आवश्यकता को द्वितीय स्थान नहीं दिया जा सकता। अतः 'कर' ग्रहण करने का विधान सर्वत्र पाया जाता है। भारत में कृषकों तथा पशुपालकों से 'कर' ग्रहण किया जाता था क्योंकि शासक को अर्थ की नितांत आवश्यकता होती थी। शासन के सप्तांग सिद्धांत में राजकोष को महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। अतएव अर्थशास्त्र या

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

स्मृति ग्रंथों में 'कर' वसूल करने का विचार व्यक्त किया गया है। यूनानी लेखकों ने पचीस फी सदी 'कर' का वर्णन किया है। संभव है कि इस ऊँचे 'कर' को घटाने के लिए मौर्य सम्राट् अशोक के रुम्मनदेई लेख में' 'अठभागिए च' (आठवां भाग) का उल्लेख किया है। यानी आठवां भाग उपज का 'कर' के रूप में देना होगा। संभवतः भूमि के उर्बरा होने के अनुसार 'कर' में असमानता थी।

धान्यानामष्टमो भागः षष्ठोद्वादश एव वा।

(मनुस्मृति ७/१३०)

प्राचीन समय में ब्राह्मण या मंदिर को दान देते समय भूमि का स्वामित्व राजा से संबंधित न होकर दानग्राही को चला जाता जो भूमिकर ग्रहण करने का अधिकारी हो जाता था। अभिलेखों में 'कर' के नाम यथास्थान मिलते हैं। अर्थशास्त्रियों ने पैदावार का छठा भाग ग्रहण करने का आदेश दिया है। राजा को 'कर' मुक्त करने का भी अवसर था। सार्वजनिक कार्य के निमित्त सदा राजा 'कर' आरोपित नहीं करता था। ऐसे उदाहरण अभिलेखों में मिलते हैं। ईसवी सन् दूसरी सदी में रुद्रदामन ने सुदर्शन झील के संस्कारार्थ नए 'कर' लगाना आवश्यक नहीं समझा। सातवाहन नरेश ने भी नासिक लेख में क्षेत्र को 'करमुक्त' करने की चर्चा की है—

एतस खेत सपरिहार वितराम।

गुप्त युगीन लेखों में भी उद्रंग तथा उपरि नामक शब्दों का उल्लेख मिलता है जो 'कर' के पर्यायवाची थे। स्मृति ग्रंथों में उल्लिखित भाग भोग (कर) से इनकी समता की जाती है। उद्रंग स्थायी 'कर' था। उपरि कर ('कर' के ऊपर या 'अस्थायी कर') के संबंध में फ्लीट का मत है कि यह कर अस्थायी कृषक पर लगाया जाता था। गुप्तयुग में भी उपज का छठा भाग 'कर' के रूप में लिया जाता था। फाहियान ने वर्णन किया है कि कृषक उपज का कुछ भाग शासक को दिया करते थे। फरीदपुर ताम्रपत्र लेख में छठे भाग का विवरण मिलता है (ए० इ०, १९१०)। यह कहना कठिन है कि छठे भाग में सभी 'कर' सम्मिलित थे या इससे केवल' भूमिकर' का बोध होता है।

गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में वर्णन आता है कि शासक ने उत्तरी भारत के राजाओं को पराजित किया और दक्षिणापथ के विजित नरेशों को 'कर' (शुल्क) देने के पश्चात् मुक्त कर दिया—

सर्वकर आज्ञाकरण प्रणाम आगमन परितोषित प्रचंड शासनस्य।

(प्राचीन भारतीय अभिलेख, पृ० ३१२)

गुप्त कालीन अभिलेखों में **'चाटभट प्रवेश'** नामक अन्य 'कर' का उल्लेख मिलता है। चाटभट शब्द पुलिस (आरक्षी) तथा सेनानी के लिए प्रयुक्त हैं। यानी गुप्त नरेश राज्य में यात्रा

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

करते समय पुलिस तथा सेना के पदाधिकारी को साथ ले जाते और शासक के साथ कर्मचारीगण उसी स्थान पर निवास करते थे। उनका समस्त व्यय स्थानीय लोगों को देना पड़ता था। इसी कारण—'चाटभट प्रवेश दंड' नाम से अस्थायी द्रव्य (कर) की वसूली होती थी। स्मृति ग्रंथों में वर्णन आता है कि आपत्ति के समय प्रजा पर 'विशेष कर' लगाया जाता था किंतु गुप्त लेखों में इस प्रकार के 'कर' का उल्लेख नहीं मिलता। स्कंदगुप्त द्वारा प्रचलित मिश्रित सोने के सिक्कों के परीक्षण से अनुमान लगाया जाता है कि हूण आक्रमण के समय राजकोश में पर्याप्त धन न था, इस कारण मिश्रित सोने का प्रयोग सिक्कों के लिए किया गया। मिश्रित सोना तथा भारी तौल (सुवर्ण माप) के सिक्के प्रचलित कर स्कंदगुप्त ने आपत्ति का सामना किया किंतु कोई विशेष कर उस शासक ने आरोपित नहीं किया। इनके अतिरिक्त अर्थदंड भी शासक के लिए आय का साधन था। गुप्त काल में अपराध की संख्या नहीं के बराबर थी। अतएव अर्थदंड (जुर्माना) की मात्रा नगण्य थी।

प्रांत

शासन की सुव्यवस्था के लिए गुप्त साम्राज्य प्रांतों में विभक्त किया गया था जिसके प्रमुख पदाधिकारी को राज्यपाल (प्रांतपति) कहते थे। प्रांत के लिए लेखों में देश या भुक्ति शब्दों का प्रयोग मिलता है। गप्तकाल में निम्न शासन विभाग (भुक्ति) थे—

(१) पुण्ड्रवर्धन भुक्ति (उत्तरी बंगाल)
(२) तीरभुक्ति (=तिरहुत) उत्तरी बिहार
(३) मालवा—मंदसोर
(४) कौशाम्बी (प्रयाग समीप)
(५) सौराष्ट्र (काठियावाड़)
(६) पाटलिपुत्र (श्रीनगर भुक्ति)

गुप्त अभिलेखों में प्रांतपति को 'उपरिक महाराज' की पदवी दी गई है। उसे आधुनिक काल में राज्यपाल कह सकते हैं। अन्य लेखों में राष्ट्रीय, भोगपति, गोप्ता आदि पदवियाँ उल्लिखित हैं (आ० स० रि० १९०३-४ पृ० ८८; १९११-१२; १९२८-२९)। लेखों से कुछ उदाहरण उल्लिखित किए जाते हैं—

(अ) पुण्ड्रवर्धन भुक्ति का उपरिक चिरातदत्त (दामोदरपुर ताम्रपत्र)
(ब) सर्वेषुदेशेषु विधाय गोप्तृन् (जूनागढ़ लेख)
(स) उपरिक कुमारामात्य (वैशाली की मुहर)
(द) पुंड्रवर्धन भुक्तावुपरिक महाराजा (दामोदरपुर ताम्रपत्र—प्राचीन भारतीय अभिलेख, पृ० ३२०, ३२६, ३३५, ३४१)

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

वैशाली की मुहरों से भी पता चलता है कि तीरभुक्ति का शासक द्वितीय चंद्रगुप्त का पुत्र गोविंदगुप्त था। ये सभी केंद्रीय शासक के प्रतिनिधि थे। इनकी सहायता के लिए भी क्षेत्रीय मंत्रिमंडल था। वैशाली से जो मुहरें प्राप्त हुई हैं वह किसी-न-किसी पदाधिकारी की हैं। महादंड नायक महाप्रतिहार, रणभांडागारिक आदि कर्मचारी भुक्ति शासन में सहायता करते रहे। दामोदरपुर ताम्रपत्र पर अंकित लेखों का अनुशीलन यह बतलाता है कि प्रांत (भुक्ति) शासक (राज्यपाल) की कार्य अवधि पांच वर्षों की होती थी।

विषय

भुक्ति के अंतर्गत कई विषय (जिला) होते थे जिसके शासक को विषय पति कहा गया है। प्रांत का राज्यपाल उसकी नियुक्ति करता था। केंद्रीय शासक से इसका कोई संबंध न था। विषय पति प्रमुख नगर में रहता था जो अधिष्ठान कहलाता तथा उसके कार्यालय को 'अधिकरण' कहते थे। वैशाली की मुहरें इस पर अधिक प्रकाश डालती हैं। लेखों में विषयपति के लिए 'कुमारामात्य' की पदवी उल्लिखित है।

(१) **कुमारामात्य अधिकरण**

(२) **युवराज प्रदीयकुमारामात्य**

(३) **युवराज भट्टारक प्रदीय कुमारामात्य**

इनमें कुमारामात्य शब्द विवादास्पद है। इससे कुछ विद्वान राजकुमार के सभासद संबंधी अर्थ निकालते हैं। राजकुमार के मंत्री का भी तात्पर्य मानते हैं। प्रयाग प्रशस्ति में लेखक हरिषेण की भी उपाधि कुमारामात्य उल्लिखित है। संभवतः यह आमात्य राजकुमार के सदृश सम्मान पाता था। 'युवराज पदीय' शब्दों का अर्थ भी स्पष्ट नहीं है। इसका तात्पर्य यह हो सकता है कि यह कर्मचारी राजा या राजकुमार के कार्यालय से संबंधित था। शिखरस्वामी तथा पृथ्वीषेण द्वितीय चंद्रगुप्त तथा प्रथम कुमारगुप्त के मंत्री थे। इन सबको कुमारामात्य कहा गया है (करमदंडा लेख)। संभव है पदाधिकारी की योग्यता या वरीयता के कारण अधिक सम्मान दिया जाता होगा। विषय की क्षेत्रीय कार्यकारिणी का उल्लेख दामोदरपुर ताम्रपत्र में मिलता है जिसमें चार सदस्य होते थे।

(१) नगर श्रेष्ठी,

(२) सार्थवाह

(३) प्रथम कुलिक

(४) प्रथम कायस्थ

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

इनके अतिरिक्त युक्त या आयुक्त छोटे राजस्व अधिकारी थे जो जिला तथा गाँव प्रशासन के मध्य कड़ियों का काम करते थे। ये चारों विषयपति के सभासद थे। विषयपति के कार्यकारिणी की अवधि का परिज्ञान दामोदरपुर लेख से हो जाता है। विषय के कर्मचारीगण पांच वर्षों के लिए नियुक्त होते थे। उस ताम्रपत्र में अंकित तिथियों तथा पदाधिकारी के उल्लेख से यह बात स्पष्ट हो जाती है। दामोदरपुर ताम्रपत्र की तिथि गु० स० १२४ तथा गु० स० १२९ में एक समान पदाधिकारियों का नामोल्लेख है जिस आधार पर पाँच वर्ष की अवधि मानी गई है।

गु० स० १२४ के लेख में उल्लिखित पदाधिकारीगण—

पद	नाम
विषय पति	कुमारामात्य वेत्रवर्म्मन
नगर श्रेष्ठी	धृतिपाल
सार्थवाह	बंधुमित्र
प्रथम कुलिक	धृतिमित्र
प्रथम कायस्थ	शांबपाल
पुस्तपाल	(अ) रिसिदत्त
	(ब) जयनंदि
	(स) विभुदत्त

दामोदरपुर का दूसरा ताम्रपत्र (गु० स० १२९) में इन्हीं पदाधिकारियों के नाम मिलते हैं।
(गुप्त साम्राज्क का इतिहास, भा० २, पृ० ३१)

ग्राम

गुप्त अभिलेखों के आधार पर नगर तथा ग्राम सभाओं का भी परिज्ञान हो जाता है। विषयपति नगर के पदाधिकारी की (द्रांगिक शब्द का प्रयोग किया गया है) नियुक्ति करता था। स्कंदगुप्त के ससय में सौराष्ट्र के राज्यपाल पर्णदत्त का पुत्र चक्रपालित सौराष्ट्र-नगरपति के पद को सुशोभित करता रहा—

यः सन्नियुक्तो नगरस्यरक्षां (जूनागढ़ लेख)

वैशाली नगर के शासक की भी मुद्रा उपलब्ध हुई है। गुप्तकालीन ताम्रपत्रों के अध्ययन से ग्राम शासन की भी बातें विस्तृत रूप में ज्ञात हो जाती हैं। विषय के अंतर्गत कई ग्राम होते थे। ग्रामपति 'महत्तर' कहलाता था। ग्रामाध्यक्ष की भी संज्ञा मिलती है जो ग्राम प्रशासन का अध्यक्ष होता था। उसकी सहायता के लिए पंचायत होती थी जिसके चार सदस्यों के पद दामोदरपुर ताम्रपत्र में उल्खित हैं—

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

(१) **महत्तर,**

(२) **अष्ट कुलाधिकारी** (आठ कुलों के प्रमुख)

(३) **ग्रामिक**—ग्राम का प्रधान व्यक्ति

(४) **कुटुम्बिन्**—परिवार के मुख्य

इनके द्वारा ग्राम का प्रबंध होता था। इन्हें चुना जाता या निर्वाचन होता यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। इसमें ग्राम निवासी को सारा अधिकार रहता था। लेखों के वर्णन से ज्ञात होता है कि भूमि संपादन (ग्रामसीमा में भूमि का क्रय-विक्रय) का कार्य पंचायत को सौंपा गया था। सीमा विवाद के झगड़ों का भी यही संस्था निर्णय करती थी। ग्राम-पंचायत एक स्वतंत्र इकाई संस्था थी जिसका ग्राम-सीमा में पर्याप्त अधिकार था।

(विस्तार के लिए देखिए—गुप्त साम्राज्य का इतिहास, भा०, २, पृ० १३४)

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

अध्याय ५

गुप्त कालीन समाज

वर्ण व्यवस्था

भारतीय समाज की सर्व प्रमुख संस्था को **'वर्णाश्रम'** कहते हैं। भारतीय इतिहास के सभी युगों में (वैदिक काल से आधुनिक युग तक) वर्ण-व्यवस्था हिंदू समाज की विशेषता रही है। अतः स्वाभाविक रूप में गुप्तकालीन समाज में जातियों का वही क्रम था। उस समय समाज में इतनी जटिलता न थी जैसा आज हम देखते हैं। भारत के उन्नयन तथा गौरवमय जीवन का बहुत कुछ श्रेय इसी संस्था को है। इतना कहना आवश्यक है कि वैदिककालीन वर्ण कालांतर में जाति का बोधक हो गया। स्मृतियों में चार-वर्णों के नाम आते हैं—

चत्वारो वर्णा ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्राः।

(वशिष्ठ, अ० १।२२)

किंतु प्रथम तीन वर्णों को ही 'द्विज' कहा गया है। हिंदू शास्त्रकारों ने चारों वर्णों के सामाजिक स्थान तथा कार्यों का निर्देशन कर दिया है तोभी आधुनिक काल की तरह उपजातियों में कठोरता न थी। यद्यपि बौद्ध तथा जैनमतों के कारण वर्ण व्यवस्था को गहरा धक्का लगा तथापि उनका अस्तित्व सदा बना रहा। हिंदू धर्म के अभ्युदय के साथ इस संस्था की उन्नति हुई और गुप्तकाल से पूर्व ही वर्ण-व्यवस्था का पूरा विकास हो गया था। कामसूत्र में वात्स्यायन ने इसका विशद विवेचन किया है। ईसवी पूर्व सदियों में अशोक ने अपने धर्मलेखों में ब्राह्मण को श्रेष्ठ मानकर ब्राह्मण दर्शन को श्रेयस्कर कहा है। दक्षिण भारत के शासक सातवाहन नरेश अपने को ब्राह्मण कहकर गर्व का अनुभव करते रहे। इसीलिए सातवाहन नरेश पुलमावि के

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

नासिक लेख में 'एक वम्हरण' (श्रेष्ठ ब्राह्मण) शब्दों का प्रयोग किया गया है। उसी स्थान पर उत्कीर्ण नासिक गुहालेख में दान प्रसंग में ब्राह्मण का नामोल्लेख है (देवताभ्यःब्राह्मणेभ्यः षोडशग्रामदेन)। इनके अतिरिक्त दूसरी सदी के शक राजा रुद्रदामन के जूनागढ़ लेख में यौधेय गण को 'क्षत्रियों में वीर' वाक्य से अभिमत किया गया है। यानी क्षत्रिय जाति युद्ध में भाग लिया करती थी।

गुप्तकालीन अभिलेखों में तीन वर्णों का उल्लेख स्पष्ट रूप से किया गया है। इंदोर (बुलंदशहर, उत्तरप्रदेश) नामक स्थान से एक ताम्रपत्र प्राप्त हुआ है जिसमें ब्राह्मण को दान देने की चर्चा है। उस अग्रहार के दाता क्षत्रिय वंशी अचल वर्म तथा भ्रकुंट सिंह थे तथा उस प्रसंग में यह भी वर्णन है कि दोनों व्यक्ति वैश्य वृत्ति (व्यापार) से अपना जीवन-यापन करते थे। इस प्रकार दान पत्र से ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य वर्णों के नाम उपलब्ध होते हैं।

चतुर्विध सामान्य ब्राह्मण—इन्द्रापुरक वणिग्भ्यां क्षत्रियाचलवर्म भ्रकुंट सिंहाभ्याम्।

(स्कंदगुप्त का इंदोर ताम्रपत्र लेख)

इससे विदित होता है कि ब्राह्मण षटकर्मी थे। अपनी प्रकांड विद्वता, शुचि आचरण, विशाल हृदयता एवं लोकोत्तर व्यवहार कुशलता के कारण ब्राह्मण समाज में श्रेष्ठ समझे जाने लगे। ब्राह्मण शिक्षण कार्य तथा वैदिक यज्ञों का विधान करता था। प्रयाग स्तंभ लेख में वर्णन है कि समुद्रगुप्त ने ब्राह्मणों को दान की दक्षिणा में अश्वमेध प्रकार के स्वर्ण-सिक्के तैयार किया था। हजार गाय दान दिया था। **अनेक गो शत सहस्र प्रदायिनः।** समाज में इसका अपवाद भी था। ऊच्च वर्ण के साथ निम्न वर्ण की बधुओं का परिणय होते थे। वाकाटक नरेश ब्राह्मण थे जिन्होंने गुप्तों के यहाँ अनुलोम विवाह किया था। इस युग की वर्ण व्यवस्था में व्यवसाय जाति से बंधे नहीं थे। स्मृतियों में भी पर्याप्त सामग्री मिलती है कि ब्राह्मण ब्राह्मणेतर वृत्तियों का अनुसरण करता रहा। ब्राह्मण व्यापारी तथा सरकारी पदाधिकारी भी थे [का० इ० इ०, भा० ३, ११९]। वाकाटक वंश का संस्थापक विंध्यशक्ति (ब्राह्मण) यज्ञ के स्थान पर खड्ग धारण किया था। मध्य भारत में गुप्तों के सामंत मातृविष्णु एक महत्वाकांक्षी ब्राह्मण था। उसके लेख में शासक का पितामह इंद्रविष्णु और वरुणविष्णु धर्मनिष्ट ब्राह्मण कहे गए हैं। ये यज्ञों में अपना जीवन व्यतीत करते थे। परंतु उस कुल की ख्याति का कारण यह था कि उसके वंशजों ने पुरोहिती कार्य को परित्याग कर सेना में प्रवेश किया और अंत में राज्य की स्थापना में सफलीभूत हुए। उसी स्थान में वर्णन मिलता है कि उसने रणक्षेत्र में शत्रुओं का पराभव कर चतुर्दिक अपनी कीर्ति फैलाई (का० इ०, इ० भा० ३, पृ० ८९)। इन अलौकि गुणों के कारण मनु ने ब्रह्मविद् ब्राह्मण को सेनापति आदि उच्च पद देने की व्यवस्था बतलाई है—

सेनापत्यं च राज्यं च दंडनेतृत्वमेव च
सर्व लोकाधिपत्यं च वेदशास्त्र विदर्हति।

(मनुस्मृति, १२।१००)

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

असाधारण समाज में घटनाओं के लिए आपद्धर्म का विधान है। फाहियान ने गुप्तकालीन अनेक ब्राह्मण राजाओं का विवरण दिया है। शूद्रक लिखता है कि चारुदत्त ब्राह्मण होते हुए भी वणिक का कार्य करता था (मृच्छकटिक)। इस विवेच्य युग में ब्राह्मणों की उप जातियाँ भी विकसित हो गई। देश, धर्म, निरामिष भोजन तथा वैदिक शाखाएँ उपविभाजन के कारण थे। मथुरा संग्रहालय में स्थित एक नागमूर्त्ति पर उत्कीर्ण लेख से प्रकट होता है कि गुप्तयुग में 'प्रवर' का भी विचार समावेश हो गया था और ब्राह्मणों के तीन प्रवर वाली शाखा भी वर्तमान थी।

श्री अश्वदेवस्य भवन त्रिप्रवरकपुत्रस्य —कै० आ० म्यू० मथुरा, पृ० ९०, संख्या १६)

यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि ब्राह्मण जाति तीन तथा पाँच प्रवरों में विभक्त थी।

क्षत्रिय

समाज में क्षत्रियों को भी ऊँचा स्थान था। विष्णु स्मृति में क्षत्रिय का प्रधान कर्त्तव्य प्रजापालन बतलाया गया है। गुप्त शासक क्षत्रिय थे अतएव शास्त्रानुकूल उनका आचरण था। प्रायः क्षत्रिय ही शासक, सेनापति तथा योद्धा होते थे और शिक्षा भी उसीके अनुकूल होती थी। गुप्तों के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि राजकुमार प्रांतीय राज्यपाल का कार्य करते थे। उनके स्वर्ण सिक्कों पर खुदे लेख से परिज्ञान होता है कि राजा आखेट से प्रेम रखते थे। धनुर्धरांकित सिक्के तो धनुषबाण के प्रयोग में राजा की निपुणता की बात व्यक्त करते हैं। सिंह निहंता, गैंड़ा निहंता, अश्वारोही प्रकार के सिक्के क्षत्रिय राजा के कार्यों के द्योतक हैं। प्रयाग प्रशस्ति में सैंकड़ों आयुध द्वारा युद्ध प्रक्रिया की बातें उल्लिखित हैं। समुद्रगुप्त ने अनेक युद्धों में शत्रुओं को परास्त कर साम्राज्य की स्थापना की थी। **"समरशत वितत विजयी जितरिपु"** का वाक्य उसके स्वर्ण सिक्कों पर खुदा है। मथुरा लेख में अचलवर्म नामक क्षत्रिय का नाम आया है जो वैश्य कर्म करता रहा।

वैश्य

तीसरा वर्ण वैश्यों का था जिनका प्रधान कर्म वाणिज्य ही था। गुप्त लेखों में वैश्य छोटी-छोटी समितियाँ (निगम) बनाकर व्यवसाय करते थे। समितियाँ उन्हीं के नाम से पुकारी जाती थी (दामोदरपुर ताम्रपत्र—प्राचीन भारतीय अभिलेख, पृ० ३१९, ३४२)। उनके लिए कुलिक, श्रेष्ठी तथा सार्थवाह शब्दों का प्रयोग किया गया है। सार्थवाह व्यापारी समूह का अगुआ था। गुप्तकाल में व्यापार उन्नति के शिखर पर पहुँच गया था। भारत में तथा अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में श्रेष्ठी माल लेकर जाया करता था। भारत के पूर्वी भाग (बंगलादेश) में तामलुक (समतट) नामक बंदरगाह से भारतीय जहाज दक्षिण पूर्व एशिया में जाते थे। समुद्रगुप्त ने समतट डवाक को जीतकर भारत से दक्षिण पूर्व एशिया का सांस्कृतिक संबंध आरंभ किया। गुप्तकाल में चाँदी का सदा आयात होता रहा जिसे रजत सिक्कों के निर्माण में प्रयोग किया जाता था। यदि वैश्यगण (निगम) संस्था बनाकर सामुद्रिक व्यापार न करते तो

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

चाँदी के सिक्कों का निर्माण असंभव था। यह धातु भारतीय वस्तुओं के निर्यात के बदले (exchange) आया करती। बर्मा, ईरान कैकेसस के भूभाग से चाँदी का आयात प्रायः निश्चित था। फाहियान ने लिखा है कि जनपद के वैश्यों के मुखिया ने नगर में सदावर्त तथा औषधालय स्थापित किया था। उस यात्री ने सेठ सुदत्त द्वारा निर्मित विहार को देखा था। ह्वेनसांग ने भी लिखा है कि तीसरा वर्ण वैश्यों या व्यापारियों का था जो पदार्थों का विनिमय कर लाभांन्वित होते रहे (वाटर—ह्वेनसांग, भा० १, पृ० ६८)। वैश्य पूर्णरूपेण एक ठोस जाति थी तथापि कृषक, व्यापारी, पशुपालक, लुहार, बढ़ई, तेली, जुलाहे तथा माली आदि नें अपनी पृथक-पृथक उपजातियाँ बना ली थीं। सिद्धांततः सभी वैश्य में नहीं गिने जाते थे। कार्य के कारण अपनी बिरादरी का अंग होने की चेतना उनमें अधिक थी। सभी वैश्य जाति के उपविभाग थे, यह कहना प्रमाण रहित होगा। इस विषय में अधिक साक्ष्य उपस्थित नहीं किया जा सकता।

कायस्थ

इन तीनों जातियों के अतिरिक्त वृत्ति के कारण कायस्थ नामक वर्ग का अभिलेखों में उल्लेख आया है। यह पेशेवर लेखक थे किन्तु यह संशयास्पद है कि उस युग में कायस्थों की एक जाति बन गई थी? गुप्तकालीन ताम्रपत्रों में प्रथम कायस्थ का उल्लेख है जो शासन में भाग लेते थे। संभव है विभिन्न जातियों के लोगों ने पेशे के अनुसार कायस्थ नामक समूह बनाया जो कालान्तर में जाति का रूप धारण कर लिया। अंतिम शूद्र वर्ण का द्विज मात्र की सेवा करना परम कर्त्तव्य बतलाया गया है। समाज में शूद्रों को उचित स्थान दिया गया था। आजकल की तरह अस्पृश्यता की भावना गुप्तकाल में अज्ञात थी। स्मृतिकारों ने शूद्रों को मंत्ररहित यज्ञ करने का विधान बतलाया है। सिद्धान्त रूप में जो भी कहा जाय किंतु शूद्र व्यापारी, शिल्पी तथा कृषक हुआ करते थे। अस्पृश्यता का विचार न्यूनाधिक मात्रा में विद्यमान था। फाहियान ने भी इसका विवरण प्रस्तुत किया है। अंत्यज तो ग्राम बस्तियों से बाहर रहा करते थे। अंत्यज के हीनपेशों के कारण उनके संपर्क से लोग बचते रहे। संक्षेप में कहना उचित होगा कि जातियों के कार्य ही समाज में उनके स्थान के प्रमुख कारण थे। विभिन्न जातियों के सीमित शास्त्र सम्मत कार्य होते हुए भी परिस्थिति तथा आपत्ति के समय वृत्ति का परिवर्त्तन आवश्यक था। समाज में सम्मान भी उसी के अनुरूप था। स्मृतिकार समय को पहचानते थे और हिन्दू समाज को खंडित होने से उन्होंने बचाया। हिन्दू धर्म में आपद्धर्म कहकर संगठन को नष्ट होने से रक्षा की। अत्रि ने कहा था कि अस्पृश्य जातियों का संसर्ग गर्हित नहीं है।

> देवयात्रा विवाहेषु यज्ञ प्रकरणेषु च,
> उत्सवेषु च सर्वेषु स्पृष्टास्पृष्टो न विद्यते।

आश्रम-प्रणाली

गुप्तकालीन अभिलेखों में चारों आश्रमों का नामतः उल्लेख नहीं हैं परन्तु उनके विश्लेषण से प्रकट होता है कि किसी-न-किसी रूप में आश्रम का पालन होता रहा। सामाजिक कार्यों को

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

देखकर प्रारंभिक शिक्षा का अनुमान लगाया जा सकता है। स्मृति ग्रंथों में आचार्य तथा शिष्य की वार्त्ता उल्लिखित है। गुरुकुल में शिक्षा के लिए उपनयन संस्कार संपन्न किया जाता जिसे आगे चलकर विद्यारंभ संस्कार का नाम दिया गया। उपनयन से विद्यारंभ का कोई सीधा संबंध न था। द्विज मात्र के लिए उपनयन का विधान है। अतः शिक्षा के लिए ब्रह्मचर्य आश्रम नितांत आवश्यक था। स्मृति ग्रंथों में गुरु-गृह तथा अंतेवासिन की दिनचर्या का विशद विवरण मिलता है। प्रत्येक वर्ष श्रावण मास से उपाकर्म होता तथा शिक्षा समाप्त करने पर वर्ष के अंत में समावर्तन संस्कार मनाया जाता था।

ब्राह्मणों का वेद वेदांग पठन-पाठन का विषय था किंतु क्षत्रिय राजकुमार के लिए राजनीति के साथ आयुध प्रयोग की शिक्षा दी जाती थी। समुद्रगुप्त नाना प्रकार के आयुध का प्रशिक्षण ले चुका था जिनके नाम प्रयाग प्रशस्ति में मिलते हैं—**परशु शंकु शक्ति प्रसासि तोमर भिन्दियाल नाराच वैतस्तिक अनेक**। इसके अतिरिक्त शास्त्र के अध्ययन के कारण वह 'कविराज' पदवी से विभूषित किया गया था। इसी तरह पाटलिपुत्र का **सेनापति वीरसेन** कई विद्याओं में दक्ष कहा गया है।

शब्दार्थ न्याय लोकज्ञः कवि।

(प्राचीन भारतीय अभिलेख, पृ० ३१५)

गुप्त सम्राटों ने देववाणी संस्कृत को अपनाया और अभिलेखों के अतिरिक्त सिक्कों पर छंदवद्ध लेख उत्कीर्ण कराया। बौद्धशिक्षा प्रणाली के निमित्त मठों का निर्माण हो गया था जहाँ फाहियान ऐसे विदेशी चीनी यात्री ने भी शिक्षा ग्रहण की। ऐसी अवस्था में भी वैदिक प्रणाली समाप्त न हो पाई। यज्ञ तथा वेदों का अध्ययन गुप्तयुग में प्रगति पर था। गुप्त लेखों में वैदिक शाखाओं का वर्णन आया है (का० इ० इ०, भा० ३, सं० ५६, ६०)। परंतु स्मृतिकारों का आदेश था कि अपनी शाखा के अध्ययन बिना दूसरी शाखा का पठन-पाठन न किया जाय। लेखों में वेदाध्ययन के कारण उपाध्याय तथा चतुर्वेदी के नाम आए हैं। गुप्तकालीन साहित्य की प्रगति से शिक्षा क्रम तथा विद्याध्ययन का परिज्ञान हो जाता है। पाँच वर्ष की आयु से विद्यारंभ कर समावर्तन तक शिक्षा की अवधि थी। कालिदास ने भी लिखा है कि रघु को बालकपन में ही लिपिज्ञान कराया गया था—

लिपेर्यथावद् ग्रहणे न बांमयं
नदीमुखेनेव समुद्रमाविशत्

(रघुवंश ३/१८)

गुप्तकाल में स्त्रीशिक्षा पर भी बल दिया गया था। आदर्श पत्नी तथा विदुषी बनने के लिए स्त्री शिक्षा की नितांत आवश्यकता थी। दक्षिण के वाकाटक राजा द्वितीय रुद्रसेन की पत्नी तथा द्वितीय चंद्रगुप्त की पुत्री प्रभावती गुप्ता उच्च श्रेणी की शिक्षिता महिला थी। अपने पुत्रों

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

हो चुकी थी। सुख संपति पराकाष्ठा को पहुँची हुई थी। निवास के लिए अनेक महल बने थे, जिसका विवरण शुद्रक ने दिया है। महलों के वातायन का वर्णन कालिदास ने भी उपस्थित किया है। अभिलेखों द्वारा भी सामाजिक जीवन पर अधिक प्रकाश पड़ता जितना साहित्य तथा कलात्मक नमूनों के अध्ययन से विदित हो जाता है। वस्त्राभूषण के संबंध में साहित्य तथा कला का साक्ष्य लेना पड़ता है। कालिदास ने चीनांशुक (चीनी रेशम) का उल्लेख किया है परंतु फाहियान (रेशमी वस्त्रों के अतिरिक्त) ऊनी वस्त्रों के प्रयोग का वर्णन किया है।

चीनांशुकमेव केतोप्रतिजातं नीयमानस्य—शाकुंतलम्

गुप्त युग में पुरुष तथा स्त्री के लिए भिन्न-भिन्न वस्त्रों का प्रयोग होता था। अधोवस्त्र (धोती) तथा उत्तरीय (चादर) का व्यवहार पुरुष किया करते थे। किंतु गुप्त कालीन स्वर्ण मुद्राओं पर राजा लम्बे कोट पहने दिखलाया गया है (प्राचीन भारतीय मुद्राएँ, फलक ५ सं० ४४-४५)। साधारण अवस्था में सिर पर पगड़ी है किंतु राजमुकुट का अभाव नहीं है (वहीं)। प्रायः विरक्त पुरुषों के लिए विभिन्न वस्त्र थे। बौद्ध, जैन, तथा हिन्दू साधु क्रमशः लाल, सफेद तथा भगवा कपड़े (वस्त्रों) का प्रयोग करते रहे। स्त्रियाँ साड़ी पहनती थी जो गुप्त मुद्राओं से स्पष्ट हो जाता है (वहीं, फलक ५)। गुप्त कालीन चित्रित गुफाओं में स्त्रियों के चित्र अंकित हैं जिनमें वह साड़ी तथा चोली पहने दीख पड़ती हैं। अजंता भित्तिचित्र में छींट की अंगिया भी पहने हैं। शरीर को रमणीय बनाने के लिए आभूषण का प्रचुर प्रयोग गुप्त काल में होता था। स्त्री पुरुष दोनों आभूषणों के प्रेमी थे। तत्कालीन मूर्तियाँ स्त्रियों के विविध आभूषणों की विभिन्नता का परिचय देती हैं। कान की बालियाँ तथा मोतियों के कंठहार आश्चर्यजनक थे। उरोजों तथा जंघों पर एक मोती का पारदर्शक गहना होता था। आभूषणों के अनुराग में पुरुष स्त्रियों से बहुत पीछे नहीं थे। गुप्त कालीन सिक्कों पर राजा कर्णभूषण तथा अंगूठी पहने दिखलाया गया है। गुप्तकालीन ऐतिहासिक स्थानों की खुदाई से जो मूर्तियाँ निकली हैं उनमें पुरुष के शरीर पर यज्ञोपवीत, कटिबंध तथा उदरबंध दीख पड़ते हैं। स्त्रियों के पैर में नूपुर, काड़ा, अंगूठी, हार, रत्नजटित भुजबंध तथा कुंडल आदि गहनों के उपयोग के प्रमाण मिलते हैं। चंद्रगुप्त तथा कुमारदेवी प्रकार की स्वर्ण मुद्रा पर राजा कुमारदेवी को अंगूठी भेंट करते अंकित किया गया है। वात्स्यायन ने भी इस प्रकार के आभूषणों के उपयोग की विशेष चर्चा की है।

सामाजिक जीवन में आनंद लाभ के लिए उत्सव मनाए जाते थे। सामूहिक यात्रा, उद्यान क्रीड़ा तथा गोष्ठियाँ मनोरंजन के साधन थे। फाहियान ने पाटलिपुत्र में प्रतिवर्ष रथयात्रा का विवरण दिया है। राजा का आखेट कम महत्वपूर्ण न था। गुप्त सिक्कों के परीक्षण से प्रकट होता है कि गुप्त नरेश आखेट प्रेमी थे। समुद्रगुप्त बाघ का शिकार करते तथा द्वितीय चंद्रगुप्त सिंह को मारते प्रदर्शित हैं। चंद्रगुप्त ने कृपाण से ही सिंह का विनाश किया था। परंतु वाण एवं धनुष का अंकन गुप्त सिक्कों पर अधिक मिलता है, (प्राचीन भारतीय मुद्राएँ

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

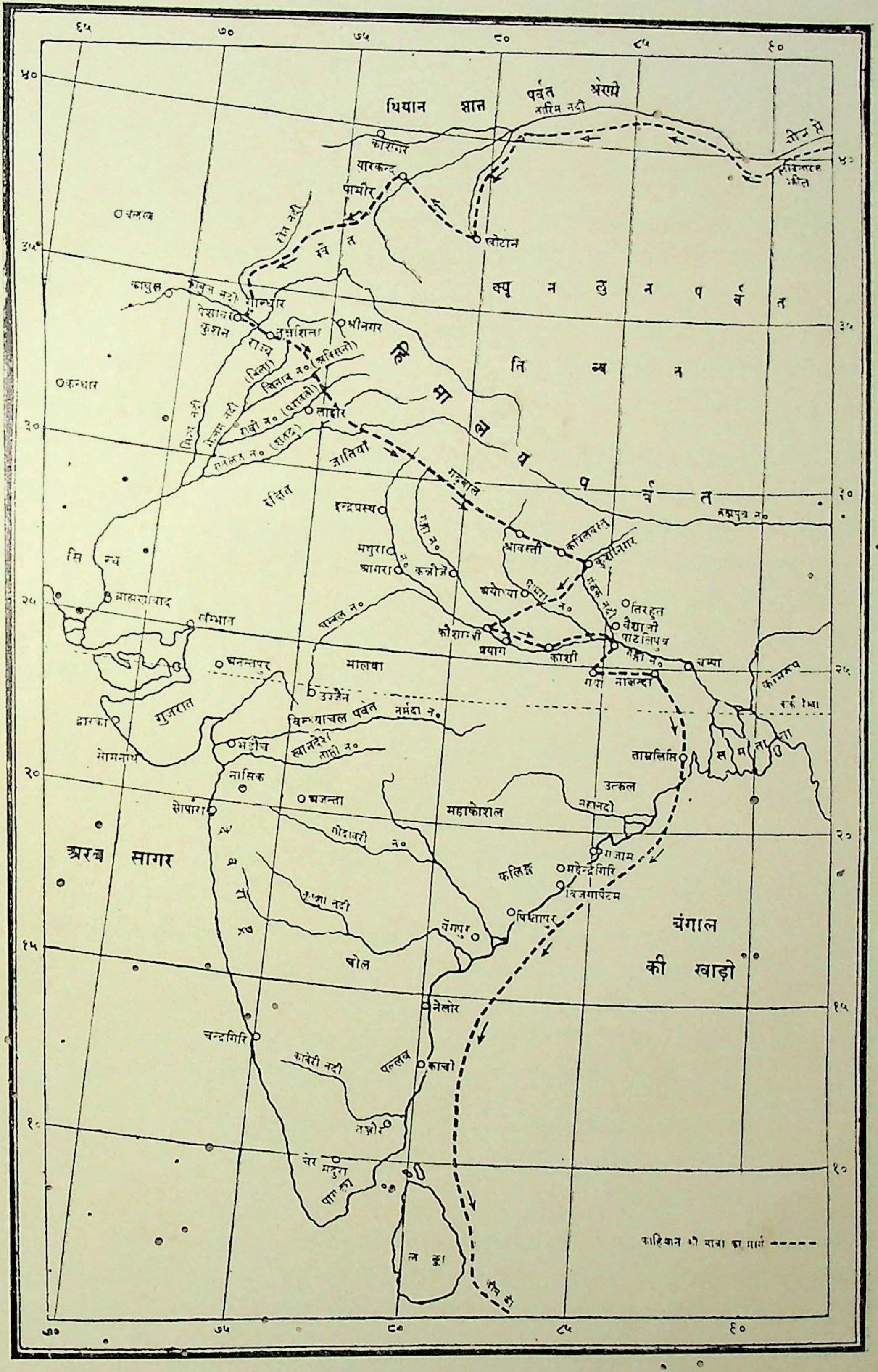

मानचित्र ४ (पृष्ठ ५६)

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

फलक सं० ६)। कुमारगुप्त गैंडा को मारते चित्रित है। तत्कालीन द्यूत-क्रीड़ा का भी साहित्य में वर्णन है। सोने के सिक्के पर राजा समुद्रगुप्त वीणा बजाते हुए प्रदर्शित हैं जिसकी पुष्टि प्रयाग-स्तंभ लेख में उल्लिखित निम्न वाक्य से होती है—

गांधर्व ललितैः व्रीडित त्रिदशपति गुरु तुम्बरू नारदादे

(प्राचीन भारतीय अभिलेख, पृ० ३१२)

भोजन एवं पेय

समाज में तीन वस्तुओं की (भोजन, वस्त्र एवं आवास) ही प्रधान आवश्यकता समझी गई है। गुप्तयुग की प्रशस्तियों में वर्णित वैशाली, उज्जयिनी, दशपुर तथा पाटलिपुत्र नगरों का वर्णन यह प्रमाणित करता है कि आवास की सुविधा सर्वत्र थी। वैशाली की मुहरें उस स्थान की आर्थिक सफलता की बातें व्यक्त करती हैं। उज्जयिनी का वर्णन कालिदास ने 'पुरीं विशालां विशालाम्' आदि वाक्यों से किया है। मालवा का दूसरी नगरी दशपुर का वर्णन भी वत्सभट्टि ने अभिलेख में बड़े ही सुंदर शब्दों में किया है। गगनचुंबी अट्टालिकाओं की रमणीयता, सुंदर वाटिका तथा कासार की छटा हृदय को मोह लेती है। प्रशस्तिकार ने अत्यंत रमणीय तथा मनोरम चित्र प्रस्तुत किया है——

कैलासतुंगशिखर प्रतिमानि च अन्यान्य भांति
दीर्घं बलभीन् सवेदिकानि
प्रासाद मालाभिरलं कृतानि धराविदार्यैव समुत्थितानि
विमानमाला सदृशानि यत्र गृहाणि पूर्णेन्दु करामलानि

(प्राचीन भारतीय अभिलेख, पृ० ३२९)

इस प्रकार गुप्तयुग में आवास का अभाव न था। स्कंदगुप्त के जूनागढ़ प्रशस्ति में वर्णन आता है कि कोइ आर्त या दुखी न था। उस समय भोजन सामग्री का आभाव न था। स्वाद्य पदार्थ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थे। भारतवासी साधारण जीवन में चावल, दाल, रोटी, दूध, घी, शक्कर आदि का प्रयोग करते थे। (सोसल लाइफ इन ऐंसियेंट इंडिया, पृ० १५६), कालिदास के वर्णन से प्रकट होता है कि धान तथा ईख की खेती प्रचुर मात्रा में होती थी—

इक्षुच्छायनिषादिन्यः तस्य गोप्तुर्गुणोदयम्
आकुमार कथोद्घातं शालिगोप्यो जगुर्यशः

(रघुवंश, ४।२०)

फाहियान ने लिखा है कि सारे देश में कोई अधिवासी हिंसा नहीं करता था। मद्य पीना तथा लहसुनप्याजा खाना ऊँच वंश में अज्ञात था। सूनागार और मद्य की दुकाने दीख नहीं पड़ती थी। केवल चांडाल मछली मारते तथा मांस बेचते थे। तात्पर्य यह है कि ऊँचे कुल के लोग मदिरा

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

तथा मांस भक्षण घृणित समझते थे। गुप्त अभिलेखों के अध्ययन से भोजन के मूल्य का अनुमान लगाया जाता है कि भोज्य पदार्थ अत्यंत सस्ते थे। द्वितीय चंद्रगुप्त के गढ़वा लेख में एक ब्राह्मण के लिए वार्षिक भोजन निमित्त दस दीनार (सोने का सिक्का) देने का वर्णन मिलता है। अल्प धन द्वारा गृहस्थ या शासक साधुओं को भोजन प्रदान करते थे। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी उल्लेख किया है कि भोजन के लिए सोने, चाँदी तथा ताम्बे के पात्रों का प्रयोग होता तथा समाज में घी, दूध, गेहूँ, शक्कर का अधिक व्यवहार होता था।

तत्कालीन क्रय-विक्रय के परिमाण का निर्धारण प्रमाणित नहीं हो सकता। द्वितीय चंद्रगुप्त के लेखों में स्थान-स्थान पर भिक्षुओं के भोजन निमित्त दान का उल्लेख है। बारह दीनार के सूद से प्रतिदिन एक भिक्षु के भोजन का प्रबंध होता था। दूसरे लेख में विवरण मिलता है कि आम्रकार्दव नामक व्यक्ति ने पचीस दीनार दस भिक्षुओं के वार्षिक भोजन व्यय निमित्त दान किया था। यह लेख चालीस वर्ष बाद उत्कीर्ण किया गया था परंतु इस अल्पकाल में भोजन सामग्री के भाव वृद्धि का अनुमान नहीं किया जा सकता। अतः वार्षिक भोजन व्यय बारह दीनार प्रति व्यक्ति मानना उचित होगा। गुप्तकालीन दीनार की तौल बारह मासे होती थी जिसका मूल्य बत्तीस रुपये था। इस प्रकार प्रति व्यक्ति का मासिक व्यय ढ़ाई रुपये ज्ञात होता है (देखिए—प्राचीन भारतीय अभिलेख, पृ० ९२)।

समाज की वास्तविक स्थिति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए नागरिकों के चरित्र का मूल्यांकन आवश्यक होता है। भारतवासियों का चरित्र सदा से उज्जल तथा पवित्र रहा है। गुप्त नरेशों ने किसी शत्रु का मानमर्दन नहीं किया और न साम्राज्य की लिप्सा में अत्याचार किया। समुद्रगुप्त ने दक्षिणापथ के पराजित राजाओं को उनका विजित राज्य लौटा दिया तथा नष्ट शासकों को पुनर्जीवित किया।

अनेक भ्रष्ट राज्योत्सन्न राजवंश प्रतिष्ठापनोद्भूत निखिल भुवन विचरण शांत यशसः
(प्रयाग स्तंभ लेख)

इस कार्य से उसका यश सर्वत्र फैल गया। फाहियान ने भी लिखा है कि भारतीय आदर्श नागरिक थे। गुप्तकाल में कोई व्यक्ति अधार्मिक, व्यसनी, दरिद्र, आर्त या पीड़ित न था—.

आर्तो दरिद्रो व्यसनी कदर्यो दंडो न बा यो भृश पीडितः स्यात्
(स्कंदगुप्त का गिरनार लेख—प्रा० भा० अ०, पृ० ३२६)

मृच्छकटिक में आर्य चारुदत्त के आदर्श चरित्र का सुंदर चित्रण मिलता है—

दीनानां कल्पवृक्षः स्वगुण फलनतः सज्जनानां कुटुम्बी
आदर्शः शिक्षितानां सुचरितनिकषः शीलवेला समुद्रः
सत्कर्ता नावमन्ता पुरुष गुण निधिः दक्षिणोदार सत्वो
ह्येकः श्लाध्यः सजीवत्यधिक गुणतया चोच्छ्वसन्तीव चान्य
(मृच्छकटिक, अ० १, श्लोक ४८)

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

गुप्तकाल में स्त्रियों को उच्च श्रेणी का सम्मान तथा समादर प्राप्त था। मनु ने लिखा है कि भारत (प्राचीनकाल) में स्त्रियों का भी यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न किया जाता था (**पुराकल्पे तु नारीणां मौञ्जीवंधनमिष्यते**)। इसका तात्पर्य यह है कि स्त्रियों को समान रूप से शिक्षा दी जाती थी। लौकिक तथा पारलौकिक कार्यों में गृहलक्ष्मी भी पति का साथ दिया करती थी। समुद्रगुप्त के अश्वमेध प्रकार के सिक्कों पर राजमहिषी का चित्र अंकित है जिससे प्रकट होता है कि राजमहिषी यज्ञ में भाग लेती रहीं। प्रभावती गुप्ता का नाम पूना ताम्रपत्र में उल्लिखित है जो राज्यकार्य कुशलता के साथ करती रहीं (प्रा० भा० अ०, पृ० ४१६)। गुप्तकाल में स्त्री शिक्षा का व्यापक प्रसार था। परदे की प्रथा अज्ञात थी। वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर सार्वजनिक कार्य में स्त्रियाँ भाग लेती रही। पुरातत्व-खनन से जो स्त्रियों की मृण्मयी मूर्तियां निकली हैं उनसे प्रसाधन का अनुमान लगाया जा सकता है। स्मृति ग्रंथों में अर्धांगिनी होने के कारण स्त्री को पति के चिता पर जलने का विधान मिलता है। गुप्तकाल में सती प्रथा के प्रमाण उपलब्ध हैं। एरण लेख के वर्णन से प्रमाणित होता है कि भानुगुप्त के सेनापति गोपराज की स्त्री सती हो गई थी। बाण ने भी लिखा है कि राज्यश्री स्वेच्छा से सती होने के लिए उत्सुक थी। स्त्रियों के दायाधिकार के विषय में तत्कालीन प्रशस्तियों में साक्ष्य नहीं मिलते। परंतु साहित्य के आधार पर तथा स्मृतियों के उल्लेख से दायाधिकार के अस्तित्व को भुलाया नहीं जा सकता। इस प्रकार गुप्तकालीन स्त्री-पुरुष के चरित्र का विवरण समाज के उन्नत अवस्था का द्योतक है।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

अध्याय ६

गुप्त लेखों में आर्थिक-विवरण

भारत का जीवन ही पुरुषार्थ पर निर्भर है और समाज में धर्म के पश्चात् अर्थ को स्थान दिया गया है। प्रारंभिक काल से भारत में श्रेणियाँ (व्यापारिक संस्था) आर्थिक संगठन में लगी थी। प्राचीन भारत में व्यापार तथा उद्योग के सुसंगठित कार्य आर्थिक जीवन की विशेषता प्रकट करते हैं। ईसवी पूर्व सदियों में साम्राज्यवादी विचार धारा का उदय हुआ था और उसी काल से अर्थ नीति भी प्रभावित हुई। यह निश्चित रूप से ज्ञात है कि मगध के प्राचीन नंद वंश के शासकों ने देश के मापतौल पर अधिकार कर लिया था। श्रेणियाँ राज्य की अर्थ नीति का निर्देशन करती थी। उस समय धन का समाज में बँटवारा होता रहा। क्रमशः श्रेणियों की प्रभुता को मिटाने के लिए चाणक्य ने अर्थ नीति को केंद्रीभूत किया। मुद्रा नीति को राजकीय विषय घोषित किया तथा दो पदाधिकारियों की नियुक्ति की। कौटिल्य के अर्थ नीति को मौर्य सम्राट् अशोक ने पालन नहीं किया। उसने कोश के महत्व को नगण्य मानकर दान तथा 'कर-व्यवस्था' में छूट देकर राजकीय कोश को खाली कर दिया। कालान्तर में मौर्य राज्य के उत्तराधिकारियों ने कार्य पद्धत्ति में परिवर्त्तन किया तथा दक्षिण के सातवाहन नरेशों ने श्रेणी बैंकों को स्थापित कर धन जमा किया। सूद का भी प्रचलन आरंभ हुआ। नासिक गुहा लेख में इसके स्पष्ट उदाहरण मिलते हैं (देखिए—प्रा० भा० अ०, पृ० १६५) शक एवं कुषाण नरेश अर्थ-नीति के परमविज्ञ थे। कनिष्क ने अंतर्राष्ट्रीय बाजार में जाने के लिए सोने का सिक्का चलाया। उस समय भारतीय व्यापारी रोम तथा मध्य एशिया तक व्यापार निमित्त जाया करते थे। मध्य एशिया में व्यापार के प्रसंग में भारतीय उपनिवेश बन गया और भारतीय संस्कृति का विस्तार

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

हुआ। उस प्रसंग में रोमन सिक्के भारत में अधिक संख्या में आने लगे। यही कारण था कि रोमन नाम (डिनेरियस) तथा तौल (१२१ ग्रेन) को भारत की अर्थ नीति में अपनाया गया।

गुप्त शासकों ने भी उसी अंतर्राष्ट्रीय नीति को अपनाया। उन्होंने सोने के सिक्के तैयार किए तथा व्यापार सुदूर देशों तक विस्तृत किया। व्यापार के लिए ताम्रलिपि (वर्त्तमान ढाका) से जहाज दक्षिण पूर्व एशिया एवं द्वीपसमूह में जाने लगे। पूर्वी भारत के भूभाग को (समतट, डवाक) समुद्रगुप्त ने विजित किया जिसका विवरण प्रयाग प्रशस्ति में मिलता है। गुप्तकालीन जल तथा स्थल मार्गों से व्यापार में वृद्धि हुई। तत्कालीन लेखों के अध्ययन से भी आर्थिक जीवन का परिज्ञान हो जाता है।

भारत का मुख्य व्यवसाय कृषि रहा है तथा गुप्तकाल में जनता के जीविकोपार्जन का प्रधान साधन कृषि ही था। सभी प्रकार के अन्न तथा फल यहाँ पैदा होते थे। राजा समस्त भूमि का माप (Survey) कराकर छोटे-छोटे टुकड़ों में सीमा निर्धारित करता था। सिंचाई का बहुत अच्छा प्रबंध था तथा नहरों एवं तालाब से सिंचाई होती थी।

काठियावाड़ में चंद्रगुप्त मौर्य ने सुदर्शन नामक झील बनवाया था तथा उसके पौत्र अशोक ने उससे एक नहर निकलवायी जिसकी चर्चा गुप्त लेखों में भी मिलती है। गुप्तकाल में उस सुदर्शन झील का जीर्णोद्धार सम्राट् स्कंदगुप्त ने किया।

अपीह लोके सकले सुदर्शनं पुत्रां हि दुर्दर्शनतां गतं क्षणात्

× × ×

धर्म पुरोधाम शुभानुबंधं राज्ञो हितार्थं नगरस्य चैव

(जूनागढ़ का लेख—प्रा० भा० अ०, पृ० ३२९)

उत्तर-गुप्तयुग में इसी विचार से प्रेरित होकर मगध के राजा आदित्य सेन की पत्नी ने भी एक वृहत् जलाशय का निर्माण कराया ताकि सिंचाई से भूमि उर्बरा हो सके—

तस्यैव प्रिय भार्यया नरपतेः श्री कोण देव्या सरः

(अफसद शिलालेख—वही)

आर्थिक अवस्था को सुदृढ़ करने के लिए समाज में कृषि के बाद व्यापार का प्रबंध किया जाता रहा। गुप्तकाल में व्यापार मुख्यतः छोटी-छोटी समितियों (श्रेणियों) के हाथ में था। नालंदा तथा वैशाली से गुप्तकालीन मुहरें प्राप्त हुई हैं जिनके परीक्षण से प्रकट होता है कि व्यापारिक संघ (वर्त्तमान चैम्बर आफ कामर्स) विद्यमान थे। व्यापार का कार्य गण पद्धति पर व्यवस्थित ढंग से चलता था। गुप्तलिपि में खुदी मुहरें इसके ज्वलंत उदाहरण है कि वैशाली एक प्रमुख व्यापारिक केन्द्र था। उनमें व्यापारी, व्यवसायी तथा बैंक के कार्य में रत श्रेणियाँ थीं। वैशाली का गढ़ शब्द विवादास्पद हो गया है। गढ़ दुर्ग के लिए प्रयुक्त है यह कहना कठिन है।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

संभवतः गढ़ हाट या व्यापारिक केंद्र रहा हो। राजा विशाल का गढ़ कहने से किसी शासक के दुर्ग का बोध नहीं माना जा सकता। गुप्तकालीन मुहरें यह प्रमाणित करती है कि चौथी तथा पाँचवी सदी में निश्चित रूप में वैशाली एक प्रमुख व्यापारिक स्थल था। एक मुहर पर गुप्तलिपि में 'कुलिक हरिस्य' खुदा है। इससे उस बैंक समुदाय का पता चलता है जो भ्रमण किया करता था। साहित्य में भी श्रेणियों का विवरण पाया जाता है। व्यापारी, व्यवसायी आदि के संघ थे जिनके हाथ में सारा व्यापार था। आर्थिक नीति को वे प्रभावित करते रहे। श्रेणियाँ व्यापार तथा सिक्कों की शुद्धत्ता पर घ्यान देती रहीं। इनका एक समुदाय था जिसके नियमों को सभी को पालन करना पड़ता था। नियमों का उल्लंघन करनेवाला हानि का उत्तरदायित्व लेता था। राजा भी इन संघों के नियमों का आदर करता था। स्मृति ग्रंथों (याज्ञवल्क्य, वृहस्पति तथा नारद आदि) में भी इनका विस्तृत विवरण पाया जाता है। महाजनों के अतिरिक्त जुलाहों (तंतुवाय) तैलियों, संगतराशों की भी श्रेणियाँ थी। यानी उच्च तथा निम्न सभी प्रकार की श्रेणियाँ संघटित थीं। गुप्त सम्राट् प्रथम कुमार गुप्त के राज्यकाल में पटकार समिति (तंतुवाय श्रेणी) का वर्णन मिलता है जो लाट से आकर दशपुर (मालवा) में निवास करने लगीं—

लाट विषयान्नगावृत शैलाज्जगति प्रथित शिल्पः
जातादरा दशपुरं प्रथमं मनोभिः
अन्वागताः ससुत बन्धु जनाः समत्यः

(मंदसोर प्रशस्ति—प्रा० भा० अ०, पृ० ३२१)

स्कंदगुप्त के लेख में— "इंद्रपुर निवासिन्या तैलिक श्रेण्या" (इंद्रपुर में रहनेवाली तेलियों की समिति) का उल्लेख मिलता है। उस समय शिल्पकार, वणिक आदि की भी श्रेणियाँ वर्त्तमान थीं। भीटा (प्रयाग के समीप) तथा वैशाली (उत्तरी विहार) की मुहरों में 'श्रेष्ठी सार्थवाह कुलिक निगम' का उल्लेख आया है (आ० स० रि०, १९०३-४)। लेखों में श्रेणी शब्द सर्वत्र व्यवहृत है। समिति के व्यापारिक नियम होते थे जिन्हें सभी सभासद को मानना पड़ता था। सदस्य समस्त कार्य संपादन करते थे। मंदसोर की प्रशस्ति में पटकार समिति के अनेक सदस्यों का उल्लेख है जो विभिन्न विधाओं में निपुण थे। कथा, संगीत तथा धर्म की चर्चा करनेवाले व्यक्ति भी सदस्य थे। धर्मशील एवं ज्योतिषी तथा साहित्यिक भी उसमें सम्मिलित थे। वस्त्र बुननेवालों (पटकार = तंतुवाय) की तो प्रधानता थी।

अधिकमविभाति श्रेणि एवं प्रकारैः

(प्रा० भा० अ०, पृ० ३२२)

हमारे युग में जो शक्ति तथा समृद्धि थी उसने अंतःप्रांतीय तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रगति प्रदान किया। श्रेणियों के विकास पर अपना प्रभाव पड़ा। वैशाली से इस प्रकार श्रेणियों की प्रायः तीन सौ मुहरें पायी गयी हैं। चूँकि श्रेणी की अनेक शाखाएँ थीं अतः किसी शाखा के पत्रों को प्रमाणित करने के लिए मुहरें (Seals) बनाई गई। उनमें ईशानदास, मातृदास

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

तथा गोभिस्वामी की अनेक मुहरें हैं। संभवतः ये प्रमुख नगरों में श्रेणियों के अध्यक्ष होंगे। वैशाली से दो व्यापारियों की संयुक्त मुहरें साझीदारी के रूप को प्रमाणित करती हैं।

श्रेणियाँ स्वतत्र संस्था थीं। प्रायः शासक द्वारा ये नियम स्वीकृत तथा प्रतिष्ठित होते थे। याज्ञवल्क्य ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि श्रेणियों का व्यवस्थित समुदाय था, नियमों का पालन करते थे तथा व्यापार में हानि-लाभ के उत्तरदायी थे—

समवायेन वणिजां लाभार्थं कर्म कुर्वताम्
लाभालाभौ यथा द्रव्यं यथा वा संविदा कृतौ

(याज्ञ० स्मृति, २।२५९)

राजा भी इनका समुचित आदर करता था तथा श्रेणियों के नियमों को ध्यान में रखकर अपना संविधान तैयार करता था—

पाषंडि नैगम श्रेणि पूग व्रात गणादिषु
संरक्षेत्समयं राज दुर्गे जनपदे तथा

(नारद, १०।२)

इसका मुख्य कारण यह था कि सभी समितियाँ अपने-अपने नियम में व्यवस्थित थी। इन पर जनता का विश्वास था। अतः बैंक का कार्य भी इन्हीं श्रेणियों पर निर्भर था। वैशाली मुहरों में नैगम के पृथक (Seal) मुहर मिली है। नैगम सिक्के भी प्रकाश में आए हैं (आ० स० रि०, १९०३-४)। गुप्त कालीन अग्रहार दान इन्ही श्रेणियों के अधीन था। श्रेणी सभा उस दानभूमि या द्रव्य को सुरक्षित रखती जिसके सूद से निर्दिष्ट कार्य संपन्न होते थे। इंदौर ताम्रपत्र में दीपक जलाने के निमित्त दान का वर्णन है। किसी उद्देश्य को सामने रखकर कार्य किया जाता था। दशपुर की पटकार समिति पर सूर्य मंदिर के पुनरुद्धार का भार था (मंदसोर प्रशस्ति)। यह समितियाँ जनता को धन पर कितना सूद देती थी यह अज्ञात है। इसके प्रमाण अभिलेखों में नहीं मिलते। परंतु तत्कालीन स्मृति ग्रंथों में पंद्रह प्रतिशत सूद का दर वर्णित है। यदि निगम (बैंक) कारणवश स्थान का परिवर्त्तन करती तो भी जनता का विश्वास खोती नहीं थी। प्रथम कुमारगुप्त के अभिलेखों में लाट (दक्षिण गुजरात) से आकर दशपुर (मालवा) में (बैंक) श्रेणी के स्थानांतरण का उल्लेख है (प्रा० भा० अ०, पृ० ३२१)। इस प्रकार स्थानांतरित होकर स्थान-स्थान पर व्यापार तथा शिल्प कार्य में श्रेणियाँ सहायता करती थी। जनता इनसे (श्रेणियों) द्रव्य उधार भी लेती थी। वर्त्तमान बैंकों के कार्य से प्राचीन श्रेणियों की तुलना की जा सकती है।

हमारे आलोच्य काल में व्यापारिक श्रेणियों द्वारा कार्यों तथा व्यापार की वस्तुओं के संबंध में कोई साक्ष्य नहीं है। संभावना इस बात की है कि आंतरिक व्यापार के मुख्य वस्तुएँ विभिन्न कपड़े, खाद्य पदार्थ, नमक, शक्कर, सोना, चाँदी तथा बहुमूल्य मणियाँ थी। विदेशी निर्यात में भी कपड़े तथा मणियाँ की गणना होती थी। चाँदी सदा आयात से उपलब्ध होता था। भरुकच्छ,

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

उज्जयिनी, विदिशा, प्रयाग, वाराणसी, गया, पाटलिपुत्र तक पश्चिम से पूर्वी भाग में सार्थवाह या श्रेणियों का समूह चला करता था। मथुरा, अहिच्छत्तर, से पूर्व ताम्रलिप्ति तक तथा पश्चिम में पेशावर (पुरुषपुर) तक मार्ग सुरक्षित थे और व्यापार के लिए माल का परिवहन उपरियुक्त स्थानों पर हुआ करता था। घोड़ागाड़ी द्वारा तथा नदियों (गंगा, ब्रह्मपुत्र, नर्वदा, गोदावरी आदि) के मार्ग से व्यापार होता था। नदियों द्वारा व्यापार सुविधाजनक था। पोत के निर्माण की बातें अज्ञान न थीं। सुदूर दक्षिण पूर्व एशिया एवं द्वीप समूह में ताम्रलिप्ति से जहाजें आया जाया करती थीं। यही बंगाल का मुख्य बंदरगाह था। जावा, चीन तथा लंका तक भारतीय व्यापार चलता था। कृष्णा के मुहाने तथा आंध्रप्रदेश के किनारों का संबंध बना था। व्यापार के प्रसंग में भारतीय संस्कृति के फैलाव को अधिक सहायता मिली। पश्चिमी देशों से अच्छे व्यापारिक संबंध थे। व्यापार के सुकर बनाने के लिए राजा आवश्यक स्थानों की सुरक्षा भी करता था। गुप्तकालीन लेखों में उस युग की संपत्ति, देश के पैदावार तथा व्यापार के कम ही संदर्भ मिलते हैं। फिर भी यात्रियों के विवरण तथा स्मृति ग्रंथों के उल्लेख से तत्कालीन आर्थिक दशा का परिज्ञान हो जाता है। वस्त्र निर्माण तो देश का मुख्य उद्योग था। प्रथम कुमारगुप्त के मंदसोर प्रशस्ति में पटकार समिति के कार्यों का वर्णन किया गया है। निगम व्यापार के अतिरिक्त व्यवसाय की शिक्षा (Technical Education) देता था। प्रत्येक सदस्य अपने बालक को श्रेणी के किसी कला में दक्ष बना देता ताकि पैत्रिक व्यवसाय की वृद्धि हो सके। विद्यार्थी संस्था में प्रवेश कर निश्चित समय तक व्यवसाय की शिक्षा ग्रहण करता था।

स्वशिल्पमिच्छन्नाहर्तुं बांधवानामनुज्ञया आचार्यस्य वसेदन्ते कालं कृत्वा सुनिश्चितम्

(नारदा स्मृति, ५/१६)

इन सब बातों से पता चलता है कि शिल्पियों तथा वणिकों के निकाय वैभवपूर्ण तथा शक्ति संपन्न होते थे। वे जनता के विश्वासपात्र थे। स्थायी आर्थिक नीति के कारण ही बैंक का उपयोग समाज में होता रहा। धन-हानि की कभी आशंका न थी। सर्वसाधारण भी व्यवसाय से धन-संग्रह कर सकता था।

विभिन्न प्रशस्तियों में दान के प्रकरण में तीन प्रकार की चुंगी का उल्लेख किया है। सर्वप्रथम वह 'कर' जो बाजार में बिकने वाली वस्तुओं पर लगता था। दूसरे प्रकार का 'कर' व्यवसाय (कारखाने) पर आरोपित किया जाता तथा तीसरे प्रकार का 'कर' मेला में क्रय-विक्रय से संबंधित था। दान देने पर दानग्रहीता सभी 'करों' की वसूली करता था। लेखों में बाजार के लिए 'हाट' तथा चुंगी घर के लिए 'मंडपिका' शब्द प्रयुक्त है। बेचने तथा खरीदने वाले दोनों व्यक्तियों को 'कर' देना पड़ता था। इसी प्रसंग में विभिन्न सिक्कों का उल्लेख किया गया है।

बाजार में माल ढोने के लिए बैल, ऊंट तथा बैलगाड़ी का प्रयोग होता था। पशुओं तथा गाड़ियों पर सामग्री की मात्रा एक सी नहीं रहती। इस कारण 'कर' भी न्यून या अधिक हुआ

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

करता था। गुप्तलेखों में तैलिक तथा पटकार श्रेणियों का वर्णन है। यानी दो प्रकार का व्यवसाय प्रमुख रहा। इसलिए 'कर' की मात्रा एक समान थी। तैलिक श्रेणी दीपार्थ (कर के रूप में) तेल दिया करती तथा तंतुवाय को 'नकद कर' देना पड़ता था।

आर्थिक नीति का निर्धारण करते समय गुप्त शासक मुद्रा (सिक्का) के प्रचलन पर भी ध्यान देते रहे। गुप्तकाल से पूर्व कुषाण वंशी राजाओं ने सोने का सिक्का चलाया था जो अंतर्राष्ट्रीय बाजार में प्रचलित रहे। उनके लेखों में इसका वर्णन नहीं मिलता परंतु गुप्त शासकों ने पिछले कुषाण सिक्कों का अनुकरण किया था। इस युग में भी व्यापार सुदूर पश्चिम तथा दक्षिण पूर्व एसिया तक विस्तृत था। अतएव अंतर्राष्ट्रीय माप के लिए स्वर्ण मुद्रा का प्रचलन ही परमावश्यक था। रोमन सिक्कों की तौल (१२१ ग्रेन) को अपनाया गया तथा उसके सिक्का दिनेरियस (Denarius) का संस्कृत नाम करण-दीनार किया गया। प्रथम चन्द्रगुप्त ने महाराजाधिराज पदवी धारण करने के साथ सिक्कों का निर्माण कराया। उसने कुमार देवी (लिच्छवि राजकुमारी) के साथ स्वर्ण मुद्रा आरंभ की और संपूर्ण राज्य में संयुक्त मुद्राएँ प्रचलित की थी। इसमें लिच्छवि को बहुमूल्य सहायता का संदेह किया जा सकता है। उस सिक्के पर अग्रभाग में राजा रानी खड़े हैं। दोनों के नाम उनके पार्श्व में उत्कीर्ण हैं। पृष्ठभाग पर **'लिच्छवयः'** शब्द लिच्छवियों का आभार प्रकट करता है। गुप्त सिक्कों के अध्ययन से उस युग की आर्थिक स्थिरता का परिज्ञान होता है। स्वर्ण मुद्राओं की वृद्धि आर्थिक स्थिति का द्योतक है। प्रथम चंद्रगुप्त के पश्चात् समुद्रगुप्त ने छः प्रकार के सिक्के प्रचलित किए। दक्षिणा पथ से समुद्रगुप्त को 'कर' के रूप में स्वर्ण अधिक मात्रा में मिली होगी। तभी अश्वमेध के पश्चात् अश्वमेध प्रकार के सोने के सिक्के दक्षिणा देने के लिए शुरू किया। प्रयाग प्रशस्ति में समतट डवाक (तामलुक, बंगला देश) का उल्लेख आया है। ताम्रलिप्ति बंदरगाह से सुवर्ण द्वीप तक व्यापार बढ़ने लगा। बहुत संभव है कि वहाँ से सोने के आयात के कारण द्वितीय चंद्रगुप्त ने सोने के सिक्के का तौल बढ़ा दिया। १२१ ग्रेन से १२४ ग्रेन की वृद्धि हुई तथा अनेक शैलियों के सोने के सिक्के प्रचलित किए गए। पश्चिमी भारत को जीतकर उसने रजत मुद्रा भी आरंभ किया था। गुप्तयुग में आर्थिक समृद्धि उत्तरोत्तर बढ़ती गई। प्रथम कुमार गुप्त के चौदह प्रकार की स्वर्ण मुद्राएँ उस प्रगति का संकेत करती हैं। इस शासक ने पश्चिमी भारत के रजत मुद्रा के सदृश गुप्तराज्य में भी (मध्यदेश) रजत सिक्के चलाया था। किंतु अंतिमकाल में राजनीतिक स्थिति में अस्थिरता एवं हूण आक्रमण के कारण आर्थिक दशा में ह्रास आ गया। प्रथम कुमार गुप्त के रजत मंडित मुद्राएँ आर्थिक मंदी के साक्षी हैं। चांदी का आयात प्रायः बंद हो गया अतः गुप्त सम्राट् ने ताम्र सिक्कों को चांदी का पानी चढ़ाकर रजत मुद्राएँ घोषित की। परिस्थिति के अध्ययन से प्रकट होता है कि अर्थ की तंगी के कारण रजत मंडित मुद्राएँ निकालने के लिए प्रथम कुमारगुप्त को बाध्य होना पड़ा। यह मंदी कालांतर में भी दीख पड़ती है। पिता के शासनकाल की स्थिति में स्कंदगुप्त सुधार न ला सका और दो ही प्रकार के सोने के सिक्के

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

प्रचलित किए। वह भी मिश्रित सोने की मुद्रा थी। रोमन तौल (१२१ ग्रेन) को त्याग कर भारतीय तौल को अपनाया। द्वितीय चंद्रगुप्त ने ही १२४ ग्रेन तौल बढ़ाया था जिसकी प्रथम कुमारगुप्त ने १३२ ग्रेन तक वृद्धि की। स्कंदगुप्त ने भारतीय सुवर्ण तौल माप का अनुसरण कर स्वर्ण मुद्राएँ १४४·६ ग्रेन तौल के बराबर प्रचलित किया। विश्लेषण से पता चलता है कि तौल-माप की वृद्धि होती गई परन्तु धातु की शुद्धता हीन हो गई। यह आर्थिक स्थिति के ह्रास का द्योतक है। पश्चिमी भूभाग के पृथक हो जाने के कारण स्कंदगुप्त के उत्तराधिकारी गरुड़ प्रकार के रजत सिक्के प्रचलित न कर सके जो पश्चिम भारत में सदियों से प्रचलित रहे। चांदी का आयात भी कम होता गया। पश्चिम भारत के पृथक हो जाने पर ईरान तथा पूर्वी अफ़्रीका से व्यापारिक संबंध टूट गया और इसी कारण रजत के आयात में कमी आ गई। उत्तरगुप्त युग में बुधगुप्त ने मध्यदेशीय मयूर प्रकार के रजत सिक्कों को चलाया था परंतु उससे आर्थिक हीनता का ही पता चलता है। धातु सिक्कों के आपेक्षित मूल्य का अध्ययन भी इसी परिणाम पर ले जाता है। यद्यपि इस समस्या का प्रतिपादन कठिन है तथा विषय की सामग्री का अभाव है तथापि लेखों में यत्र तत्र वर्णन से आपेक्षित मूल्य का अनुमान लगाया जा सकता है। गुप्तयुग में स्वर्ण तथा रजत सिक्कों का भार क्रमशः १२० ग्रेन तथा ३० ग्रेन था। पांचवी सदी के मध्य में स्वर्ण मुद्राओं का भार १४८ ग्रेन तक पहुँच गया। स्वर्ण तथा रजत सिक्कों को क्रमश: दीनार तथा द्रम कहते रहे। साहित्य तथा लेख में दीनार शब्द प्रयुक्त है। प्रथम कुमारगुप्त के वैग्राम लेख से तत्कालीन सोने चांदी के सिक्कों के सापेक्षित अनुपात निश्चित किया जा सकता है। उसमें वर्णन आया है कि तीन कुल्यावाप (जमीन का माप) भूमि का मूल्य ६ दीनार (स्वर्ण मुद्रा) था तथा एक चौथाई कुल्यावाप भूमि आठ रूपक (चांदी के सिक्के) में विक्रय होती थी (ए० इ०, भा २१, पृ० २१ **षड् दीनारानष्ट च रूपकाना**)। इसका अर्थ यह था कि १६ चांदी के सिक्के एक सोने के सिक्के के मूल्य के बराबर थे। अतएव सोने चांदी का अनुपात ७:२ होता है। स्कंदगुप्त के शासन में स्वर्ण मुद्राएं पचास प्रति शत मिश्रित सोने की थी। जिससे ७:१ का अनुपात प्रकट होता है। इस युग की स्मृतियों में १४४ ग्रेनवाले सोलह ताम्रपण सोलह चांदी के कार्षापण के तुल्य थे। गुप्तकालीन ताम्र मुद्राएँ ६०,७५,६०,४०,२०,१० ग्रेन भार वाली मिली है। इस प्रकार के परीक्षण से क्रमशः गुप्तकालीन आर्थिक हीनावस्था के प्रमाण मिलते हैं। गुप्त सिक्के व्यापार के साधन थे। अतएव उनके देखने तथा परीक्षण से वास्तविक आर्थिक दशा का संकेत मिलता है। यदि सिक्कों का अध्ययन किया जाय तो इतिहास, समाज तथा धर्म संबंधी बातें भी ज्ञात हो जाती हैं। आर्थिक इतिहास में सिक्कों का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

भूमि का स्वामित्व

कृषि प्रधान होने के कारण भूमि संबंधी समस्याएँ अनेक थीं। जमींदारी नामक कोई संस्था उस युग में वर्त्तमान न थी। भूमि का स्वामित्व कृषकों को था। गुप्त लेखों में जिस

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

रूप में भी अग्रहार का वर्णन है, उस स्थिति में ग्रहीताओं को राजस्व पाने का ही अधिकार था। प्रदत्त गांवों में उन्हें निवास करना पड़ता था। कृषकों को बेदखल नहीं कर सकते थे। स्मृतियों में पट्टेदारी का विवरण मिलता है। कृषक परिश्रम के बदले पैदावार का कुछ भाग लिया करता था। भूमि के स्वरूप अनुकूल उसका मूल्य बदलता रहता था। एक कुल्यावाप (भूमिमाप) भूमि दो या तीन दीनार (सोने की मुद्रा) में बेची जाती थी। भूमि ही संपत्ति का सर्व से मूल्यवान रूप था। इसका स्वामित्व परिवर्त्तन गांव की परिषद् की सहमति से होता था भूमि के स्वामित्व का परिवर्त्तन साधारणतया संभव न था, किंतु ग्रामवृद्धों की उपस्थिति में ही ऐसा होता, जिसकी सीमा निर्धारित की जाती थी। गुप्तकालीन अभिलेख यह प्रकट करते हैं कि परती तथा बंजर जमीन का विक्रय ग्रामपंचायत के अनुमति से ही संभव था। उर्वरा भूमि को कुछ टुकड़े ग्रामों में राज्य की संपत्ति समझे जाते थे। इसका कारण यह था कि 'कर' प्रदान न करने की स्थिति अथवा उत्तराधिकारी के अभाव में राजा उस भूमि पर अधिकार कर लेता था। दान करते समय भी राजकीय 'करो' का ग्रहण करना मात्र ही ग्रहीता को प्राप्त होता अपितु स्वामित्व कृषक के हाथ में ही रहता। दान कर्त्ता ग्रहीता को कर ग्रहण करने का आग्रह करता न कि स्वामित्व का अधिकार देता। राजा के उत्तराधिकारी भी स्वामित्व के प्रश्न पर अधिक विचार नहीं करते अपितु राज देयों के वसूली में संलग्न रहते थे। इस प्रकार गुप्तकाल में कृषक को ही भूमि का स्वामित्व प्राप्त था।

भूमिमाप

गुप्तकालीन अभिलेखों में दान के प्रसंग में क्षेत्र की सीमा निर्धारित करते समय भूमिमाप का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। भूमि का राजस्व या बंधक के प्रसंग में माप करने की आवश्यकता थी अतः दानपत्रों में विभिन्न प्रकार के माप का वर्णन मिलता है। पहली श्रेणी में खेत की लंबाई चौड़ाई मापने के साधन का उल्लेख है। उनके नाम हैं—

(१) हल
(२) पादावर्त
(३) हाथ
(४) निर्वतन
(५) नल या नालक

प्रथम शब्द का भाव यह था कि एक हल से जितनी भूमि जोती जाय। उसका 'हलमाप' से उल्लेख है (हलस्य भूमि :—ए० इ०, भा० १, पृ० १६७) कहीं दान में **'पंच हलानि वहिष्कृत्य शेष भूमि शासनी कृत्य प्रदत्ता'** (ए० इ० भा० २०, पृ० १२९) वाक्य आया है। यानी पांच हल भूमि को छोड़कर शेष दान में दिया गया। दूसरे माप को 'पादावर्त' कहते थे। बारह पादावर्त भूमि एक कुंआ से सीचने के योग्य समझी जाती थी। एक पादावर्त भूमि एक वर्ग पाद (९ इंच)

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

के बराबर मानी गई है। क्षेत्रफल माप से सर्वथा भिन्न खेतों के नापने का वर्णन 'बीजमाप' से दिया गया है। गुप्त प्रशास्तियों में (दामोदरपुर ताम्रपत्र) 'कुल्यवाप' शब्द का अधिक प्रयोग मिलता है। दामोदरपुर, बैग्राम तथा पहाड़पुर के दान पत्रों में (सभी पूर्वी भारत) यह शब्द बार-बार आया है (ए० इ०, भा० १५, भा० २१, भा० २०, पृ० ६१)। निम्नलिखित उद्धरण गुप्त लेखों से प्रस्तुत किये जाते हैं—

(१) क्षेत्रस्य कुल्यवाप मेकस्य।
(२) त्रिदीनारिक्‍ कुल्यवाप विक्रम।
(३) खिल क्षेत्र कुल्यवाप त्रपं।
(४) कुल्यपेन क्षेत्राणि विक्रयमानकानि।

स्पष्ट है कि पांचवी सदी से ही कुल्यवाप क्षेत्रमाप के लिए उत्तरी भारत में प्रयोग होने लगा। इस शब्द के दो खंड हैं—कुल्य + वाप (= टोकरी + बोना) कुल्य की समता एक टोकरी से की जा सकती है। इसका तात्पर्य है कि एक टोकरी भरे बीज से बोने योग्य भूमि। डा० अलतेकर का मत था कि कुल्यवाय एक एकड़ भूमि के लगभग था। निर्वतन ढ़ाई एकड़ के लगभग। लेखों में द्रोण शब्द भी भूमिमाप के लिए प्रयुक्त है जो कुल्यवाप से छोटा था। आठ द्रोण = १ कुल्य। इसलिए द्रोण मात्र बीज बोनेवाली भूमि 'द्रोणवाप' कही गयी। निम्न उल्लेख आते हैं—

धान्य द्रोण द्वयं शिवे।

(ए० इ०, भा० १, पृ० १०६)

यवानां द्रोणं एकादश।

(वही पृ० १५९)

इसी कारण कुल्यवाप से छोटा द्रोणवाप भूमि का माप माना गया (इ० हि० क्वा०, भा० ४, पृ० ५३) अन्य लेखों में पाटक शब्द का भी संबंध कुल्यवाप से जोड़ा गया है।

८ द्रोण = १ कुल्यवाप।

५ कुल्यवाप = १ पाटक (४० द्रोणवाप)

अनुमानतः एक कुल्य को पार्जिटर ने एक एकड़ माना है जिसका साक्षी नहीं है। अतएव द्रोण, कुल्य, पाटक बीज के माप थे जिससे जितनी भूमि बोई जा सके। उसे क्षेत्रमाप के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

अध्याय ७

गुप्त अभिलेखों में धार्मिक चर्चा

भारत का प्राचीनतमधर्म वैदिकधर्म था। इसमें कर्मकांड की प्रधानता थी और यज्ञ-यागादि पर विशेष ध्यान दिया जाता था। दैनिक कार्यों में पंचयज्ञ का विधान था। उपनिषद युग में कर्मकांड के स्थान को ज्ञानकांड ने ले लिया। मानव का ध्यान दार्शनिक गुत्थियों के सुलझाने की ओर आकृष्ट किया गया। दार्शनिक विचारों की सतत भावना में ज्ञान को स्थान दिया गया और ईश्वर जीव का पारस्परिक संबंध तथा जीवन की असारता पर विचार करना ही उनका प्रमुख विषय था। नित्य प्रति अश्वमेध या गोमेध में जनता की रूचि न रही। कालांतर में दार्शनिक समस्याओं को सुलझाना मनुष्यों के लिए रहस्य हो गया। जनता नए विचारों को लेकर चलना चाहती थी जिससे उनके प्रश्नों का समाधान हो सके। इसी कारण नये मत का उदय हुआ जिसे बौद्ध एवं जैनधर्म कहते हैं।

भारतीय धर्म और दर्शन के इतिहास में गुप्तकाल एक महत्वपूर्ण युग था जिस काल में वैदिक धर्म पर आधारित पौराणिक मत का प्रचार हुआ और शासकों में धार्मिक विचार तथा सहिष्णुता की भावना भरी थी। ईसवी पूर्व सदियों में मौर्य युग में बौद्धमत को राजाश्रय मिला अतएव उसका वेग तथा कार्य प्रगति पर रहा। जैनमत भी उससे पीछे न था। इन्हें सुधारवादी आंदोलन कहने में अत्युक्ति न होगी। ईसवी पूर्व सदियों में ब्राह्मण मत में भी नवजागरण के विचार जागृत हुए। पौराणिक साहित्य में उन विचारों का विवरण मिलता है। ईसवी पूर्व शताब्दी में महाभारत एक ऐसा विश्वकोश संकलित हुआ जिसमें हिंदूसमाज के धर्म, दर्शन तथा नीतिशास्त्र के सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया तथा नवहिंदूधर्म के मुख्य सिद्धांतो को लोकप्रिय

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

बनाया गया। जिन सुधारवादी आंदोलनों में वर्ण व्यवस्था के लिए स्थान न था किंतु के प्रतिकूल पौराणिक धर्म में वर्णाश्रम धर्म की प्रमुखता रही। मनु ने समाज का बँटबारा किया तथा वर्ण एवं आश्रम का प्रतिपादन किया। गुप्तयुग में वही प्रणाली काम करती रही। हिंदूधर्म के दार्शनिक पक्ष तथा संप्रदायों—मीमांसा, योग, न्याय आदि की शिक्षाओं को व्यवस्थित रूप से समाज में उपस्थित किया गया। अवैदिक मतों में निर्वाण या कैवल्य पर विशिष्ट बल दिया गय जिसकी प्राप्ति ही भिक्षुओं का लक्ष्य था। हिंदूधर्म में भी मुक्ति की प्राप्ति अंतिम लक्ष्य था। भगवान के विभिन्न स्वरूप के प्रति भक्तों में उद्गार पैदा किया गया एवं भक्ति के सहारे मोक्ष लाभ का मार्ग बतलाया गया। भागवत मत के प्रभाव से हीनयान मत वाले अछूता न रह सके तथा ईसवी सन् में महायान का जन्म हुआ। इस नए संप्रदाय ने दृढ़ता पूर्वक कहना आरंभ किया कि गौतम बुद्ध धर्मकाय के अवतार थे। आवश्यकनुसार बार-बार अवतार ग्रहण करेंगे। बौद्धमत के महायान मत में देववाणी ने प्राकृत का स्थान लिया। संसार का कल्याण उनका लक्ष्य था। इस उच्च विचार का स्वरूप बोधिसत्व में प्रतिध्वनित होता है। इस संसार में बुद्ध का प्रतिनिधि बोधिसत्व हैं जो सदा दुर्बल तत्त्वों की सहायता के लिए उद्यत रहते हैं तथा मानव के निर्वाण के लिए स्वेच्छापूर्वक पुण्य उन्हें दे देते हैं। ईसवी पूर्व दूसरी सती से ईसवी सन् की दो सौ वर्षों तक धर्म तथा दर्शन के क्षेत्र में पर्याप्त विचार प्रस्तुत किए गए। गुप्तयुग में वह विवेचन सदा प्रगति पर था। गुप्त युग में धार्मिक सहिष्णुता की कोई विरोधी बातें दीख नहीं पड़ती परंतु प्रतिद्वंदी आंदोलनों के वाद-विवाद का प्रतिबिंब साहित्य में मिलता है। ईसवी पूर्व साहित्य में पारस्परिक खंडन के विचार दीख नहीं पड़ते। पौराणिक या हीनयान साहित्य में किसी के सिद्धांतों पर आक्रमण नहीं दृष्ठिगत होता। गुप्तकाल में पौराणिक साहित्य की पूर्णता हो चुकी थी एवं दार्शनिक पदत्तियों (स्कूल) का वर्गीकरण हो गया था। क्रमशः उनके विचारों में विभिन्नता प्रकट होने लगी। यही कारण था कि ब्रह्मसूत्र तथा न्यायसूत्रों में अवैदिक मतों (बौद्ध तथा जैन) का खंडन का आरंभ हो गया था तथा तीक्ष्णता आ गई थी। गुप्त युग में पारस्परिक खंडन मंडन का वातावरण स्पष्ट दीख पड़ता है। वात्स्यायन तथा दिङ्नाग के विचार विरोधी तथा अलोचनात्म प्रकट होते हैं। उनमें विश्लेशण तथा खंडन मंडन की प्रमुखता थी।

गुप्तकाल में शासक सहिष्ण थे अतएव हिंदू तथा बौद्ध धर्मों में संतुलन विद्यमान था। दोनों पक्षों के साहित्यिकों में शास्त्रार्थ होने लगे। समुदायों के दार्शनिकों में शास्त्रार्थ के होते हुए भी समाज तथा आधारभूत उनके सिद्धांतों के मूल में एकरूपता थी। कोई भी व्यक्ति अपने अनुकूल विभिन्न सिद्धांतों का समन्वय कर सकता था और किसी भी भेदभाव को राजकीय संरक्षण प्राप्त था।

बौद्धधर्म

भारत की प्रशस्तियाँ इतनी बड़ी निधि है कि सभी प्रकार के ज्ञान प्राप्त किए जाते हैं। अभिलेखों का वर्गीकरण यह प्रकट करता है कि अधिकतर लेख धार्मिक भावना से प्रेरित होकर

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

लिखे गए थे। मौर्य सम्राट् अशोक ने धार्मिक सिद्धांतों के प्रतिपादन हेतु लेख खुदवाया था। डॉ० भंडारकर ने उसके लेखों के आधार पर सिद्ध कर दिया है कि अशोक बौद्ध धर्मानुयायी था। अहिंसा के सिद्धांत पर अटल रह कर उसने बौद्ध मत का प्रचार तथा प्रसार किया था। स्वयं भिक्षु बनकर प्रजा के संमुख आदर्श उपस्थित किया था। उसके लेख व्यक्त करते हैं कि उस समय बौद्ध मत राजधर्म का स्थान प्राप्त कर चुका था। कालांतर में राजाश्रय न मिलने से बौद्ध अनुयायियों तथा उपासकों की संख्या कम होने लगी। समाज में उस मत का घोर विरोध न था। शुंग काल में भी बोधगया, सांची तथा भरहुत में अनेक स्तूप, वेदिका तथा तोरण निर्मित हुए। ईसवी पूर्व उन्हीं सदियों में गीता तथा मनुस्मृति की रचना हो गई थी। ब्राह्मण मत के इन धार्मिक ग्रंथों तथा विचारों का प्रभाव बौद्ध मत हीनयान पर पड़ा और वैष्णव मत के कार 'महायान' मत का उदय हुआ। कनिष्क इस मत का समर्थक शासक था। गान्धार, मथुरा तथा सारनाथ में विशाल बौद्ध प्रतिमाएँ बनी तथा पूजित होने लगी।

गुप्तकाल में बौधमत के प्रसार का आभास सारनाथ की बौद्ध मूर्तियों से मिलता है जो सारनाथ शैली के नाम से संबंधित हैं। कई गुप्तवंशी अभिलेख भी बुद्ध प्रतिमा की चौकी पर खुदे हैं। एक लेख में वर्णन है कि चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के सेनापति आम्रकार्दव ने काकनड महाविहार में एक ग्राम तथा २५ दीनार दान दिया था। प्रथम कुमारगुप्त का एक लेख मनकुवार (इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश) की बुद्ध प्रतिमा के आधार-शिला पर खुदा है। यह लेख 'नमों बुधान' की प्रार्थना से आरंभ है। उस पर 'इमं प्रतिमा प्रतिष्ठापिताभिक्षु बुद्धिमित्रेण' खुदा है। प्रथम कुमारगुप्त के शासन काल ई० स० ४४८ में (गु० स० १२९+३१९) यह प्रतिमा स्थापित की गई थी। इसी के समय (गु० स० १३५) मथुरा में एक बौद्ध लेख प्राप्त हुआ है। गुप्तकालीन बौद्ध प्रतिमाओं पर अंकित लेख में द्वितीय कुमारगुप्त तथा बुधगुप्त के नामोल्लेख तथा गु० स० में तिथियों (क्रमशः १५४ व १५७) मिलती हैं (प्रा० भा० अ०, पृ० ३३६—३३७)। बुद्ध की इन प्रतिमाओं को अभय मित्र ने बनाया था। चीनी यात्री फाहियान के विवरण से भी गुप्त युग के बौद्धमत पर प्रकाश पड़ता है। उसने हिंदू धर्म के साथ बौद्धमत के प्रचार का वर्णन किया है। यात्रामार्ग में फाहियान ने अनेक बौद्ध विहारों को देखा था। उसके कथन की पुष्टि निर्मित बुद्ध प्रतिमाओं से होती है। इतना ही नहीं बौद्धधर्म में मंजुश्री की कल्पना चौथी शताब्दी की है। इस प्रकार अभिलेख में उल्लिखित चर्चा से धार्मिक विचारों की संपुष्टि तथा बौद्धधर्म के प्रचार की बातें ज्ञात हो जाती हैं।

गुप्तयुग में बौद्धधर्म की शाखा—महायान की लोकप्रियता बढ़ती गई और उनके दार्शनिकों की महत्ता भी। बौद्ध पंडितों द्वारा प्रतिपादित दर्शन का समाज में आकर्षण था। आर्यदेव, असंग, वसुबंधु तथा दिङ्नाग ऐसे दार्शनिक कम थे जो जनसाधारण के चित्त को आकर्षित कर सकें। निरीश्वरवाद के विचार का प्रायः अंत हो गया। लोकोपकारी दैवी सहायक बोधिसत्व का सिद्धांतसामने आया। धर्मकाय के गूढ़तम विचार ने अनत्त (आत्मा की असत्ता) की बातों को

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

निसार बना दिया। मानव जीवन की अंतिम अभिलाषा सदा निर्वाण में निहित थी। अपितु बोधिसत्व उच्च विचार द्वारा तथा सुकृतों सहित (बहुजन सुखाय बहुजन हिताय) कल्याण करना चाहता था। वह भी आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति का मार्ग था। बसुबंधु ने अपने तर्कशास्त्र द्वारा हमारे युग में बौद्ध तर्कशास्त्र की नींव डाली। गुप्त शासकों ने बौद्धधर्म के विरोध में कोई कदम नहीं उठाया। किंतु बौद्धकला की उन्नति की। विहारों का निर्माण तथा चित्रित गुफाओं द्वारा बुद्धधर्म का प्रदर्शन यह प्रकट करता है उस युग में बुद्धधर्म का सतत विकास होता रहा।

जैनधर्म

जैनधर्म का प्रचार एवं प्रसार ईसवी पूर्व सदियों से हो रहा था। गुप्तयुग से पूर्व ही इसकी दोनों शाखाओं-दिगंबर तथा श्वेतांबर का विभिन्न भूभाग में कार्य संचालन चल रहा था। उत्तर प्रदेश का मथुरा प्रदेश श्वेतांबरों का प्रधान केंद्र था। परंतु दक्षिण भारत में दिगंबर मत का ही अधिक प्रचार था। यही कारण है कि मथुरा में कुषाण तथा गुप्तयुग में जैनमत के चौबीसवें तीर्थंकर महावीर की प्रतिमाएँ बनाई गई। इस स्थान के अमोहिनी द्वारा प्रदत्त आयागपट्ट पर अभिलेख उत्कीर्ण है। जिसके मध्य महावीर की मूर्त्ति है। लखनऊ संग्रहालय में ऐसी महावीर की मूर्तियाँ सुरक्षित है जिन पर कुषाण लेख खुदे हैं। गुप्तयुग में भी ऐसी प्रतिमाओं का अभाव न था जिनके आधार शिला या चरण चौकी पर लेख उत्कीर्ण न हो। गु० स० ११३ का मथुरा से एक लेख प्राप्त हुआ था जिसमें हरिस्वामिनी द्वारा जैन प्रतिमा के दान का वर्णन है। स्कंदगुप्त के शासनकाल में गु० स० १४१ भद्र नामक व्यक्ति ने आदि कर्तृन प्रतिमा सहित स्तंभ स्थापना की थी। वह लेख कहौम (जिला गोरखपुर, उ० प्र०) से प्राप्त हुआ है। लेख निम्न प्रकार है—

श्रेयोर्त्थं भूतभत्यै पथि नियम वताम् अर्हतां आदिकर्तृन्।

(का० इ० इ० भा० ३, पृ० ६७)

आदिकर्तृन से आदिनाथ, नेमिनाथ, शांतिनाथ, पार्श्वनाथ तथा महावीर इन पांच तीर्थंकरो की मूर्त्तियां समझी गयी हैं। उदयगिरि-गुहा (मध्यप्रदेश) में शंकर द्वारा पार्श्वनाथ की मूर्त्ति की स्थापना का वर्णन मिलता हैं (वहीं संख्या ६१) मथुरा मेंगुप्तकालीन अनेक जैनमूर्तियाँ मिली है जिससे जैनमत के प्रचार की प्रामाणिकता सिद्ध होती है। उत्तरी बंगाल से भी अभिलेख प्राप्त हुआ है। पहाड़पुर (राजशाही, बंगलादेश) के अभिलेख में वर्णन है कि एक ब्राह्मण ने बटगोहली नामक स्थान में स्थित जैन प्रतिमा के पूजा निमित्त अग्रहार दिया था (ए० इ०, भा० २०, सं० ५) फाहियान ने वर्णन किया है कि जिस समय सूर्य पश्चिम में रहता है तो जैनियों के देवालय पर भगवान् के बिहार की छाया पड़ती है। जैनियों में पूजन की परिपाटी थी। महावीर की मूर्ति को सुवासित तैल और जल में स्नान कराया जाता था और उसपर पुष्पमालायें तथा सुगंधित द्रव्य चढ़ाये जाते थे। उसके आगे धूप दीप भीजलाये जाते थे।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

गुप्त युग को जैन विहारों में पर्याप्त दान दिया गया था। उस दान की आधी आय कर्मकांड में व्यय की जाती तथा शेष भिक्षुओं के भरणपोषण में व्यय होता था। इस युग में जैन अनुयायियों की संख्या तथा प्रचार का वास्तविक लेखा-जोखा नहीं दिया जा सकता। गुप्तकाल में जैन पंडितों ने अपने साहित्य का स्वरूप भी निश्चित किया था। बौद्धों तथा हिंदू धर्मों की तरह जैनमत में परिवर्तन या विकास का अभाव देखते हैं। उनका धर्म दर्शन अधिकतर रूढ़िरक्षक था। दार्शनिकों ने अपनी व्याख्याएँ लिखी। सिद्धसेन दिवाकर पांचवी सदी का प्रसिद्ध तर्कवादी था जिसे जैन तर्कशास्त्र का जनक कहते हैं। राजाओं तथा जनता ने जैनमत को आश्रय तथा सम्मान भी प्रदान किया। कालांतर में जैन साधुओं में कुछ बुरी प्रवृत्तियां आ गई जिस कारण भिक्षु रंगीन वस्त्र धारण करने लगे तथा आराम का जीवन व्यतीत करना आरंभ किया। गुप्तकाल के पश्चात् राजपुताना तथा वलभी जैनमत के प्रसिद्ध केंद्र थे। इस प्रकार अभिलेख से अधिक साहित्य से जैनमत संबंधी ज्ञान प्राप्त होता है। गुप्त युग में शासक सहिष्णु थे और जनता जैनमत को दान देकर आदर किया करती थी। ब्राह्मण धर्म से जैनियों ने वादविवाद को प्रोत्साहन नहीं दिया जिस कारण आज भी उनकी स्थिति बनी है।

वैदिक धर्म एवं पौराणिक मत

ईसवी पूर्व शताब्दियों में मौर्य युग के पश्चात् बौद्ध सिद्धांतों का जनता ने स्वागत नहीं किया। उसमें वर्ण तथा आश्रम के लिए कोई स्थान नहीं था। इस कारण विरोध होने लगा। अशोक के मृत्यु बाद ब्राह्मण धर्म का जागरण हो गया। समस्त भारत में वैदिक यज्ञादि होने लगे। दक्षिण भारत के सातवाहन राजा सातकर्णि की पत्नी नायनिका के नानाघाट लेख में पति द्वारा मेधों का वर्णन मिलता है। पुष्यमित्र को दो अश्वमेध का कर्त्ता कहा गया है (**द्वि अश्वमेध याजिन सेनापतेः पुष्यमित्र**—अयोध्या का लेख) गुप्तों से पूर्व भारशिव राजाओं ने वाराणसी में दश अश्वमेध किया था जिस कारण उस स्थान का नाम दशाश्वमेध रखा गया है। ईसवी सन् ४०० तक वैदिक धर्म लोकप्रिय हो गया। राजाओं ने कई यज्ञ किये जिसमें अश्वमेध की प्रामाणिकता सिद्ध होती है। गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त तथा प्रथम कुमारगुप्त ने अश्वमेध किया था जिसके फलस्वरूप 'अश्वमेध प्रकार' की स्वर्णमुद्रा प्रचलित की। उनके समकालीन वाकाटक नरेशों ने भी अश्वमेध (यज्ञों) का अनुष्ठान किया था तथा अग्निष्टोम एवं वाजपेय यज्ञ आदि संपन्न किया। बिहार प्रदेश में स्थित गया के मौखरी नरेश ने चौथी सदी में वैदिक यज्ञ पूर्ण किया जिसके हविष को स्वीकार करने इंद्र को भी नीचे उतरना पड़ा (का० इ० इ०, भा० ३ पृ० २२८)। कोटा (राजस्थान) के मौखरी भी कम उत्साही नहीं थे। कहने का तात्पर्य यह है कि गुप्तों तथा उनके समकालीन शासकों ने वैदिक यज्ञ किए जिनका प्रमाण अभिलेखों में मिलता है। गुप्त राजाओं के अश्वमेध सिक्कों पर निम्न प्रकार का खुदा लेख पढ़ा गया है—

राजाधिराज, पृथिवीमवित्वा दिवं जयत्यप्रतिवार्य वीर्यः

पृष्ठ भाग पर—अश्वमेध पराक्रमः (समुद्रगुप्त का सिक्का)

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

देवो जितः कुमारगुप्तोधिराजा श्री अश्वमेध महेन्द्रः ।

(प्रथम कुमारगुप्त का सिक्का)

मुद्रा लेखों (Coin-legends) से वैदिक यज्ञ-अश्वमेध की प्रामाणिकता सिद्ध होती है। संभवतः यही लोकप्रिय यज्ञ था। अन्य यज्ञों की संपन्नता की चर्चा नहीं के बराबर हैं। पांचवीं सदी से यज्ञ लुप्त हो गए। विद्वानों का मत है कि ईसवी पूर्व सदियों से महाभारत तथा मनुस्मृति का प्रभाव समाज में स्पष्ट रूप से प्रकट होता है। गुप्तकाल तक वैदिक यज्ञों की लोकप्रियता बनी रही। यह भी संभव है कि बौद्धों तथा जैनियों की निंदा के कारण हिंदुओं में प्रतिक्रिया की भावना काम कर रही थी। ब्राह्मण धर्म को सब लोगों ने अपनाया, परंतु वैदिक यज्ञ समृद्ध वर्ग में ही प्रचलित था। याज्ञवल्क्य, (१,१२३-५) ने स्पष्ट रूप से कहा है कि धनीमानी व्यक्तियों को ही यज्ञ करना चाहिए। अनुष्ठान के लिए उनके पास पर्याप्त खाद्यान्न का संग्रह होना चाहिए। साधारण जनता में धन का अभाव था। अतः जनसाधारण में यज्ञ अप्रिय रहे। जनता गीता के प्रवचन पर अधिक विश्वास करने लगी कि यज्ञ आध्यात्मिक उन्नति में सहायक नहीं होते और न ईश्वर की दया प्राप्त करने में सहायक ही है। अतएव वैदिक यज्ञ उत्तम होने पर भी साधारण जनता में लोकप्रिय न हुए और उनका ह्रास होने लगा। गुप्तयुग में केवल अश्वमेध ही सीमित रहा। कालांतर में यज्ञ में लोगों की आस्था न रही। वैदिक धर्म में निहित पशुहिंसा से जनता के हृदय में घृणा उत्पन्न हो गई थी। फलतः यज्ञ यागादि के विधान में रुचि का अभाव दीख पड़ता है। उपनिषद् के ज्ञानकांड से उन्हें पूर्ण संतोष न हो सका। जन साधारण की दृष्टि में आत्मा तथा परमात्मा की सत्ता संबंधी शास्त्रार्थ में कुछ महत्व नहीं था। उनके शुष्क मस्तिष्क में गूढ़ दार्शनिक सिद्धांतों एवं तत्वों का प्रवेश सुकर न था। साधारण जनता निश्चित रूप से भक्ति प्रधान स्मार्त धर्म की ओर झुक रही थी। इसका सारा श्रेय भगवद् गीता को है। उसके द्वारा कर्म, ज्ञान तथा भक्ति में विभेद कर समाज में भक्ति की प्रधानता प्रकट हुई। महाभारत में भी नारायणीय मत या वासुदेव की उपासना भागवतधर्म के नाम से विहित है। इसमें भक्ति को प्रधान स्थान प्राप्त है और मोक्ष का मार्ग बतलाया गया है। ईसा पूर्व सदियों में मथुरा के शूरसेनों द्वारा वासुदेव-पूजा का उल्लेख है। घोषुडी के शिलालेख तथा हेलियोडोरस के बेस नगर स्तंभ लेख में भगवान् वासुदेव की पूजा का वर्णन है।

(अ) संकर्षण वासुदेवाभ्यां पूजा शिला प्रकारो (घोषुडी लेख)।

(ब) देवदेवस वासुदेव गरुड़ध्वजे अयं करिते हेलियोडेरेन (वेसनगर स्तंभ लेख)।

विष्णु-पूजा

अतः इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि प्राचीन युग में वासुदेव कृष्ण (विष्णु) की पूजा का प्रचलन था। बौद्धधर्म पर भी इस भागवत धर्म का अत्यधिक प्रभाव पड़ा और महायान का अभ्युदय हुआ। कुछ विद्वान हीनयान से महायान की उत्पत्ति मानते हैं। किंतु भिक्षु बनकर

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

निवृत्ति मार्गगामी हीनयान से प्रवृत्तिमय एवं भक्ति संचारित महायान की उत्पत्ति कैसे मानी जा सकती है ? अस्तु भागवतधर्म का प्रचार तथा प्रसार गुप्तकाल में चरमसीमा को पहुँच गया था। गुप्त शासक परम वैष्णव थे, इसीलिए उनके अभिलेख तथ मुद्रालेख में 'परम भागवत' की उपाधि उल्लिखित है। गुप्त नरेशों ने अपनी स्वर्ण मुद्रा पर विष्णु की भार्या लक्ष्मी तथा वाहन गरुड़ की आकृतियाँ अंकित की। द्वितीय चंद्रगुप्त के सिक्कों पर 'विष्णु की आकृति' स्पष्ट दीख पड़ती है। गुप्त अभिलेखों के अध्ययन से पता लगता है कि उस युग के पूजनीय देवता 'विष्णु' ही थे। द्वितीय चंद्रगुप्त ने अपने विजयकीर्ति को स्थायी करने के लिए विष्णुपद नामक पर्वत पर विष्णुध्वज स्थापित किया था। लेखवद्ध कार्य के आरंभ में विष्णु की स्तुति पाई जाती हैं—

तेनाय प्रणिधाय भूमिपतिना भावेन विष्णोमति
प्रांशुर्विष्णु पदे गिरौ भगवतो विष्णुध्वजः स्थापितः

(मेहरौली लौह स्तंभ लेख—प्रा० भा० अ०, पृ० ३१७)

स्कंदगुप्त का जूनागढ़ अभिलेख निम्नलिखित प्रार्थना से प्रारंभ होता है—

श्रियमभिमत भोग्यां नैक कालापतीनां
त्रिदशपतिसुखार्थंयोबलेराजहार
कमलनिलयनायाः शाश्वतंधाम लक्ष्म्यां
स जयतिविजितार्तिविष्णुत्यंतजिष्णुः

(जूनागढ़ का लेख---प्रा० भा० अ०, पृ० ३२६)

इसी लेख में सौराष्ट्र के राज्यपाल पर्णदत्त के पुत्र चक्रपालित द्वारा विष्णु मंदिर के निर्माण का वर्णन है—

कारितमक्रमतिना चक्रभृतः चक्रपालिते गृहम्।

द्वितीय कुमारगुप्त के भितरी राजमुद्रा पर विष्णु के वाहन गरुड़ की आकृति खुदी है, जो विष्णु-पूजा के प्रचलन का द्योतक है। महाराज बुधगुप्त का एरण स्तंभलेख विष्णु की स्तुति से प्रारंभ होता है। उसके सामंत मातृविष्णु द्वारा भगवान् विष्णु (जनार्दन) के ध्वजस्तंभ का निर्माण किया गया था, ऐसा उल्लेख है—

महाराज मातृविष्णु तस्यैवानुजेन तदनु विधायिना तत्प्रसाद परिगृहीतेन धन्य विष्णुना मातृपित्रोः पुण्याप्यनार्थमेष भगवतः पुण्य जनार्दनस्यध्वजस्तंभो अभ्युच्छ्रितः।

(का० इ० इ०, भा० ३,सं० १९)

अवतार-कल्पना

गुप्तकालीन अभिलेखों का अध्ययन यह भी प्रकट करता है कि विष्णु भगवान् के अवतारों की कल्पना पूर्ण हो गई थी और कुछ अवतार पूजित होने लगे थे। कलात्मक नमूने चतुर्भुजी

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

विष्णु के नहीं मिलते हैं परंतु लेखों के वर्णन तथा कला के दृष्टांत यह सिद्ध करते हैं कि जनता में वैष्णवमत की प्रधानता थी और राजधर्म का स्थान प्राप्त कर लिया था। यों तो कला नमूनों में अनेक अवतारों की मूर्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं परंतु वराह अवतार का विशेष प्रचलन था। वराह प्रतिमा भी दो प्रकार की है। प्रथम मूर्ति में सिर का भाग वराह का तथा शेष मानव का है। द्वितीय दृष्टांत तो वराह (जानवर) की प्रतिमा से व्यक्त होता है। इस युग की वराह की सुविशाल मूर्ति एरण (सागर, म० प्र०) से प्राप्त हुई है। यह ठोस पाषाण की प्रतिमा है। मानो भगवान् ने वराह रूप में साक्षात् अवतार लिया हो। इस मूर्ति के साथ एक लेख अंकित है जिसमें वराह की प्रार्थना की गई है—

जयतिधरण्युद्धरणे घनघोरा घातघूर्णितः महींद्रः।
देवो वराह मूर्तिः त्रैलोक्य महागह स्तंभः।
(एरण लेख)

इस लेख से ज्ञात होता है कि तोरमाण के अधीनस्थ राजा धन्यविष्णु ने वराह मूर्ति का निर्माण कराया था।

धन्यविष्णुना तेनैव—भगवतो वराह मूर्तेः जगत्परायणस्य नारायणस्य शिला प्रासादः।
(प्रा० भा० अ०, पृ० ३५९)

गुप्तकालीन विशाल वराह प्रतिमा मध्यप्रदेश के भोपाल समीपस्थ उदयगिरी गुहा में दीख पड़ती है। गुप्त राजाओं के दामोदरपुर ताम्रपत्र में 'श्वेत वराह' स्वामिन् के लिए दान का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त उदयगिरी गुहा में शेषशायी विष्णु की प्रतिमा खोदी गई है। सारनाथ संग्रहालय में गोवर्धनधारी कृष्ण की मूर्ति है जो गुप्तकालीन मानी जाती है। भीटा, नालंदा तथा वैशाली से ऐसी अनेक मुहरें प्रकाश में आई हैं जिन पर शंख चक्र, त्रिशूल एवं नंदी जैसे वैष्णव एवं शैव चिह्न बहुलता से मिले हैं। यज्ञवेदि या यूप का चिह्न दुर्लभ है। विष्णु की पूजा तथा वैष्णव मत की लोकप्रियता का कारण पौराणिक साहित्य था जिसमें विष्णु को उच्चतम देवता मान लिया गया। अभिलेखीय साक्षी यह प्रदर्शित करते हैं कि दशावतारों में वराह सबसे प्रिय अवतार था। इसके स्वरूप वराह की विशालकाय प्रतिमा उदयगिरि गुहा में दिखलाया गया है। इसका तात्पर्य यह भी समझा गया है कि द्वितीय चंद्रगुप्त ने शकों की दासता से भूभाग को मुक्त किया था। इस युग में कृष्ण के कार्यों का भी वर्णन पहाड़पुर में मूर्तियों द्वारा प्रदर्शित है। इन सबका कारण यह था कि विष्णु पूजा जनता को अधिक आकृष्ट करती रही। गुप्त नरेशों ने सोने तथा रजत सिक्कों पर अपनी वैष्णव पदवी का भी उल्लेख किया है। इसीलिए द्वितीय चंद्रगुप्त के अश्वारोही प्रकार सिक्के के अग्रभाग पर नाम सहित 'परम भागवत' की पदवी अंकित है। चंद्रगुप्त विक्रमादित्य तथा प्रथम कुमारगुप्त के रजत सिक्कों पर भी यही वैष्णव पदवी "परम भागवत" उत्कीर्ण है। राजाश्रय पाकर विष्णु पूजा का विकास होता गया। मध्ययुग में बौद्धमत भी इसी में सम्मिलित हो गया जो वैष्णव-सहजिया के नाम से विख्यात रहा।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

शिवपूजा

गुप्तयुग के कई पुराणों में शिव का भी पर्याप्त वर्णन मिलता है। अतः शैवमत वैष्णव धर्म के समान ही लोकप्रिय था। गुप्तों से पूर्व कुषाण राजाओं के सिक्कों पर शिव की मानवीय मूर्ति खुदी है और उनका ओहशो (शिव) नाम यूनानी भाषा में उत्कीर्ण है। शिवपूजा कई रूपों में की जाती थी। शिव का आद्यतम चिह्न 'लिङ्ग' अतीव प्राचीनकाल में निर्मित होता रहा। गुप्तयुग में प्रथम कुमारगुप्त का एक लेख करमदंडा शिवलिंग के अधोभाग पर खुदा है। स्यात् वही उस युग का अंतिम शैवचिह (लिंग) था। क्योंकि उसके पश्चात् लिंग के साथ मानवीय आकृति का समिश्रण होने लगा। भूमरा (मध्य भारत) से जितनी शिव प्रतिमाएँ उपलब्ध हुई हैं सब में मानवीय मुख जुड़ा है। वैशाली के बनिया ग्राम से चतुर्मुख शिवलिंग की मूर्ति प्राप्त हुई है जो मंदिर में प्रतिष्ठित है। इस देवता के आयुध त्रिशूल या शिव के वाहन नंदी का रूप मुहरों पर मिलता है। द्वितीय चंद्रगुप्त के मथुरा स्तंभ लेख का विश्लेषण यह प्रकट करता है कि मथुरा में पाशुपत का लकुलीश संप्रदाय अधिक लोकप्रिय था। ऐसा प्रतीत होता है कि लकुलीश के चार प्रधान शिष्यों में एक कुशिक था जो ई० स० १५० में अपने को अधिष्ठित कर चुका था। इस स्थान पर उसने तथा उसके शिष्यों ने दश पीढ़ियों तक पाशुपत सिद्धांत का प्रचार किया। आचार्य के लिए भगवान् की उपाधि लेख में उल्लिखित है। गुप्तकालीन मथुरा का स्तंभ लेख पराशर, उपमित, कपिल तथा उदित नामक पाशुपत आचार्यों का नामोल्लेख करता है। उनके शिक्षा के परिणाम स्वरूप लकुलीश लोकप्रिय देवता हो गए—

अस्यां पूर्व्वायां भगवत्कुशिकात् दशमेन
भगवत् पराशर चतुर्थेन भगवत्कपिल
विमले शिष्य शिष्येण भगवत् उपमित
विमल शिष्येण आर्यैः उदित आचार्येण।

(मथुरा स्तंभ लेख—ए० इ०, भा० २१, पृ० ८)

इनके अनुयायियों ने दिवंगत आचार्य की स्मृति में मंदिर बनवाया था—

गुरुणा च कीर्त्यर्थं उपमितेश्वर कपिलेश्वरौ गुर्व्वा यतने गुरु—प्रतिष्ठापितो।

(वहीं)

मथुरा के पाशुपतों द्वारा समर्थित शिवोपासना के शुद्ध स्वरूप का ज्ञान नहीं है किन्तु इस युग में भक्त शिवलिंग को सिर पर धारण किये प्रदर्शित किये गये हैं (शिवलिंगोद्वहन)। द्वितीय चंद्रगुप्त का मंत्री वीरसेन ने उदयगिरि पर शिवपूजा के निमित्त एक मंदिर का निर्माण किया था—

भक्त्या भगवतः शंभोर्गुहामेतामकारयत्।

(प्रा० भा० अभि०, पृ० ३१५)

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

पाँचवीं सदी में प्रथम कुमारगुप्त के शासनकाल में ध्रुव शर्मा नामक व्यक्ति ने भिलसद (एटा, उ० प्र०) में महासेन मंदिर को दान दिया था।

स्वामी महासेनस्य आयतने। (वहीं, पृ० ३१७)

दामोदरपुर (उत्तरी बंगाल) ताम्रपत्र में नामलिंग तथा कोकमुख स्वामिन के निमित्त अग्रहार का उल्लेख मिलता है (ए० इ०, भा० १५)। सम्राटों के अतिरिक्त गुप्तों के सामंत हस्तिन के खोह लेख शिव-वंदना से प्रारंभ होते हैं—**नमो महादेवाय।** भगवान् शिव के जीवन घटनाओं का प्रदर्शन कला में उपलब्ध है। शिव परिवार के संबंध में भी हमारा ज्ञान परिमित है। महिषमर्दिनी दुर्गा की मूर्तियाँ उदयगिरि तथा भूमरा (मध्यप्रदेश) से मिली हैं। शिव के दो पुत्रों में गुप्तयुग में कार्तिकेय को प्रमुख स्थान दिया गया था। प्रथम कुमारगुप्त की स्वर्ण मुद्रा पर कार्तिकेय की मूर्ति खुदी है। कलाभवन (काशी विश्वविद्यालय) में भी उसी काल की कार्तिकेय की सुंदर प्रतिमा सुरक्षित है। अतः लेखों तथा कलात्मक उदाहरणों से प्रमाणित होता है कि गुप्तकाल में शिवपूजा का भी प्रचार था।

पंचदेवों में विष्णु एवं शिव के पश्चात् सूर्य की गणना होती है। वैदिककाल से सूर्यपूजा का प्रचलन भारत में रहा है। जो देवता समस्त जगत को प्रकाश देता है तथा दिन-रात का कारण है उसकी पूजा स्वाभाविक है। विद्वानों का मत है कि ईरान से सूर्यपूजा का प्रचार भारत में हुआ। ईसवी सन् के आरंभ से भारत में इस देवता की उपासना होने लगी थी। कुषाण राजा कनिष्क के सिक्कों पर मीरो (मिहिर = सूर्य) शब्द अंकित पाया जाता है। गुप्तकाल में विष्णु तथा शिव के बाद सूर्योपासन का स्थान था। प्रथम कुमारगुप्त के मंदसोर (मालवा) वाले लेख में भगवान् भास्कर की स्तुति ललित तथा काव्यमय भाषा में पठनीय है—

योवृत्यर्थेमुपास्यते सुरगणैः सिद्धश्च सिद्धार्थिभिः।
ध्यानैकाग्रपरैर्विधेय विषयैः मोक्षार्थिभिः योगिभिः।
भक्त्या तीव्र तपोधनैश्च मुनिभिः शाप प्रसादक्षमैः।
हेतुर्यो जगतः क्षयाभ्युदययोः पायात्स वो भास्करः।
तत्वज्ञान विदोपि यस्य न विदुः ब्रह्मर्षयोभ्युद्यतः।
कत्स्नं यश्च गभस्तिभिः प्रवृसृतैः पुष्पाणि लोक त्रयम्।
गन्धर्वामर सिद्ध किन्नर नरैः संस्तूयते अभ्युत्थितो।
भक्तेभ्यश्च ददाति योभिलषितं तस्मैः सवित्रे नमः।
यः प्रत्यहं प्रतिविभात्यु दयाचलेन्द्रः।
विस्तीर्ण तुंग शिखरः खलितांशु जालः।
क्षीवांगना जन कपोल तलाभि ताम्रः।
पायात्सवः सुकिरणा भरणो विवस्वान्।

(गुप्त साम्राज्य का इतिहास, पृ० १९२-३)

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

इस स्तुति से प्रार्थयिता की सूर्यपरक भक्ति का पूर्ण परिचय मिलता है। लेख के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि प्रथम कुमार गुप्त के प्रांतपति बंधु वर्मा के शासन में दशपुर (मालवा में तंतुवाय की श्रेणी द्वारा एक सूर्य मंदिर का पुनः संस्कार तथा निर्माण भी हुआ था।

(१) संस्कारितमिदं भूयः श्रेण्या भानुमतोगृहं

(२) श्रेण्या देशेन भक्त्या च कारितं भवनं रवेः

(३) श्रेणीभूतैः भवनमतुलं कारितं दीप्त रश्मेः

(प्रा० भा० अ०, पृ० ३२४-५)

सम्राट् स्कंदगुप्त के इंदोर ताम्रपत्र लेख से प्रकट होता है कि अंतर्वेदि में दो क्षत्रियों द्वारा सूर्यपूजा निमित्त एक सुंदर भास्कर मंदिर का निर्माण किया गया था।

प्रतिष्ठापितः भगवते सवित्रे

उस लेख का प्रार्थना-पद्य सूर्य की स्तुति से आरंभ है।

पायाद्वः स जगत्पिधान पुटभि-द्रश्म्या करो भास्करः

(का० इ० इ०, भा० ३, सं० १६)

सूर्य मंदिरों के निर्माण के अतिरिक्त गुप्तकालीन सूर्य प्रतिमा भी उपलब्ध हुई हैं। इन मूर्त्तियों से लेखों में उल्लिखित सूर्य पूजा के प्रमाण की पुष्टि होती है। भूमरा से एक अत्यंत सुंदर सूर्य प्रतिमा प्रकाश में आई है। गुप्तयुग से पूर्व सूर्य रथ में चार घोड़े प्रदर्शित किये जाते थे पर गुप्तकाल में सात घोड़ों का रथ निर्मित्त होने लगा। अजमेर संग्रहालय में सूर्य प्रतिमा के चरण पीठ पर सात घोड़े अंकित हैं। यह गुप्तकालीन मूर्ति प्रकट होती है। गुप्तकाल में ही सूर्य के सात घोड़ों की वैज्ञानिक कल्पना विकसित हुई। वैशाली में अनेक मुहरें मिली हैं जिन पर "भगवतो आदित्यस्य" खुदा है। (आ० स० रि०, १९११-२, पृ० ५८) संभवतः सूर्य मंदिर की वह मुद्रा होगी। लेखों में उल्लिखित सूर्य की स्तुति भक्तों के प्रगाढ़ भक्ति का साक्षी है। इन सभी विवरण के आधार पर यह कहना न्याय संगत होगा कि गुप्तकालीन समाज में सूर्य पूजा का भी महत्त्वपूर्ण स्थान था।

दान का विवरण

गुप्त युग के सार्वजनिक मंदिरों में पूजा का पर्याप्त प्रचार हो गया था। मंदिरों के अवशेष इसके साक्षी हैं जो मध्य भारत में पाए जाते हैं। शनैः शनैः मंदिर हिंदू धर्म तथा संस्कृति के केंद्र बन गए। अतः यह स्वभाविक था कि ऐसे मंदिरों को (धर्म में सहयोग देने वाले) अधिक-से-अधिक दान दिया जाय। ऐसे मंदिरों में सदावर्त चलाने का विवरण गुप्त लेखों में पाया जाता है। प्रथम कुमारगुप्त के लेख में उसे धर्म सत्र कहा गया है।

प्रासादाग्राभिरूपं गुरुवर भवनं धर्मसत्रं यथावत। (मिलसद का लेख)

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

दुर्भाग्यवश गुप्त लेखों में दान के अवसर का उल्लेख नहीं मिलता किंतु हिंदू धर्म के विभिन्न पर्वों तथा धार्मिक उत्सवों पर दान देने की प्रथा प्रचलित होगी। गुप्तयुगी साहित्य में पुराणों का अंतिम संकलन हो गया था। अतः उनमें वर्णित तीर्थ तथा पूजा का विधान समाज को अज्ञात न था। अभिलेखों में इसका साक्षी नहीं है क्योंकि अधिकतर अभिलेख शासक के विजय का वर्णन करते हैं। इनके पश्चात् दान (अग्रहार भूमि) का विवरण पाया जाता है। गुप्तकालीन अभिलेखों में दान के उद्देश्य को तीन विभागों में विभक्त किया जा सकता है।

(१) देवमंदिर का निर्माण तथा संस्कार
(२) देवपूजा संबंधी दान
(३) मठ में भिक्षुओं के निमित्त यानी सत्र की स्थापना

नवीन मंदिरों के निर्माण का विवरण ऊपरी पंक्तियों में प्रस्तुत किया गया है। पुराने मंदिरों के जीर्णोद्धार या संस्कार को भी पुण्य कार्य समझा जाता था। इसलिए अभिलेखों में "खंडस्फुट संस्कार" शब्दों का प्रयोग मिलता है। यदि मंदिरों का इतिहास देखा जाय तो स्पष्ट प्रकट होता है कि हिंदू मंदिरों के निर्माण कला का आरंभ गुप्त युग में हो गया था। ऐसी परिस्थिति में मंदिरों के खंडित होने का प्रश्न नहीं उठता। परंतु दानकर्त्ता का यह विचार था कि कालान्तर में खंडित हो जाने पर मंदिर के संस्कारार्थ दान पत्रों में उल्लेख होना चाहिए। दामोदरपुर ताम्रपत्रों तथा गुणैधर लेख में "खंड स्फुट प्रति संस्कार करणाय" तथा "स्वेत वराह स्वामिनो देवकुल खंड स्फुट प्रति संस्कार" वाक्य विशिष्ट रूप से उल्लिखित है (प्रा० भा० अ०, पृ० ३३६)।

भानुगुप्त के शासन कालीन (छठी सदी का आरंभ), दामोदरपुर ताम्रपत्रों में मंदिर के पूजा निमित्त भूमिदान का वर्णन आया है—

अप्रदा धर्मेण भगवते श्वेत वाराह स्वामिने शश्वत काल योग्या दत्ताः
(प्रा० भा० अ०, पृ० ३४२)

शाश्वत शब्द के प्रयोग की सार्थकता थी क्योंकि उसी के बाद कुछ श्लोक उल्लिखित हैं, जिनमें दान का महत्व बतलाया गया है।

बहुभिः बसुधादत्ता दीयते च पुनः पुनः
यस्य यस्य यदा भूमिः तस्य तस्य तदाफलम्।

दानपत्रों में देवपूजा की चर्चा है। करमदंडा शिवलिंग लेख में धार्मिक कार्य तथा पूजा निमित्त दान का वर्णन है। स्कंदगुप्त के इंदोर ताम्रपत्र में दीपदान का उल्लेख है, उसके लिए दो पल तैल दान किया गया था। गुणैधर ताम्रपत्र में बुद्ध देव की पूजा निमित्त गंध पुष्पदीप आदि सामग्रियों का विवरण मिलता है—

"बुद्धस्य सततंत्रिकाल गंध पुष्पदीप धूपादि"

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

श्वेत वराह स्वामि के पूजा निमित्त सामग्रियों के नाम निम्न प्रकार हैं—

श्वेत बराह स्वामिनी देवकुले
गंधधूपपुष्प प्रापण मधुपक्तृदीपादि उपयोगाय

(दामोदरपुर ताम्रपत्र—ए० इ०, भा० १५)

विष्णु-पूजा की प्रधानता तथा अवतारों की कल्पना से संबंधित चर्चा लेखों में अधिक नहीं है। किंतु दान के प्रकरण में ऐसी बातों का संग्रह किया गया है जिस कारण दान-कार्य अक्षुण रूप से होता रहे। उस पवित्र कार्य में विघ्न उपस्थित न हो, इस कारण प्रशस्तिकार धर्मग्रंथों से उद्धरण देते रहे कि दान कार्य से पुण्य लाभ होता है अन्यथा दानहर्ता को नरक गामी होना पड़ेगा। जनसाधारण में स्वर्ग नरक में विश्वास का परिज्ञान लेखों के अंतिम पद्यों से हो जाता है जिसमें दानकर्त्ता को स्पष्ट बतलाया गया है कि दान की प्रतिष्ठा से स्वर्ग तथा अपहरण से नरक मिलेगा। बृहस्पतिस्मृति तथा पुराणों से उद्धरण अभिलेखों के अंतिम अंश में उल्लिखित है।

(१) **स्वदत्तापरदत्ता वा यो हरेत वसुंधरां।**
(२) **स कृमिभूत्वा पितृभिः सह पच्यते।**
(३) **षष्टि वर्ष सहस्राणि स्वर्ग मोदति भूमिदः।**
(४) **आक्षेप्ता चानुमंता च तान्येव नरके वसेदिति।**

(दामोदरपुर ताम्रपत्र—प्रा० भा० अ०, पृ० ३३८-४०)

अभिलेखों में इसे **"व्यासेन गीताः श्लोका."** या **"भूमिदान संबंधी श्लोकः"** (वही पृ० ३३९) वाक्य द्वारा व्यक्त किया गया है। स्कंदगुप्त के इंदोर ताम्रपत्र में दान अपहरण से गो, द्विज तथा गुरु की हत्या का पाप लगता है, ऐसा उल्लेख है। द्वितीय चंद्रगुप्त के सांची लेख में 'गो ब्रह्म हत्या' से उत्पन्न पाप का वर्णन है (का० इ० इ०, भा० ३)। कहने का तात्पर्य यह है कि गुप्त युग में पाप, पुण्य, स्वर्ग तथा नरक में लोकविश्वास निहित था। अतएव इस युग को कलियुग कहा गया है। जहाँ तीर्थों की चर्चा है उसमें प्रयाग का नाम प्रमुख रूप में मिलता है। वहीं शासक वृद्धावस्था में प्राण त्यागनी पुण्यकार्य समझता था। यही कारण है कि प्रयाग में द्वितीय कुमारगुप्त ने स्वर्ग प्राप्ति की कामना से आग में जलकर प्राण त्यागा। दानपत्रों में भी **'आत्मनश्च पुण्याभिवृद्धये'** वाक्य लिखकर प्रशस्तिकार ने दान की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट किया है।

इस युग में सामान्य ब्राह्मण दैनिक जीवन में स्मृतियों में विहित मार्गों का अवलंबन करता था। संध्योपासना के अतिरिक्त पंचमहायज्ञ का भी विधान मानता और पितृपूजा पर भी ध्यान रखता था। अभिलेखों में धर्मात्मा व्यक्ति द्वारा पंचमहायज्ञ के संपादन का उल्लेख है। समाज में धार्मिक संस्कारों का कितना पालन होता था, यह कहना कठिन है। पूर्व मध्ययुग के लेखों के अध्ययन से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि गुप्तयुग में धार्मिक कृत्यों पर लोगों का ध्यान रहा होगा।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

भारतीयकरण

भारतीय धर्म में विदेशियों को आत्मसात करने का कार्य सदियों से चला आ रहा था परंतु गुप्तकाल में इसमें कुछ विशेष प्रगति आई। हिंदूधर्म में यह शक्ति (अन्य जातियों को पचा लेने) अक्षुण्ण बनी रही। गुप्तपूर्व शताब्दियों में यूनानी, शक, पह्लव तथा कुषाण लोगों ने भारत में राज्य किया था जिनका स्वांगीकरण सनातन धर्म में हो गया। गुप्त युग में द्वितीय चंद्रगुप्त ने भी शकों को परास्त किया और उनका आत्मसात हिंदू समाज में अवश्यमेव हो गया। पाँचवी सदी में हूण लोगों के आक्रमण हुए जो पराजित होकर भारत के ही निवासी हो गए और भारतीय समाज में घुलमिल गए। संभवतः दूसरी सदी तक पंजाब के कुषाण हिंदू बन चुके थे। शकों की भी यही दशा हुई। विदेशियों के भारतीयकरण की पद्धति गुप्तकाल से चली आ रही थी और कई अन्य जातियाँ को समाज में लीन पाते हैं। हूणों का विवरण गुप्त युग के बाद अभिलेखों में मिलता है। कलचूरि राजा ने हूण कन्या से विवाह भी किया था। विदेशी हूण सरदार तोरमाण के अभिलेख से ज्ञात होता है कि वह हिंदू धर्म तथा दर्शन के दृष्टिकोण से प्रभावित हुआ था। उसी ने मुल्तान (मूलस्थान) पश्चिमी पाकिस्तान में सूर्य मंदिर का निर्माण किया था तथा अपने उत्तराधिकारी पुत्र का नाम मिहिर (सूर्य) रखा। तोरमाण के पुत्र मिहिरकुल भी भारत में राज्य किया जिसके लेख तथा सिक्के साक्ष्य रूप में उपस्थित किए जा सकते हैं। वह एक पक्का शैव था जिसका साक्ष्य उसके सिक्कों के परीक्षण से मिल जाता है। सिक्के पर नंदी की आकृति है तथा "जयतु वृषः" (शिव के वाहन की विजय) लेख अंकित है। इस प्रसंग में यह कहा जा सकता है कि गुप्त युग में भारतीय संस्कृति का विस्तार दक्षिण पूर्व एशिया तथा द्वीप समूह -जावा, सुमात्रा एवं बोर्नियो में हुआ। यह सर्वथा संभव है कि वहाँ के आदिम वासियों को शिक्षा देकर हिंदूधर्म में आत्मसात कर लिया गया हो। पश्चिमी एशिया में भी हिंदू संस्कृति तथा धर्म का प्रचार हुआ था। परंतु निश्चित साक्ष्य के अभाव में वास्तविक स्वरूप को उपस्थित करना कठिन है। ब्राह्मणों ने अन्य व्यक्तियों के भारतीयकरण में आपत्ति भी नहीं की। तात्पर्य यह है कि गुप्त युग तक विदेशियों का स्वांगीकरण हो गया था।

धार्मिक सहिष्णुता

प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन एक विशेष प्रकार की सद्भावना से परिचय कराता है जो इतिहास में अद्वितीय घटना प्रकट होती है। मौर्यकाल से लेकर बारहवीं सदी तक के शासक धार्मिक सहिष्णुता के भावना से प्रेरित थे। गुप्त युग में बौद्ध तथा भागवत धर्म की प्रतिष्ठा प्रायः समान थी। भागवतधर्म राजधर्म अवश्य हो गया था किंतु शासकों के सहिष्णु होने के कारण बौद्ध साहित्य तथा कला की विशेष उन्नति हुई। दोनों मतों के अनुयायियों में शास्त्रार्थ होते थे जिसका निर्देश प्रशस्तियों में मिलता है। धार्मिक क्षेत्र में सीमित ढंग से

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

विचार व्यक्त किये गये हैं। संयम (वचोगुप्ति) का विचार अशोक के धर्मलेख में उल्लिखित है। 'सातवाहन नरेश 'एक ब्राह्मण' की घोषणा करते हुए भी बौद्धमत के भदावनीय तथा महासंघिक शाखाओं को गुप्तदान दिया (नासिक गुहा लेख—प्रा० भा० अ०, पृ० २७५)।

परम भागवत गुप्त नरेश विष्णु के पुजारी होकर भी पंचदेव (विष्णु, शिव, सूर्य, दुर्गा तथा गणेश) की पूजा के समर्थक थे। उन्होंने अन्य संप्रदायों के प्रसार में योग किया। गुप्त सम्राटों ने शैव तथा जैन धर्मानुयायियों को प्रश्रय दिया। परम भागवत द्वितीय चंद्रगुप्त से लेकर बुधगुप्त तक लेखों में विहार दान का वर्णन मिलता है। उत्तरगुप्त काल में बौद्ध, जैन, शैव तथा वैष्णव पारस्परिक कलह तथा अत्याचार से पीड़ित हुए थे। परंतु गुप्तकाल में ऐसी घटना का अभाव रहा। विभिन्न संप्रदायों के पंडितों में शास्त्रार्थ होता रहा परंतु सामान्य जनता, साधारण बुद्धि से अपने स्वभाव तथा विचार के अनुकूल सिद्धांतों का समन्वय करती तथा भेदभाव को छोड़ कर आपस में प्रेम रखती एवं संरक्षण प्रदान करती थी। अजंता के एक लेख में वर्णन आता है कि बौद्धमत की प्रगति से कृष्ण, शंकर तथा अन्य देवताओं ने द्रुतगति से पलायन किया। विभिन्न अनुयायियों के बीच उत्तेजित शास्त्रार्थ हुआ परंतु ऐसा कोई साक्षी नहीं है जो यह प्रदर्शित करे कि उससे इन धर्मों के सामान्य अनुयायियों के जीवन की पद्धत्ति विक्षुब्ध हुई हो। बौद्ध राजा पौराणिक धर्म संबंधी चर्चा में विश्वास रखता था। पुण्ड्रवर्धन की रानी हिंदू होते हुए जैन अर्हतों की पूजा में विश्वास करती तथा भूमिदान कर आध्यात्मिक कल्याण की मनोकामना करती रही (ए० इ०, भा० १७, पृ० ३२८)। समुद्रगुप्त हिंदूधर्म का अनुयायी तथा वैदिक संस्कृति में आस्था रखने वाला शासक था। अश्वमेध भी संपन्न किया, तौभी अपने पुत्र की शिक्षा का भार बौद्ध आचार्य बसुबंधु को उसने सौंपा। गुप्त अभिलेखों में जैन आदिकर्तृन की प्रतिमा स्थापना का वर्णन है। उसके शासन की प्रशंसा जैन लेखों में भी मिलता है। हिंदू जैन आचार्य और जैनी हिंदू विद्वानों का समादर करते रहे। वैष्णव सम्राट् द्वितीय चंद्रगुप्त ने अपने कल्याण के लिए सांची के बौद्ध मंदिर को दान दिया था। उत्तर गुप्त नरेश वैन्यगुप्त ने भी एक महायान बौद्ध मंदिर को दान देकर पुण्य लाभ किया था। गुप्तयुग की धार्मिक कृत्यों के परीक्षण से पता चलता है कि भागवत धर्म के मानने वाले वैदिक कार्यों से विमुख हो (यज्ञ यागादि) चले थे। पांचवी सदी से यज्ञ निश्चित रूप से ह्रासोन्मुख थे। प्रथम कुमारगुप्त का अश्वमेघ यह व्यक्त करता है कि गुप्त शासक वैदिक परंपरा के विरोधी नहीं थे। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि शक्तिशाली शासक होने के नाते गुप्त राजाओं ने अश्वमेध किया पर हिंदूधर्म के पुनरुज्जीवन के बाद वैदिक यज्ञ इतने लोकप्रिय नहीं रहे जो तीसरी सदी में थे। इस प्रकार गुप्त युग में सहिष्णुता की बातों का परिज्ञान हो जाता है।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

अध्याय ८

भाषा तथा लिपि

प्राकृत

तीन सौ वर्षों तक उत्तरी भारत में (चौथी से छठी सदी) गुप्त सम्राटों के लेख उपलब्ध हुए हैं। तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव भी अभिलेखों के अध्ययन से प्रकट होता है। प्रशस्ति लिखने की कला के साथ भाषा संबंधी विचार भी उपस्थित करना आवश्यक प्रतीत होता है। जो हम बोलते हैं, वही भाषा है। प्राचीनकाल में भी प्रचलित भाषा को ही लेखों में स्थान दिया गया ताकि उसके तात्पर्य को जन-साधारण समझ सके। अशोक के धर्मलेख तो प्रजाहित में खोदे गए थे। अतएव जनता की भाषा का उपयोग किया गया। उससे साहित्य का सीधा लगाव न था इस कारण साहित्य का सहारा न लेकर अभिलेखों की भाषा ही विचारणीय प्रश्न है। आजकल साधारणतया लोगों को अभिलेखों की भाषा संबंधी ज्ञान अपूर्ण है। पालि के नाम से प्रायः सभी परिचित हैं और इसी को बुद्धधर्म-ग्रंथ एवं अशोक के धर्मलेख की भाषा मानते हैं। इसे मागधी भी कहा गया है। वर्त्तमानकाल से पचीस सौ वर्ष पहले अशोक ने समस्त भारत में अपने लेख खुदवाए जिनकी 'मागधीभाषा' प्राचीनतम भाषा मानी गई है। भगवान् बुद्ध ने लोकभाषा होने के कारण 'मागधी' का प्रयोग किया था। बौद्धग्रंथ चुल्लवग्ग (५, ३३, १) में ऐसा वर्णन आता है कि बुद्ध ने लोगों को अपनी भाषा से बुद्ध-वचन सीखने की आज्ञा दी थी।

अनुजानामि भिक्खवे निरुत्तियां बुद्धवचनं

कच्चायन व्याकरण में इसका निम्न प्रकार उल्लेख है—

सा मागधी मूलभाषा संबुद्धा चापि भासैरे

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

भगवान के बोलने की मूल भाषा का नाम मागधी था। अन्य प्रमाण भी इसे पुष्ट करते हैं कि बुद्ध ने मागधी में ही अपना प्रवचन आरम्भ किया था। अशोक ने उसी भाषा का प्रयोग लेखों में किया। अशोक के पश्चात् मागधी नाम प्रचलित न रहा किंतु पालि शब्द से वह भाषा प्रसिद्ध हुई। अशोक से लेकर शुंगकाल तक लेख तथा जातक प्रदर्शनों की भाषा (भरहुत वेदिका पर अंकित) पालि है। बौद्धसाहित्य की भाषा पालि या मागधी रही। जनसाधारण (प्रकृति) की भाषा होने से इसका 'प्राकृत' नामकरण भी हुआ।

विद्वानों के विचार में यही प्राकृत संस्कृत भाषा की उत्तराधिकारिणी हुई। चूंकि मौर्य तथा शुंग-सातवाहन युग के लेखों में प्राकृत का ही प्रयोग मिलता है अत: अभिलेखों के आधार पर प्राकृत ही प्राचीनतम भाषा थी। संस्कृत शिष्ट आर्य लोग बोलते थे, अतएव लेखों में इसका प्रयोग अशोक ने नहीं किया। वही प्रयोग शुंग-सातवाहन युग में दिखलाई पड़ता है। संस्कृत (Old Indo-Aryan Language) के बाद ही प्राकृत का प्रचलन हुआ। अतएव इंडो-आर्यन समूह में प्राकृत का स्थान मध्य में रखा जाता है (Middle Indo-Aryan) जिसका प्रसार ईसा पूर्व ६०० से ईसवी सन् ११०० तक होता रहा।

संस्कृत अभिलेख का इतिहास यह प्रकट करता है कि महाक्षत्रप रुद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख की भाषा काव्यमय संस्कृत रही। वह संस्कृत भाषा का प्रथम दृष्टांत है। उसके पश्चात् संस्कृत का प्रयोग गुप्तकाल में वृद्धि पर था। संस्कृत से प्राकृत का विनाश न हो सका अपितु दोनों का प्रयोग गुप्तकाल में साथ साथ होता रहा। बोलचाल की भाषा का प्रश्न विषयांतर होगा। गुप्त अभिलेखों की भाषा शुद्ध संस्कृत है जो राजभाषा का स्वरूप धारण कर ली। यदि लेखों की भाषा का परीक्षण किया जाय तो पता चलता है कि वैदिक यज्ञ को संपन्न करने वाला पुष्यमित्र भी लेखों में संस्कृत का प्रयोग न कर सका। मौर्य शासन के दक्षिण भारत के उत्तराधिकारी सातवाहन अपने को "एक ब्राह्मण" (श्रेष्ठ एवं उच्च ब्राह्मण) कहते रहे किंतु उनके सभी अभिलेख तथा मुद्रालेख प्राकृत ही में अंकित किए गए थे। नासिक, कनहेरी तथा कार्ले के लेख प्राकृत में खुदे हैं। आश्चर्य तो यह है कि उच्च वर्ग की भाषा संस्कृत का नाम तक नहीं मिलता। वैदिक यज्ञों का उल्लेख प्राकृत भाषा में किया गया है। इसका एक मात्र कारण यह था कि प्राकृत लोकभाषा थी और अभिलेख जन-साधारण के लिए खोदे गए थे।

अभिलेखों के सर्वेक्षण से विदित होता है कि ईसवी सन् की पहली सदी से मिश्रित संस्कृत का प्रचार होने लगा। शुंगकालीन अयोध्या लेख में संस्कृत प्राकृत से प्रभावित प्रकट होती है। जैसा कहा गया है द्वितीय शताब्दी में शक राजा रुद्रदामन ने काव्यमय संस्कृत में लेख खुदवाया था। **"स्फुट लघु मधुर चित्रकांत शब्द समयोदार अलंकृत गद्यपद्य"** वाक्य का उल्लेख किया गया है (प्रा० भा० अ०, पृ० ३०१)। यह स्पष्ट हो जाता है कि पश्चिमी भारत के शक नरेश संस्कृत से अनभिज्ञ नहीं थे। परंतु कारणवश उन्हें प्राकृत का प्रयोग करना पड़ता था। जिस शक

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

महाक्षत्रप रुद्रदामन का गिरनार लेख संस्कृत में है उसी के मुद्रालेख (Legends) प्राकृत में हैं। उसके पुत्र एवं पौत्र के मुद्रालेख मिश्रित संस्कृत में है। प्राकृत पुतस के स्थान पर पुत्रस तथा रञो के स्थान पर संस्कृत राज्ञो शब्दों को अपनाया गया। उत्तर पश्चिम भारत में भी कुषाणवंशी लेख मिश्रित संस्कृत में हैं। उदाहरण के लिए--

महरजस्य रजतिरजस्य देवपुत्रस्य कनिष्कस्य

वाक्य में प्राकृत 'स' के बदले संस्कृत षष्टी विभक्ति 'स्य' का प्रयोग होने लगा था।

संभवतः उस युग में विदेशियों का भारतीयकरण हो रहा था, अतः प्राकृत के स्थान पर देवभाषा (संस्कृत) का प्रयोग किंचित् आरंभ किया गया। महायान साहित्य में भी पहली सदी से संस्कृत अपनाया गया। ईसवी सन् की तीसरी सदी से सर्वत्र भारत में राजकीय अभिलेख संस्कृत में ही उत्कीर्ण किए गए। वही क्रम गुप्तकाल में पूर्णरूप से कार्यान्वित किया गया।

संस्कृत का प्रयोग

ईसवी पूर्व सदियों में पाणिनि द्वारा अष्टाध्यायी की रचना हुई थी और पतंजलि ने ई० पू० दूसरी शताब्दी में महाभाष्य भी लिखा। इस प्रकार के संस्कृत व्याकरण का प्रभाव तत्कालीन लेखों पर अवश्यमेव पड़ा। गुप्तयुग से पूर्व अभिलेखों में मिश्रित संस्कृत का स्थान प्रमुख होता गया। गुप्त लेख तो सर्वथा संस्कृत में ही लिखे गए। गुप्तों की राजभाषा संस्कृत हो गई। चौथी शती में गुप्तसम्राट् समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति हरिषेण द्वारा चम्पू भाषा में लिखी गई। क्रमशः समस्त गुप्त अभिलेख, मुद्रालेख तथा उत्तर—गुप्तयुग की प्रशस्तियाँ संस्कृत में अंकित हुई। उत्तरी भारत के अतिरिक्त दक्षिणापथ के अभिलेखों में संस्कृत अपनाया गया और वहाँ के लेख, प्रशस्तियाँ, ताम्रपत्र संस्कृत भाषा में ही खोदे गये। संस्कृत साहित्य में गुप्तकालीन पदाधिकारी हरिषेण का नाम अज्ञात है जिसने समुद्रगुप्त की कीर्ति को अमर बनाने तथा दिग्विजय एवं अश्वमेघ की चर्चा निमित्त प्रशस्ति की रचना की। यह चम्पू काव्य शैली का सुंदर उदाहरण है। इसमें श्रग्धरा तथा शार्दूलविक्रीडित आठ छंद हैं। संस्कृत भाषा से साधारण जनता तक विज्ञ थी अतः समुद्रगुप्त के मुद्रालेख छंदोवद्ध मिले हैं। मुद्रालेख उपगीति आदि छंदों में हैं। स्वयं सम्राट् समुद्रगुप्त को हरिषेण ने 'शास्त्र-तत्वार्थ भर्त्ता' लिखा है। प्रकट होता है कि शासक संस्कृत काव्य का पारंगत पंडित था, इसी कारण उसे 'कविराज' की पदवी प्रयाग प्रशस्ति में दी गई है (प्रतिष्ठित कविराज शब्दस्य)। इस प्रकार प्रथम कुमारगुप्त के 'खंगनिहंता प्रकार' सिक्के पर भी छंदोवद्ध लेख हैं जिसमें 'खड्ग' शब्द का श्लेषात्मक प्रयोग है। खड्ग शब्द का अर्थ है— तलवार या गैंडा। मुद्रालेख इस प्रकार है—

भर्त्ता खड्गत्राता कुमारगुप्तो जयत्य निशम्।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

कुमारगुप्त सदा विजयी हो जो खड्गत्राता है यानी तलवार (खड्ग) से रक्षा करता है। अथवा गैंडा के आतंक से (खड्गात्) बचाता है। प्रयाग प्रशस्ति तथा कालिदास की रचनाओं में समानता है। शब्द तथा भाव की अनोखी समता है। उदयगिरि तथा मंदसोर लेख के रचयिता क्रमशः वीरसेन एवं वत्सभट्टि के नाम सर्वविदित है। द्वितीय चंद्रगुप्त का दरबार कवि वीरसेन न्याय, व्याकरण एवं राजनीति का प्रकांड पंडित था—

शब्दार्थ न्याय लोकज्ञ कवि पाटलिपुत्रकः
कौत्सशाव इतिख्यातो वीरसेन कुलाख्यया

(उदयगिरि गुहा लेख)

प्रथम कुमारगुप्त की मंदसोर प्रशस्ति के रचयिता वत्सभट्टि ने दशपुर का मनोरम वर्णन तथा भवनों का सजीव चित्रण सुंदर शब्दों में किया है। इसकी अलंकृतभाषा की समता कालिदास की अलकापुरी के वर्णन से की जा सकती है। वत्सभट्टि के मंदसोर प्रशस्ति में ऋतुओं का वर्णन कालिदास के ऋतुसंहार से मिलता जुलता है। इसकी कविता सरस तथा रसीली थी। यह वैदर्भी रीति में लिखे गये काव्य का उत्कृष्ट नमूना है। संक्षेप में यह कहना पर्याप्त होगा कि गुप्तकालीन प्रशस्ति संस्कृत साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। कुछ प्रशस्तियों के लेखकों का नाम अज्ञात है तथापि साहित्य के दृष्टि से पठनीय है। स्कंदगुप्त का गिरनार (जूनागढ़) लेख इसका ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत करता है। इसमें सुदर्शन झील के संस्कार की घटना अलंकारिक भाषा में लिखी गई है। इससे जनता में संस्कृत के प्रति अनुराग का परिज्ञान हो जाता है। जूनागढ़लेख में प्रशस्तिकार नदियों के (रैवत तथा पलाशिनी) प्रवाह का वर्णन करते हुए लिखता है कि मानों दोनों नदियों (स्त्रियों के रूप में) अपने पति (समुद्र) से मिलने के लिए द्रुतगति से जा रही हैं (प्रवाहित हो रही हैं)। यह उपमा पठनीय है—

इमाश्च या रैवतकाद्विनिर्गताः, पलाशिनीयं सिकता विलासिनी
समुद्रकांताः चिरवन्धनोषिता, पुनःपति शास्त्रयथोचितं ययुः ॥

लिपि की चर्चा

गुप्तकालीन अभिलेख, प्रशस्ति तथा दानपत्र एक विशिष्ट प्रकार की लिपि में उत्कीर्ण हैं जिसे 'गुप्त-लिपि' कहते हैं। भारत में लेखन कला के उद्गम के विषय में मतभेद हैं। भारतीय विद्वानों तथा पश्चिमी इतिहासज्ञों के विचारधारा में मतैक्य नहीं है। इस कारण यह विषय विवादास्पद बना है। भारतवर्ष में लिपि के अज्ञात उद्गम के संबंध में कोई वास्तविक चर्चा न कर उसे ब्रह्मा से उत्पन्न कहने लगे। यही भारत के प्राचीन लिपि के विषय में चरितार्थ होता है तथा प्राचीनतम लिपि का संबंध ब्रह्मा से जोड़कर उसे ब्राह्मी का नामकरण किया गया। इस विचार को बाद में भी प्रस्तर पर प्रदर्शित किया गया है। वहाँ ब्रह्मा के हाथ में ताड़पत्र का समूह दृष्टिगत होता है (इ० ए०, भा० ६, पृ० ३६६)। यानी ब्रह्मा लिखते दृष्टिगत हो

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

रहे हैं। पश्चिमी विद्वानों का मत था कि आर्यों के आगमन के पश्चात् भारत में लेखन कला का विकास हुआ। परंतु हरप्पा संस्कृति के प्रकाश में आने पर विचार में परिवर्तन आ गया है। मैक्समूलर लेखन कला की उत्पत्ति ई० पू० ८०० से पूर्व कथमपि मानने को तैयार नहीं है (ए० इ० १६००, परिशिष्ट पृ० १७)। यूनानी लेखक, जो सिकंदर के आक्रमण पश्चात् भारत आये, भारतीय लेखनकला के प्रसार को विभिन्न रूप से व्यक्त किया है। ईसा पूर्व चौथी सदी का यूनानी राजदूत मेगास्थनीज ने मार्गों पर स्थित प्रस्तरों पर अंक को उत्कीर्ण देखा था यानी लिखना सभी जानते थे। करटियस ने भोजपत्र के प्रयोग का उल्लेख किया है। तात्पर्य यह है कि भारतवासी लिखने की कला से विज्ञ थे। चीनी यात्रियों ने भी भारतीय लिपि के संबंध में अपना मंतव्य प्रकट किया है। चीनी ग्रंथ में ब्राह्मी के विषय में उल्लेख है।

ईसवी पूर्व छठी शताब्दी में बौद्ध ग्रंथों का संकलन हो गया था। लेखन कला के संबंध में भी उल्लेख है। सूत्तांत नामक ग्रंथ में भिक्षुओं को अक्षरिका नामक खेल खेलना निषेध किया गया था। इस खेल में व्यक्ति के पीठ पर अक्षर के संकेत को समझ कर पहचानना पड़ता था। अन्य साक्ष्य भी इसे पुष्ट करते हैं। कई जातकों में पत्रों का लेखन, सरकारी घोषणा, तथा हस्तलिखित पुस्तकों का विवरण मिलता है। महावग्ग में लेख, गणना तथा रूप को प्रारंभिक शिक्षा का विषय कहा गया है। जातकों में फलक पर कलम (लेखनी) से लिखने की चर्चा है। ललितविस्तर में बुद्ध के लिपिशाला (पाठशाला) जाने का वर्णन आता है। अतएव बौद्ध साहित्य के आधार पर ईसा पूर्व ६०० के समीप लेखनकला की जानकारी भारतवासियों को अवश्य थी। इससे भी पूर्व वशिष्ठ धर्मसूत्र (१६, १०, १४) में वर्णन आया है कि लिखित पत्र को साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। भारतीय वेदांग में कल्प के साथ व्याकरण का नामोल्लेख है। साहित्य (यानी लिखे ग्रंथ) के आधार पर व्याकरण तैयार होता है। अतएव यह कथमपि संभव नहीं कि व्याकरण तथा दर्शन के प्रचारकों को लेखन कला का ज्ञान न हो ? पाणिनि के अष्टाध्यायी में लिपि, लिपिकार या यवनानी शब्दों का प्रयोग यह सिद्ध करता है कि समाज में लेखन कला का समुचित ज्ञान था। नारद तथा बृहस्पति ने लिखा है कि ब्रह्मा द्वारा लिखने की कला उत्पन्न की गई जिससे लोगों को शास्त्र का ज्ञान हो सके। खेद है कि ईसा पूर्व पाँचवी सदी से पूर्व लिखित दृष्टांत उपलब्ध नहीं है। प्राचीन काल में कंठगता विद्या थी और गुरुमुख से श्रवण कर शास्त्रों का पठन पाठन किया जाता था। डा० गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने अपने ग्रंथ 'प्राचीन भारतीय लिपिमाला' में इस विषय की चर्चा करते समय यह मत व्यक्त किया है कि प्राचीनयुग में लिखित प्रतिशाख्य वर्त्तमान था यानी लेखनकला का ज्ञान भारतवासियों को अवश्य था। सभी प्रमाणों के आधार पर यह मत व्यक्त करना यथार्थ होगा कि ईसा पूर्व हजार वर्ष में भारत में लेखनकला का प्रारंभ हो गया था।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

ब्राह्मी का विकास

ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी से अशोक के धर्मलेख प्रत्यक्ष प्रमाण उपस्थित करते हैं कि ब्राह्मी लिपि का विकास हो गया था। उस सम्राट् के सभी लेख (पश्चिमोत्तर प्रदेश को छोड़कर) ब्राह्मी में खोदे गये थे। अशोक के लेखों का विश्लेषणात्मक अध्ययन यह बतलाता है कि भारत में लिपि का पूर्व ज्ञान था जिसका विकास अशोक के शासनकाल में हुआ। यह सही है कि उत्तर से दक्षिण तक के लेखों में समान अक्षर नहीं हैं। गिरनार, सिद्धपुर धौलो आदि के अक्षर असमान हैं। स्थान विषमता से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि लिपि का प्रचार पहले से ही था। अशोक ने प्रस्तर पर चिरस्थायी होने के हेतु लेख खुदवाए थे—

अयि ध्रमदिपि लिखितचिर-ठितिक होतु तथ च में प्रज अनुवटतु।

(शिलालेख ५, मानसेरा पाठ प्रा० भा० अ०, पृ० २५०)

गुप्तलिपि

गुप्त अभिलेखों का संबंध लेखन कला तथा लिपि से इतना गंभीर है कि उनका अध्ययन नितांत आवश्यक है। भारत में संस्कृति के आरंभ से लिखने-पढ़ने का कार्य अवश्य होता रहा। लेखनकला के कारण ही ज्ञान की स्थिरता मानी गई है। इस कारण लेखनकला के जन्मदाता को ईश्वरीय शक्ति से संपन्न मानते हैं। भारत की लिपि की उत्पत्ति ब्रह्मा से मानकर सारे मानसिक विकास हुए। उसी ब्राह्मी से गुप्तलिपि कालांतर में विकसित हुई। यों तो विश्व में आकृतियाँ द्वारा या चित्र द्वारा मनुष्य अपने विचारों को व्यक्त करता रहा (मिश्र, मेसोपोटामिया आदि देश में चित्रलिपि) परंतु भारत में ऐसे चिह्न नहीं मिलते। उच्चारण के लिए अक्षर चिह्न (प्रतीक) स्थिर किए गए जिनका विशिष्ट स्थान था। पाणिनि के व्याकरण का आरंभ इन्हीं स्थानों के वर्णन से होता है। कंठ के स्थानों से अक्षरों का घनिष्ठ संबंध है। लिपि की उत्पत्ति का इतिहास विस्तृत है जिसके विवेचन में जाना विषयांतर होगा। जिस लिपि से भारत की लिपियाँ विकसित हुई यानी ब्राह्मी (उस) का नाम जैनसाहित्य में **(समवायांग सूत्र) बम्भी ब्राह्मी)** उल्लिखित है। अशोक के समय में जिस ब्राह्मी लिपि का प्रयोग हुआ उसीका विकसित रूप गुप्तलिपि या अन्य लिपि मानी गई है। संक्षेप में यह मत व्यक्त करना अप्रासंगिक न होगा कि वैज्ञानिक रूप में ब्राह्मी के प्रत्येक अक्षर ध्वन्यात्मक चिह्न हैं। लिखने तथा बोलने में समता है। यानी जो कुछ लिखा जाता है उसीके समान उच्चारण भी करते हैं। ब्राह्मी भारत की राष्ट्रीय लिपि हैं जो ईसा पूर्व ५०० से ३०० ई० तक समान रूप में पाई जाती है। कालांतर में उसमें कील तथा न्यूनकोण का समावेश हुआ। गुप्तकाल की ब्राह्मी में परिवर्त्तन स्पष्ट हो जाता है। इसी को ध्यान में रखकर ब्राह्मी के दो उपविभाग किये गए हैं—

(१) उत्तर भारत की शैली।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

(२) दक्षिण भारत की शैली ।

डिरिंजर के मतानुसार अशोक कालीन ब्राह्मी में कालांतर में परिवर्त्तन आने लगा। इसी कारण उड़ीसा के हाथीगुंफा लेख तथा सातवाहन नरेशों के (नासिक) लेखों की लिपि में एक-रूपता नहीं है। गुप्तयुग से पूर्व में भी मथुरा का रंजुबल का अभिलेख तथा कुषाण प्रशस्तियों में समान अक्षर नहीं मिलते। प्रारंभिक अवस्था में ब्राह्मी में स्वर के चिह्न अक्षर के सिरे पर या नीचे लगाए जाते थे। विसर्ग का नाम न था। सर्वप्रथम नासिक लेख में इसका व्यवहार हुआ तथा गिरनार लेख में संयुक्त अक्षर का प्रयोग सुनिश्चित रूप से होने लगा। ब्राह्मी की गोलाई के भाग में परिवर्त्तन किया गया। ईसवी सन् से दीर्घ स्वर के लिए पृथक रूप सामने आया। दूसरी सदी से हलंत वाला अक्षर साधारण अक्षरों के नीचे (उसी सीध में नहीं) लिखा जाने लगा। अक्षरों की सिरो-रेखा गिरनार लेख (१५० ई०) में एक छोटी रेखा के रूप की दिखलाई पड़ती है जो कालांतर में लंबी लकीर बन गई और एक शब्द के लिए एक रेखा का रूप धारण कर लिया। अक्षरों के स्वरूप में भी परिवर्त्तन होने लगे।

चौथी शताब्दी से भारतीय लिपि में विशेष रूप से भिन्नता आ गई। तीसरी शदी तक ब्राह्मी में आमूल परिवर्त्तन नहीं दिखलाई पड़ता। अक्षरों के कुछ नए रूप आ जाने पर भी नामकरण में परिवर्त्तन न किया गया। किंतु चौथी शदी से छठी शदी तक नर्वदा के उत्तर में प्रचलित लिपि को 'गुप्तलिपि' की संज्ञा दी गई क्योंकि उस अवधि में गुप्त शासक राज्य करते रहे। समय तथा स्थान के कारण ब्राह्मी में विभेद आ गया। गुप्तलिपि का प्रयोग संस्कृत भाषा में सर्वत्र होने लगा। उदयगिरि (चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के लेख) की प्रशस्ति में जिह्वा-मूलीय तथा उपध्मानीय का सर्वप्रथम प्रयोग मिलता है। गुप्तलिपि के अध्ययन के फलस्वरूप दो उपविभाग किये गये है।

(१) पश्चिम ढंग के अक्षर (जिसमें कोई नया रूप नहीं है)—प्रथम कुमारगुप्त के भिलसद (एटा जिला) लेख की लिपि पश्चिमी उपविभाग की प्रतिनिधि मानी गई है। इसमें स्वर के चिह्न स्पष्ट हैं।

(२) पूर्वी शैली—इस लिपि में, ल, स, ह, तथा म अक्षरों का नया रूप दृष्टिगोचर होता है। प्रयाग का स्तंभलेख इसका प्रतिनिधित्व करता है। ई के लिए दो बिंदु तथा सामने लंबवत् रेखा का प्रयोग (:।) मिलता है। सभी अक्षरों में कोण तथा सिरे पर रेखा का समावेश गुप्तलिपि में किया गया है। इसी को सिद्धमातृका के नाम से पुकारते हैं। गुप्तलिपि के कुछ अक्षरों की विशेषता निम्नलिखित है—

(१) गुप्तलिपि के कुछ अक्षरों में दाहिनी तरफ इतना विस्तार हुआ कि उनका दूना कद हो गया। उन अक्षरों में अ, ग, ड, त, भ को गिना जाता है।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

(२) उस युग के छ, प, फ, श एवं स अक्षरों के अंतिम छोर पर न्यूनकोण का सृजन हो गया था जिससे लंबवत् वृद्धि हो गई।

(३) स्वर में आ का चिह्न लंबवत् भाग के अंत में जोड़ दिया गया है।

(४) गुप्तकाल में दो प्रकार ई का चिह्न प्रकट हुआ—लंबवत् रेखा तथा दो बिंदु। दूसरे प्रकार में इसका ठीक उलटा रूप प्रकट हुआ ।: तथा :।

(५) अक्षर ज में मध्य की रेखा छठी शदी तक ऊपर टेढ़ी लकीर बन जाती है।

(६) ए का विशिष्ट रूप इस युग में विकसित हुआ। चतुर्भुज की ऊपरी रेखा दोनों पार्श्व में टेढ़ी हो जाती है।

(७) ब्राह्मी में थ अक्षर को केंद्र बिंदु सहित वृत्त से प्रकट करते थे। किंतु गुप्तलिपि में वृत्त के परिधि को स्पर्श करती एक सीधी रेखा बन जाती है।

(८) य का विशिष्ट रूप सामने आता है।

(९) इ तथा ई का नया रूप प्रकट होता है। सिरे पर बिच्छु के डंक का रूप लुप्त हो गया।

(१०) उ मात्रा को कई प्रकार से दिखलाया गया है। प्रयाग प्रशस्ति में अक्षर के नीचे बाईं ओर वक्ररेखा से व्यक्त किया है। ग, त तथा भ अक्षरों में दाहिनी ओर मुड़ा है। प, म तथा व में अक्षरों के नीचे दाहिनी तरफ एक छोटी रेखा से व्यक्त किया गया है। बड़ी ऊ की भी यही दशा है।

(११) रेफ का छोटा (अर्द्ध) रूप अक्षरों के सिरे पर दृष्टिगत होने लगा।

(१२) पांचवी शदी से गुप्तयुग में म, ल, ह, स तथा भ का पश्चिमी तथा पूर्वी स्वरूप स्पष्ट हो गया।

इसके नामकरण में विद्वानों में मतभेद हुआ कि पूर्वी, पश्चिमी या उत्तर अथवा दक्षिणी प्रकार से नामकरण किया जाय। परंतु यह नामकरण कसौटी पर नहीं उतरते। उदयगिरि गुहालेख में पूर्वी प्रकार तथा सांची लेख में पश्चिमी प्रकार के अक्षर दीख पड़ते हैं। इसका मुख्य कारण यह था कि संग तराश पाटलिपुत्र से वहाँ गए थे अतएव उत्तरी प्रकार के अक्षरों को भी अंकित किया। अतः उत्तरी गुप्त अक्षरों का पहुँचना स्वाभाविक है। वाकाटक रानी प्रभावती गुप्ता से पूंना ताम्रपत्र लेख की भी यही दशा है। पूर्वी प्रकार के गुप्त अक्षरों का उसमें समावेश स्पष्ट है। संभवतः पूर्वी भारत से संग तराश वहाँ गए। अतएव उन अक्षरों का स्वरूप दीख पड़ता है। वहाँ भी शनैः शनैः गुप्त राज्य के पश्चिमी भाग में लोप हो गए। इसी कारण अक्षरों में विभेद दृष्टिगत होता है।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

कुटिल लिपि

गुप्तयुग के पश्चात् छठी शदी तक गुप्त-ब्राह्मी में अधिक भिन्नता उत्तरी भारत के लिपि में दिखलाई पड़ने लगी। गुप्तलिपि के प्रत्येक अक्षर में नीचे की ओर खड़ी रेखाएं बाईं ओर लंबी हो गई। इस लिपि को 'कुटिल' का नाम दिया गया। यह शब्द लेख में **'कुटिलाक्षराणि'** कहा गया है। विक्रमांकदेव चरित में **'कुटिलिपि'** शब्द उल्लिखित है। कालांतर में इसे **'विकटाक्षरा'** भी कहने लगे। पिछले गुप्तनरेश आदित्यसेन के अफसद लेख (गया जिला) तथा विष्णुगुप्त का मंगरांव (शाहाबाद जिला) लेख में इसी लिपि का प्रयोग किया गया है। उत्तरप्रदेश, बिहार तथा राजस्थान के लेख इस लिपि में खुदे हैं। इसी को नागरी अक्षर का पूर्वरूप मान सकते हैं। नागरी इसी से विकसित हुई।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

अध्याय ९

गुप्त-अभिलेखों में तिथि-गणना

तिथि-अंकन

भारतीय इतिहास के समालोचक सदा इस विषय का उल्लेख करते हैं कि प्राचीन लेखकों ने इतिहास लिखते समय तिथि का अंकन आवश्यक नहीं समझा। इससे उनकी ऐतिहासिक जिज्ञासा परिलक्षित नहीं होती। ऐसे विवरण उपस्थित करने का कारण यह था कि आलोचकों ने साहित्य को छोड़कर अभिलेखों का समुचित अध्ययन नहीं किया था, जिनमें ज्ञानराशि भरी पड़ी है। अशोक के धर्मशासन का अध्ययन किसी परिणाम पर नहीं ले जाता; किंतु मध्यकालीन लेखों में अपरिमित सामग्री भरी पड़ी है। साधारणतः; गुप्तयुग ईसवी-सन् चौथी शदी से पूर्व के अभिलेख धार्मिक भावना से ओतप्रोत हैं। कलिंगराजा खारबेल तथा महाक्षत्रप रुद्रदामन् के जूनागढ़ के लेख प्रशस्ति की श्रेणी में रखे जा सकते हैं। इन लेखों में तिथि के उल्लेख की एक विशेष रीति थी, जिसे 'राज्यवर्ष' कह सकते हैं। राजा के शासनकाल में अमुक समय यह घटना हुई या राज्यवर्ष की अमुक तिथि को शासक ने धार्मिक कार्य सम्पन्न किया, ऐसा उल्लेख ईसवी-सन् की दूसरी शदी तक के अभिलेखों में पाया जाता है। यद्यपि उस तरह के उद्धरणों से निश्चित शासनकाल का परिज्ञान नहीं होता, तथापि अन्य साधन भी सहायक हो जाते हैं, जिस आधार पर तिथियाँ स्थिर की जाती हैं। यदि नासिक-गुहा के अभिलेखों का अध्ययन किया जाय, तो स्पष्ट हो जाता है कि सातवाहन नरेश तथा मालवा एवं काठियावाड़ के क्षत्रप शासक समकालीन थे। सातवाहन-लेखों में गौतमीपुत्र शातकर्णी के १८वें या २४वें राज्यवर्ष का उल्लेख है। उसी नासिक-गुहा के अन्य लेखों में नहपान के ४२वें या ४६वें वर्ष की घटना का वर्णन किया गया है। अनुमानतः, शक-क्षत्रपों की तिथियों का संबंध शक-संवत् से था।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

नहपान तथा गौतमीपुत्र शातकर्णी की समकालीनता निश्चित कर विभिन्न राजाओं की तिथियां स्थिर की जाती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रचलित संवत् से तिथि का संबंध जोड़कर शासनकाल की समस्याओं को सुलझाया गया है।

अभिलेखों में वर्ष की समस्या के साथ मास तथा पाक्षिक तिथियों का उल्लेख भी एक विचारणीय प्रश्न है। पश्चिम भारत (मालवा, काठियावाड़ तथा महाराष्ट्र) के क्षत्रप तथा सातवाहन-लेखों में एक नये ढंग से तिथि का उल्लेख मिलता है, जिसे ऋतु-संबंधी तिथि कह सकते हैं। इसका एक मूल कारण यह था कि शक-संवत् से जुड़ी हुई तिथियाँ ऋतु-संबंधी थीं। चूंकि, क्षत्रप तथा दक्षिण के सातवाहन नरेशों के लेखों में शक-संवत् में तिथियाँ मिलती हैं, इसीलिए उनमें ऋतु का उल्लेख है। मास तथा पक्ष का विवरण नहीं पाया जाता। उदाहरण के लिए, नासिक के गुहालेखों में—(क) **गीम्हाणं पखे बितिये** (२); (ख) **वासान पखे ४ दिवसे पंचमे** और (ग) **हेमंत पखे ३ दिवसे १** का उल्लेख है, जिससे प्रकट होता है कि उन दिनों वर्ष को तीन प्रधान विभाग—ग्रीष्म, वर्षा तथा शीत में विभक्त किया गया था। प्रत्येक ऋतु चार मास की होती है तथा प्रत्येक मास में दो पक्ष होते हैं। इस प्रकार, हर एक ऋतु में आठ पक्ष हो जाते हैं। निश्चित समय बतलाने के लिए पक्ष की संख्या तथा तिथि से कार्य किया जाता था। **गीम्हाणं पखे वितिये** (ग्रीष्म के दूसरे पक्ष) से चैत्र शुक्लपक्ष का बोध होता है। **हेमंत पखे ३** से मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष का ज्ञान हो जाता है तथा **वासान पखे ४** से श्रावण शुक्लपक्ष की गणना की जाती है। सातवाहन-काल में इस प्रकार तिथि-गणना का प्रभाव कई शदियों तक दक्षिण में वर्त्तमान था। यही कारण था कि चौथी शदी के पल्लवनरेश शिवस्कंधवर्मन् के लेख में **गिम्हा पखो छठो दिवस पंचमि** का उल्लेख है, जिसका अर्थ होता है कि वह लेख वैशाख शुक्ल-पंचमी के अवसर पर अंकित किया गया था। चौथी शदी के इक्ष्वाकु नरेश विरूपाक्षदत्त के नागार्जुनी-लेख में भी प्राचीन ढंग की ऋतु तथा पक्ष का प्रयोग किया गया है। प्रायः ईसवी-पूर्व शदियों से दूसरी शदी तक ऋतु-संबंधी तिथि-गणना का अधिक प्रचार था। यद्यपि-उत्तर-पश्चिमी भारत में शक-संवत् का प्रचार था, तथापि यूनानी प्रभाव से भारत में मास एवं तिथि का उल्लेख प्रारंभ हो गया। शक-संवत् ५२ के रुद्रदामन् के अंडो-लेख (कच्छ) में **फगुण बहुलस द्वितिय वारे** का उल्लेख स्पष्ट प्रकट करता है कि मास नाम के साथ पक्ष एवं तिथि का अंकन भी होने लगा था।

गुदफर के तख्तेवहाई (शाहबाजगढ़ी)-लेख में **वैशखस मसस दिवसे प्रठमे बहुले पक्षे** (वैशाख कृष्णपक्ष-प्रतिपदा) का उल्लेख मिलता है। कलवान (तक्षशिला के समीप)-लेख में **श्रवणस मसस दिवसे त्रेविशे** (श्रावण मास २३) तथा आरा (अटक के समीप)-शिलालेख में **जेठस मासस दिवसे १** वाक्य उल्लिखित हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि उत्तर-पश्चिम भारत में यूनानियों ने मास एवं तिथि का प्रसार किया था। पटिक के तक्षशिला-ताम्रपत्र से यूनानी मास **पनेमस मसस** उल्लिखित है, जो भारतीय आषाढ से मिलता है। ईसवी-सन् १५० में लिखित रुद्रदामन् की जूनागढ़-प्रशस्ति में भी **मार्गशीर्ष बहुल प्रतिपद** द्वारा तिथि का उल्लेख मिलता है। कुषाणवंशी

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

मानिकियाला-शिलालेख में आषाढ (**अषड़स मसस**), जेदालेख में **कार्त्तिक** तथा **आरा-प्रशस्ति** में ज्येष्ठ मास (**जेठस मसस**) के नाम मिलते हैं। यहाँ तक कि रुद्रसिंह की गुंडा-प्रशस्ति में **वैशाख शुद्धे पंचमे पुण्य तिथौ** वाक्य भारतीय तिथि-गणना में आमूल परिवर्त्तन का द्योतक है (विस्तृत विवरण निमित्त देखिए—प्रा० भा० अ०, पृ० १७५-७)।

चौथी शदी से उत्तर भारत में गुप्तशासन के प्रारंभ हो जाने पर भारतीय तिथि-गणना में नई पद्धति का समावेश किया गया। इतना ही नहीं, दक्षिण या पश्चिम भारत में जहाँ गुप्त-प्रभाव विस्तृत हुआ, नई तिथि-गणना के प्रकार का अनुकरण किया गया। समस्त प्रशस्तियों के अनुशीलन से गुप्तयुग में 'वार' की गणना दो विभिन्न प्रणालियों से की जाती थी। पहली रीति में मास के तीस दिवस को पृथक्-पृथक् स्थानानुसार उल्लिखित किया जाता था, यानी कृष्ण या शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से क्रमशः अमा या पूर्णिमा तक का समावेश न था। उदाहरण के लिए, गुप्तनरेश द्वितीय चन्द्रगुप्त के साँची-लेख में **भाद्रपद दिवस ४** उल्लिखित है तथा प्रथम कुमारगुप्त के मंदसोर-लेख में **जेष्ठ मास दिवस १८** एवं दामोदरपुर (बंगाल) ताम्रपत्र में **फाल्गुन दिवस ७** अंकित है। बंगाल के दूसरे अभिलेखों में अन्यतम गुणैधर (वैन्यगुप्त)-लेख में **पौष मास २४ दिवसे** लिखा है। वैग्राम ताम्रपत्र में **माघ दिवस १९**, फरीदपुर-ताम्रपत्र में **वैशाख दिवस ५** तथा खोह से प्राप्त ताम्रपत्र में **चैत्र दिवस २८** का उल्लेख है। कहने का तात्पर्य यह है कि पक्ष का नाम (बहुल अथवा शुक्ल) न लिखकर एक से तीस तक दिवस की संख्या लिख दी जाती थी।

जैसे माघ का १९वाँ दिन या चैत का २८वाँ दिन कहने से एक निश्चित समय का ज्ञान हो जाता है। दिन की संख्या से ही मास का आरंभ, मध्य या उत्तर भाग का बोध हो जाता था। दूसरी प्रणाली अधिक वैज्ञानिक ढंग से काम में लाई गई। संभवतः, अधिक वैज्ञानिक स्वरूप का समावेश गुप्तयुग के गणित के विद्वानों द्वारा किया गया। मालवा के गंगधर-लेख में **शुक्ले त्रयोदश दिवसे—कार्त्तिक मासस्य** का उल्लेख घोषित करता है कि पांचवी शदी से मास के दो पक्षों की गणना आरंभ हो गई थी। एक पक्ष पंद्रह दिनों का होता था, ऐसा परिज्ञान लेखों के अध्ययन से हो जाता है। मंदसोर-शिलालेख में बंधुवर्मा के कार्यों का वर्णन करते हुए निम्नलिखित पंक्तियाँ भी मिलती हैं—

सहस्यमासशुक्लस्य प्रशस्तेऽह्नि त्रयोदशे।
मङ्गलाचारविधिना प्रासादोऽयं निवेशितः॥

इसी प्रकार, मध्यप्रदेश के जबलपुर-ताम्रपत्र में महाराज हस्तिन् ने **फाल्गुन मास शुक्लपक्ष पञ्चम्यां** तिथि पर दान किया था, ऐसा वर्णन आया है। मध्यभारत में भी पूर्ण वैज्ञानिक तिथि-गणना काम में लाई जाती थी। बुधगुप्त के एरण-प्रस्तर-स्तंभ-प्रशस्ति में **आषाढ मास शुक्ल**

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

द्वादश्यां तिथि का उल्लेख किया गया है। खोह (मध्यभारत) से जितने ताम्रपत्र उपलब्ध हुए हैं, उनमें मास, पक्ष तथा १ से १५ तिथियों तक का विवरण है। संक्षोभ्य के ताम्रपत्र में **चैत्रमास शुक्लपक्ष त्रयोदश** उल्लिखित है। यह कहा जा चुका है कि गुप्तशासन द्वारा प्रभावित क्षेत्र में भी इसी रीति की तिथि-गणना प्रयुक्त होती रही। द्वितीय चंद्रगुप्त की पुत्री प्रभावती गुप्त का विवाह दक्षिण के वाकाटक नरेश से हुआ था और वहाँ के शासन में गुप्तनरेश का भी हाथ था। इसीलिए, वाकाटक-राजा प्रवरसेन के लेख में **कार्तिक मास शुक्लपक्ष** १२ तथा **जेष्ठ मास शुक्ल पक्ष** १३ तिथियों का उल्लेख है। पश्चिम भारत के वलभी-नरेश गुप्त-शासक के अधीन तो न रहे, परंतु काठियावाड़ में गुप्त-संवत् का प्रयोग होता रहा। अलबेरूनी ने उसे भ्रमवश 'वलभी-संवत्' लिखा है। गुप्त-संवत् के प्रयोग से वैज्ञानिक तिथि-गणना का भी प्रचार काठियावाड़ में हो गया और इस कारण से वलभी-नरेश द्रोणसिंह के अभिलेख में **श्रावण शुदि** १०• की तिथि उल्लिखित है। इसी वंश के राजा विंध्यशक्ति के वसिम-लेख में प्राचीन रीति का प्रयोग मिलता है। **हेमंत पक्खं पढ़य दिवस पथम से पौष कृष्ण-प्रतिपदा** का बोध होता था। तात्पर्य यह है कि प्रारंभिक अवस्था में दक्षिण भारत में सातवाहन एवं पल्लवनरेश की प्रशस्तियों में जो प्राचीन रीति प्रचलित थी, वह गुप्त-प्रभाव से लुप्त हो गई। वाकाटक का अभिलेख इसका उदाहरण है। इसी प्रकार, वलभी-नरेश के लेखों से गुप्त-संवत् के प्रचार से वैज्ञानिक तिथि-गणना के समावेश का परिज्ञान हो जाता है।

अभिलेखों का सर्वेक्षण यह बतलाता है कि शक-संवत् से संबद्ध लेखों में ऋतु-संबंधी तिथि-गणना का आरंभ हुआ; परंतु यूनानी प्रभाव से वह प्रयोग में न आ सका। गुप्तों के अभ्युदय से वैज्ञानिक रीति का समावेश होने लगा। पहली प्रणाली, यानी पक्षरहित तिथि (एक से तीस तक का प्रचार) का स्थान दूसरी पूर्ण वैज्ञानिक रीति ने ले लिया। मास नाम के साथ तिथि-संख्या का त्याग कर पक्ष एवं उसकी तिथि (प्रतिपदा से अमा या पूर्णिमा) का उल्लेख सर्वत्र दिखलाई पड़ता है।

मध्ययुग के दानपत्रों में इसी वैज्ञानिक रीति का उपयोग किया गया। गहड़वाल-राजा के दानपत्र में पितृश्राद्ध के अवसर दान का वर्णन है, जिसकी तिथि **आश्विनमासे कृष्णपक्षे १५, पितुः सांवत्सरिक श्राद्धे** का उल्लेख है। परमार तथा कलचुरी-दानपत्रों में इसी तरह तिथि-गणना (**ज्येष्ठमासे कृष्णपक्षे १५ तिथौ**) मिलती है। पुण्य उत्सव की तिथियाँ भी उसी शैली में उल्लिखित हैं। अक्षय तृतीया (वैशाख शुक्ल ३), देवोत्थान एकादशी (कार्त्तिक शुक्ल ११), रथसप्तमी या महासप्तमी (माघ शुक्ल ७) आदि अवसरों का वितरण प्रशस्तियों में आता है। **भाद्रपद मासि शुक्लपक्षे तृतीयायां तिथौ** का उल्लेख दान के संबंध में किया गया है। अतः, संक्षेप में यह कहना उचित होगा कि स्वर्णयुग (गुप्तकाल) तथा उत्तर-गुप्त से भारत में तिथि-गणना पूर्ण वैज्ञानिक रीति से होने लगी थी।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

गुप्त-संवत्

भारतीय ऐतिहासिक गवेषणा में विद्वानों को अमुक राजा वा राजवंश के काल-निर्णय में अत्यंत कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। कब और कहाँ आदि प्रश्न ऐतिहासिक परिशीलन में प्रायः पूछे जाते हैं। भारत के भिन्न-भिन्न प्रांतों में पूर्वकाल में अनेक संवत् प्रचलित हुए थे, जिन्हें विभिन्न समयों पर पृथक् पृथक् राजाओं ने स्थापित किया था। इन संवतों के आधार पर भारत का तिथि-क्रमयुक्त शृङ्खला-बद्ध इतिहास लिखने में बड़ी सहायता मिली है। ईसा की चौथी से छठी शताब्दी तक गुप्त इतिहास की घटनाएँ काल क्रमानुसार निबद्ध करने में विद्वानों को कठिनाइयों की संभावना थी, परंतु गुप्तलेखों में 'गुप्तकाल' और गुप्तवंश की राज-परंपरा का स्पष्ट उल्लेख मिलता है जिससे काल-निर्णय में सरलता हो जाती है। अतएव गुप्तकाल की प्रारंभिक तिथि (गुप्त-संवत् में) को निर्धारित करना समुचित प्रतीत होता है। यह संवत् (गुप्त-संवत्) किस राजा ने चलाया, इस विषय में लिखित प्रमाण अब तक नहीं मिला है।

प्रायः समस्त गुप्तलेखों में एक प्रकार की तिथि का उल्लेख मिलता है जिससे अमुक राजा की शासन-अवधि स्थिर की जाती है। सब तिथियों के अनुशीलन से यह प्रकट होता है कि तिथि का क्रम शनैः शनैः एक शासक से उसके उत्तराधिकारी के लेख में बढ़ता जाता है। गुप्त-सम्राट् द्वितीय चंद्रगुप्त के लेखों में ८८ या ९३ आदि तिथि उल्लिखित हैं,[1] तो उसके पुत्र प्रथम कुमारगुप्त की प्रशस्तियों में ९६, ९८, ११७, १२९ आदि तिथियाँ मिलती हैं।[2] इन अंकों से यह तात्पर्य नहीं निकाला जा सकता कि द्वितीय चंद्रगुप्त ने ९३ वर्ष तक शासन किया तथा प्रथम कुमार १२९ वर्ष तक राज्य करता रहा। यदि इन अंकों पर विचार किया जाय तो ज्ञात होता है कि गुप्तसम्राट् किसी अमुक समय से काल-गणना करते थे। ये अंक यही सूचित करते हैं कि गुप्तनरेश ९३वें वर्ष तथा १२९वें वर्ष में शासन करते थे। अतएव उस समय को निश्चित करना परमावश्यक प्रतीत होता है।

गुप्त-संवत् का नामोल्लेख

कतिपय लेखों तथा ग्यारहवीं शताब्दी के मुसलमान इतिहासज्ञ अलबेरूनी के वर्णन से स्पष्ट पता चलता है कि गुप्तों के नाम से किसी समय की गणना होती थी; जिसे 'गुप्त-काल' या 'गुप्त-संवत्' कहते हैं। इस कारण यह प्रतीत होता है कि लेखों की समस्त तिथियाँ इसी गुप्त-संवत् में दी गई हैं। गुप्तसम्राट् स्कंदगुप्त के जूनागढ़ लेख में स्पष्ट रीति से उल्लेख मिलता है कि इस प्रशस्ति की तिथि 'गुप्तकाल' (गुप्त-संवत्) में दी गई है :—

---

१ श्री चंद्रगुप्त राज्य संवत्सरे ८८ (का० इ० इ०, भा० ३, नं० ५, ७)

२ 'श्री कुमारगुप्तस्य अभिवर्वमान विजयराज्ये संवत्सरे पणवते' (वहीं, नं० ८, १०, ११)

नोट—इसके विवरण में—गु० स०—गुप्त संवत्, श० का०—शक काल, मा० स०—मालव संवत्, वि०—विक्रमी तथा श०—शक के लिए प्रयोग किया गया है।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

संवत्सराणामधिके शते तु त्रिशद्भिरन्यैरपि षड्भिरेव ।
रात्रौ दिने प्रौष्ठपदस्य षष्ठे गुप्तप्रकाले गणनां विधाय[१] ॥

गुप्त नरेश द्वितीय कुमारगुप्त तथा बुधगुप्त के सारनाथ वाले लेख में भी गुप्त-संवत् का नामोल्लेख मिलता है[२] :—

'वर्षे शते गुप्तानां सचतुः पंचाशदुत्तरे भूमिं ।
शासति कुमारगुप्ते मासे ज्येष्ठे द्वितीयाम्' ।
'गुप्तानां समतिक्रान्ते सप्तपंचाशदुत्तरे ।
शते समानां पृथिवीं बुधगुप्ते प्रशासति' ॥

ईसा की दसवीं शताब्दी के मोरवि ताम्रपत्र में भी तिथि का उल्लेख गुप्त-संवत् में पाया जाता है। उस ताम्रपत्र में 'गौप्ते' शब्द से स्पष्ट प्रकट होता है कि गुप्त लोगों की भी कुछ काल-गणना अवश्य थी[३] :—

'पञ्चाशीत्या युतेतीते समानां शतपञ्चके ।
गौप्ते ददावदो नृपः सोपरागेर्कमण्डले' ॥

गुप्त सम्राटों के सामंत परिव्राजक महाराजाओं के लेखों में तिथि का उल्लेख 'गुप्तनृप-राज्यभुक्तौ' के साथ मिलता है।[४] अतः यह ज्ञात होता है कि गुप्त-संवत् की अवश्य ही स्थिति थी जिस समय से गुप्तों की काल-गणना प्रारंभ हुई।

अलबेरूनी का कथन

ग्यारहवीं शताब्दी में महमूद गजनबी के साथ मुसलमान इतिहासज्ञ अलबेरूनी भारत में आया था। उसने भारत के अनेक विषयों का वर्णन अपनी पुस्तक में किया है। भारतीय संवतों की वार्त्ता को उसने अछूता नहीं छोड़ा परंतु अक्षरशः उसके वर्णन को सत्य नहीं माना जा सकता। अलबेरूनी ने गुप्त-संवत् के बारे में भिन्न विवरण दिया है—'लोग कहते हैं कि गुप्त शक्तिशाली तथा क्रूर नरेश थे। जब उस वंश की समाप्ति हुई उसी समय से इस संवत् की गणना होने लगी। यह ज्ञात होता है कि बलभ उनका अंतिम राजा था, क्योंकि बलभी-संवत् के समान गुप्तकाल की गणना शककाल के २४१ वर्ष बाद प्रारंभ होती है'।[५]

---

१ गु० ले०, नं० १४
२ आ० स० रि०, १९१४–१५
३ गु० ले०, भूमिका ९७। इस ताम्रपत्र के गौप्ते की समता फ्लीट किसी ग्राम से बतलाते हैं, परंतु यह निर्विवाद है कि इसका संबंध गुप्त लोगों से है। (कलेक्टेड वर्क्स आफ, सर भण्डारकर, भा० ३, पृ० ३९३–४)
४ गु० ले०, नं० २२, २३, २५ आदि।
५ As regards the Gupta Kala, people say that the Guptas were wicked powerful people and that when they ceased to exist this date was used

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

अब विचारणीय प्रश्न यह है कि जिस गुप्तकाल या गुप्त-संवत् का उल्लेख किया गया है, वह किस समय चलाया गया तथा इसके प्रतिष्ठाता कौन थे ? इस संवत् का समय निर्धारित करने में अलबेरूनी से बहुत सहायता मिलती है।

अनेक संवतों की समानता दिखलाते हुए अलबेरूनी ने (१) १०८८ विक्रम संवत् (२) ९५३ शक शंवत् (काल) (३) ७१२ वलभ काल=(गुप्त काल) का उल्लेख किया है; जिससे उसके कथन की पुष्टि होती है कि गु० स० श० का० से २४१ वर्ष बाद प्रारंभ हुआ। अलबेरूनी के इन संवतों की तिथि ठीक है, परंतु उसके समस्त वर्णन जनश्रुति के आधार पर लिखे गये हैं। उसके कथन से ज्ञात होता है कि गुप्त-संवत् उस वंश के नष्ट होने पर प्रारंभ हुआ। वलभ, जो वलभी नगर (सौराष्ट्र में स्थित) का शासक था, उस वंश का अंतिम नरेश था। वलभी संवत् उसीके नाम से प्रारंभ हुआ। जैसा ऊपर कहा गया है, समस्त विवरण जनश्रुति के कारण अविश्वसनीय है। उसकी अप्रामाणिकता के लिए अन्य प्रमाण भी दिये जा सकते हैं। अलबेरूनी लिखता है कि शककाल विक्रमादित्य द्वारा शक-पराजय के समय से प्रारंभ हुआ;[१] परंतु चालुक्य-प्रशस्तिकार रविकीर्ति ने शक-संवत् का आरंभ शक राजा के सिंहासनारूढ़ होने के समय से बतलाया है;[२] जो वस्तुतः ठीक सिद्धांत है। इसी प्रकार गुप्तों के विषय में भी उस इतिहासज्ञ ने असत्य बातें लिख डाली हैं। यदि वलभी लेखों पर ध्यान दिया जाय तो अलबेरूनी का कथन सर्वथा ग्राह्य नहीं हैं।

वलभी में मैत्रकों के सेनापति भट्टारक ने स्वतंत्र राज्य स्थापित किया। उसके तीसरे पुत्र ध्रुवसेन प्रथम के एक लेख में २०६ तिथि का उल्लेख मिलता है[३]। यदि वलभी राज्य स्थापन के अवसर पर वलभी-संवत् का आरंभ हुआ, तो यह कभी भी माना नहीं जा सकता कि वलभी वंश के संस्थापक (भट्टारक) के २०६ वर्ष पश्चात् उसका पुत्र (ध्रुवसेन प्रथम) शासक हुआ। अतएव इस तिथि का वलभी-संवत् से कुछ भी संबंध प्रकट नहीं होता। ऐसी परिस्थिति में वलभी राज्य में किसी अन्य संवत् का प्रचार मानना आवश्यक है जिसमें उस वंश की तिथियाँ मिलती हैं। ऐतिहासिक पण्डितों ने वलभी लेखों की तिथियों का संबंध गुप्त-संवत् से बतलाया है।

---

as the epoch of an Era. It seems that Valabha was the last of them, because the epoch of the era of the Guptas falls, like that of the Valabha era, 241 years later than the Saka Kala.

—अलबेरूनी इंडिया, भा० २, पृ० ७

१ अलबेरूनी इंडिया, भा० २, पृ०, ६

२ पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चसतासु च।
समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम्।—अइहोल का लेख—शक संवत् ५५६
(ए० इ०, भा० ६, पृ० १)

३ इ० हि० क्वा०, भा० ४, पृ० ४६०

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

इस विवाद के परिणाम-स्वरूप यह कहा जा सकता है कि गुप्तों के अधीनस्थ मैत्रकों ने स्वतंत्र होने के समय से वलभी में प्रचलित गुप्त-संवत् को वलभी-संवत् का नाम दे दिया। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि वलभी-संवत् नाम की कोई स्वतंत्र गणना नहीं थी; परंतु यह गुप्त-संवत् का दूसरा नाम है। इस आधार पर अलबेरूनी का वर्णन अग्राह्य हो जाता है, केवल तिथि का उल्लेख प्रमाणयुक्त है। उसके कथनानुसार गुप्त-संवत् भी शककाल से २४१ वर्ष बाद प्रारंभ हुआ जो अन्य प्रमाणों से भी सिद्ध है। कुछ जैन ग्रंथों से भी इसकी पुष्टि होती है कि गुप्त-संवत् शककाल से २४१ वर्ष के पश्चात् आरंभ हुआ।

जैनग्रंथों के आधार पर गु० स० तथा श० का० में २४१ वर्ष का अंतर

अलबेरूनी से पूर्व शताब्दियों में कुछ जैन ग्रंथकारों के आधार पर यह ज्ञात होता है कि गुप्त तथा शककाल में २४१ वर्ष का अंतर है। प्रथम लेखक जीनसेन, जो आठवीं शताब्दी में वर्त्तमान थे उन्होंने वर्णन किया है कि भगवान् महावीर के निर्माण के ६०५ वर्ष ५ माह के पश्चात् शक राजा का जन्म हुआ तथा शोंक के अनंतर गुप्तों के २३१ वर्ष शासन के बाद कल्किराज का जन्म हुआ।[1] द्वितीय ग्रंथकार गुणभद्र ने उत्तरपुराण (८९८ ई०) में लिखा है कि महावीर के निर्माण के १००० वर्ष बाद कल्किराज पैदा हुआ।[2] जीनसेन तथा गुणभद्र के कथन का समर्थन तीसरे जैन लेखक नेमिचंद्र करते हैं।[3]

---

१ गुप्तानां च शतद्वयम्
एक त्रिंशच्च वर्षाणि कालविद्भिरुदाहृतम्।
द्विचत्वारिंशदेवातः कल्किराजस्य राजता।
ततोऽजितंजयो राजा स्यादिन्द्रपुरसंस्थितः।
वर्षाणि षट्शतीं त्यक्त्वा पञ्चाग्रां मासपञ्चकम्।
मुक्तिं गते महावीरे शकराज ततोऽभवत्।—जीनसेन कृत हरिवंश, अध्याय ६०

२ इ० ए०, भा० १५, पृ० १४३।

३ नेमिचंद्र की तिथि दशवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मानी जाती है। एक लेख के आधार पर नेमिचंद्र चामुण्डराय का राजकवि ज्ञात होता है—
त्रिलोकसारप्रमुखप्रबन्धान्।
(विरच्य सर्वान्) भुवि नेमिचंद्रः
विभाति सैद्धांतिकसार्वभौम।
चामुण्डरायार्चितपादपद्मः—(नागर लेख, इ० का० भा० ८)

यह (चामुण्डराय) गंग राजा रासमल्ल चतुर्थ का ई० सन् ९७७ के लगभग मंत्री था जो श्रवण-वेलगोला की प्रशस्ति से पता चलता है (राइस—वेलगोला का लेख, भूमिका पृ० ३४)। इसी आधार पर नेमिचंद्र की तिथि निश्चित की गई है।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

विक्रम तथा शक काल का संबंध

नेमिचंद्र त्रिलोकसार में लिखते हैं कि शकराज महावीर के निर्वाण के ६०५ वर्ष ५ माह के बाद तथा शककाल के ३९४ वर्ष ७ माह के पश्चात् कल्किराज पैदा हुआ।[1]

इनके योग से—वर्ष	माह
६०५	५
३९४	७
१०००	

वर्ष होते हैं। इन तीनों जैन ग्रंथकारों के कथनानुसार शक काल तथा कल्किराज का जन्म निश्चित हो जाता है। इस शक काल की तिथि को विक्रम संवत् में परिवर्तन करने से शक, विक्रम तथा ई० स० में समता विदित है जिसकी वजह से गुप्त काल को निश्चित करने में सरलता हो जाती है। ज्योतिषसार के आधार पर यह ज्ञात है कि शक काल में १३५ जोड़ने से वह तिथि विक्रम संवत् में परिवर्तित हो जाती है।[2] शक काल के ३९४ वर्ष पश्चात् कल्किराज पैदा हुआ जो ५२९ विक्रम (३९४ + १३५) होता है।[3] गुप्त सम्राट् प्रथम कुमार गुप्त के मंदसोर के लेख में दूसरी तिथि ५२९ मालव-संवत् का उल्लेख है।[4] मंदसोर लेख की पहली तिथि ४२९ वि० दूसरी तिथि से ३६ वर्ष पूर्व है। अतएव प्रथम कुमारगुप्त शक ३५८ (४९३-१३५) में बंधु-वर्मा के साथ शासन करता था।[5]

शक तथा गुप्त काल का संबंध

गुणभद्र के कथनानुसार कल्किराज का शक ३९४ के पश्चात् माघ संवत्सर प्रारंभ होता है।[6] वराहमिहिर ने भी कुछ निम्नलिखित व्यतीत शक संवत्सरों का वर्णन किया है[7] :—

१ पण छस्सय वसं पणमास जुदं गमिय वीरणि बुइदो सगराजो सो कल्किचदुक वतिय महिय ससमासं (त्रिलोकसार पृ० ३२)।

२ स एक पञ्जाग्निकुभियुक्तः स्याद्विक्रमस्य हि रेवाया उत्तरे तीरे संवन्नाम्नातिविश्रुतः (ज्योतिषसार)।

३ साधारणतया यह सर्व प्रसिद्ध है कि शक काल में ७८ जोड़ने से ई० स० तथा ई० सन् में ५७ जोड़ने पर विक्रम संवत् बनता है ३९४ + ७८ + ५७ = ५२९

४ वत्सरशतेषु पंचसु विशंत्यधिकेषु नवसु चाब्देषु यातेष्वाभिरम्य तपस्यमासशुक्ल-द्वितीयायाम् (गु० ले०, न० १८)।

इस आधार पर मालवा तथा विक्रम संवत् में समानता स्थापित होती हैं। (इसा पूर्व ५७)

५ मालवानां गणस्थितत्या याते शतचतुष्टये।
त्रिनवत्यधिकेब्दानां रितौ सेव्य घनस्वने।
सहस्यमासशुक्लस्य प्रशस्तेह्नित्रयोदशी।—(गु० ले०, न० १८)।

६ चतर्मुखाह्वयः कल्कीराजोद्व जित भूतले।
ऊत्पत्स्येहं मघा संवत्सरयोगसमागमे।—(उत्तरपुराण ७६।३९६)।

७ फ्लीट—का० इ० इ०, भा० ३, पृ० १६१

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

शक	३९४	व्यतीत	माघ	संवत्सर
,,	३९५	,,	फाल्गुन	,,
,,	३९६	,,	चैत	,,
,,	३९७	,,	वैशाख	,,

शक ३९७ के वैशाख संवत्सर का उल्लेख परिव्राजक महाराज हस्तिन् के खोह लेख गु० स० १५६ में भी मिलता है।[1] इस आधार पर शक तथा गुप्तकाल में निम्नलिखित समता तैयार की जा सकती है :—

शक ३९४=माघ	संवत्सर	=	गुप्त-संवत्		१५३	व्यतीत
,, ३९५=फाल्गुन	,,	=	,,	,,	१५४	,,
,, ३९६=चैत	,,	=	,,	,,	१५५	,,
,, ३९७=वैशाख	,,	=	,,	,,	१५६	,,

इस समता से यह ज्ञात होता है कि गुप्त संवत् की तिथि में २४१ जोड़नेसे शककाल में परिवर्तन हो जाता है। इस विस्तृत विवेचन के कारण अलबेरूनी के कथन की सार्थकता ज्ञात हो जाती है। यह निश्चत हो गया है कि शक काल के २४१ वर्ष पश्चात् गुप्त संवत् का आरंभ हुआ।

फ्लीट का मत

गुप्त-संवत् तथा शक काल में २४१ वर्ष का अंतर स्थिर हो जाने पर, यह प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या शक काल के २४१ वें वर्ष या २४१ वर्ष व्यतीत होने पर गुप्त काल (संवत्) आरंभ हुआ ? फ्लीट महोदय का मत है कि गुप्त-संवत् शक काल के २४१ वें वर्ष में आरंभ हुआ। उनके कथनानुसार दोनों संवतों में २४२ वर्ष का अंतर पड़ता है।[2] उदाहरणार्थ उसने बुधगुप्त के एरण स्तंभ लेख[3] की तिथि गु० स० १६५ शक काल ४०७ (१६५+२४२) से समता बतलाई है। यदि वैज्ञानिक रूप से विचार किया जाय तो फ्लीट महोदय की धारणा सर्वथा निराधार प्रकट होती है।

मत का खंडन

जैन ग्रंथकार नेमिचन्द्र के कथनानुसार यह ज्ञात होता है कि शक-काल के ३९४ वर्ष ७ माह व्यतीत होने पर कल्किराज का जन्म हुआ। इसलिए यह कहा जा सकता है कि

---

१ शतपञ्चशतोत्तरेब्दे शते गुप्तनृपराज्यभुक्तौ महावैशाखसंवत्सरे कार्तिकमासशुक्लपक्षतृतीयाम्। (गु० लें०, नं० २१)।

२ फ्लीट—गु० लें०, भूमिका ८४

३ का० इ० इ०, भा० ३, नं० १९

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

३६५ वें वर्ष में ७ माह बीतने पर कल्किराज का जन्म हुआ। ऊपर तुलनात्मक प्रसंग में यह दिखलाया गया है कि—

शक ३९४ = माघ संवत्सर = गु० स० १५३ व्यतीत
,, ३६७ = ,, ,, १५६ ,,

अतएव शक काल तथा गु० स० में २४१ वर्ष का अंतर ज्ञात होता है, २४२ वर्ष का नहीं।

गु० स० = शक २४१
१ ,, ,, प्रचलित = ,, २४२ प्रचलित

लेखों का प्रमाण

इस उपरियुक्त कथन की पुष्टि लेखों से होती है। गुप्त लेखों में भी इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं। गुप्त राजा द्वितीय कुमारगुप्त के सारनाथ लेख की तिथि गु० स० १५४ मिलती है[1]; जो शक काल ३९५ व्यतीत (१५४ + २४१) में परिवर्तन हो सकती है। इसके अतिरिक्त बुधगुप्त के सरनाथ की प्रशस्ति में स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि गु० स० १५७ वर्ष व्यतीत होने पर राजा शासन करता था।[2] इस स्थान पर पूर्व समता को ध्यान में रखते तथा ज्योतिषसार के आधार पर एक नवीन तुलनात्मक वृत्त तैयार हो सकता है। यह निम्न प्रकार है :—

मालव संवत्	शक काल	गुप्त संवत्
५२९ व्यतीत	३६४ व्यतीत	१५३
५३० ,,	३९५ ,,	१५४
५३१ ,,	३९६ ,,	१५५
५३२ ,,	३९७ ,,	१५६
५३३ ,,	३९८ ,,	१५७ व्यतीत[3]

इस तुलना से यही परिणाम निकलता है कि शक काल तथा गुप्त संवत् में २४१ का ही अंतर है। इन प्रमाणों के आधार पर यह प्रकट होता है कि व्यतीत गुप्त-वर्ष संवत् में २४१ जोड़ने से व्यतीत शक काल तथा प्रचलित गु० स० में २४१ जोड़ने से प्रचलित शक काल में परिवर्तन

१ वर्ष शते गुप्तानां सचतुः पञ्चाशदुत्तरे भूमिम्। शासति कुमारगुप्ते मासे ज्येष्ठे द्वितीयायाम्

२ गुप्तानां समतिक्रान्ते सप्त पचाशदुत्तरे।
शते समानां पृथिवीं बुधगुप्ते प्रशासति।

३ बुधगुप्त के सारनाथ के लेख से स्पष्ट हो जाता है कि गुप्तों के १५७ वर्ष व्यतीत होने पर सप्तमी वैसाख में शासन करता था, या उस समय को प्रचलित १५८ वर्ष कह सकते हैं। इसी नरेश का दूसरा लेख (एरण) आठ वर्ष के बाद गु० स० १६५ का है (गु० ले०, नं० १९)। इसके वर्णन से ज्ञात होता है कि वह राजा गु० स० १६५ अषाढ़ १२ राज्य में राज करता था। इससे भी अषाढ़ मास में व्यतीत गु० स० १६५ यानी प्रचलित १६६ ज्ञात होता है।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

होता है।[१] अलबेरूनी ने दोनों संवतों का अंतर बतलाते हुए विक्रम, शक काल तथा वलभी (गुप्त) सवत् में तीन तीथियों का उल्लेख किया है।[२]

मालव स०	श० का०	वलभी (गु०) स०
१०८८	९५३	७१२

यदि उपरियुक्त तुलना पर ध्यान दिया जाय तो प्रकट होता है कि लेखों तथा अलबेरूनी कथित संख्या (२४१) का ही अंतर गु० स० तथा श० का० में पाया जाता है।

मालव-संवत्	शक काल	गुप्त संवत्
५२९	३९४	१५३
१०८८	९५३	७१२

वेरावल का लेख तथा वलभी व गुप्त संवत् की एकता

गुप्त लेख के अतिरिक्त बेरावल लेख के अध्ययन से भी गु० स० तथा श० का० के अंतर (२४१ वर्ष) पर प्रकाश पड़ता है। कर्नल टाड ने गुजरात के चालुक्य नरेश अर्जुनदेव के समय के लेख का वेरावल नामक स्थान से पता लगाया था।[३] इस लेख की विशेषता यह है कि इसमें चार संवतों की तिथि उल्लिखित है। प्रशस्तिकार ने विक्रम १३२०; वलभ ९४५; हिजरी ६६२ तथा सिंह संवत् १५१ तिथियों का उल्लेख किया है।[४] दीवान बहादुर पिलाई के गणनानुसार आषाढ़ बदी १२ रवि शककाल ११८६ तथा विक्रम १३२१ में पड़ता है।[५] लेखों में वर्ष तथा इस गणना में भिन्नता इसलिए होती है कि वेरावल के लेख में दक्षिण भारत की प्रणाली के अनुसार विक्रम १३२० तथा वलभी ९४५ कीर्तिकादि में उल्लिखित है। अतएव—

विक्रम	शक	वलभी
१३२१ =	११८६ =	९४५

इसमें से ७९२ घटाने पर

वि०	शक	वलभी
५२९ =	३९४ =	१५३

---

१ कलेक्टेड वर्क्स आफ सर भण्डारकर, भा० ३, पृ० ३८७

२ अलबेरूनी इंडिया, भा० २, पृ० ७

३ एनल्स आफ राजस्थान, भा० १, पृ० ७०५

४ श्रीनृपविक्रम १३२० तथा श्रीमद्वलभी सं० ९४५ तथा श्रीसिंह सं० १५१ वर्ष आषाढ़ बदी १२ रवि (इ० ए० भा० ११, पृ० २४२)।

५ इंडियन क्रानोलोजी टेबुल १० पृ० ९२

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

तथा इसमें से ३६ घटाने पर

वि०	श०	वलमी
४८३	३५८	११७

आता है। इस गणना में वलमी ११७ तथा गुप्त नरेश प्रथम कुमारगुप्त की करमदण्डा की प्रशस्ति की तिथि (गु० स० ११७) में समता है[1]। अतः ज्ञात होता है कि वलमी तथा गुप्त-संवत् में कोई विभिन्नता नहीं है। इस बेरावल लेख की समता में २४१ वर्ष का ही अन्तर है।

वि०	श०	वलमी
१३२१	११८६	९४५

तथा उपरियुक्त तुलना में

श०	मा० स०	वलमी (गु० स०)
३९४	५२९	१५३

जो ऊपर बतलाया गया है।

खैरा का ताम्रपत्र

खैरा ताम्रपत्र ऐसा अंतिम लेख है जिससे शक काल तथा गुप्त संवत् के अंतर (२४१) पर प्रकाश पड़ता है। इस लेख की तिथि वलमी संवत् ३३० मिलती है[2] जिसका उल्लेख निम्न-प्रकार है—

सं० ३०० ३० द्वि० मार्ग शर्ष शु० २

इस वलमी संवत् में २४१ जोड़ने से शक काल में परिवर्तन हो जाता है।

वलमी	शक
३३०	५७१

ज्योतिष-गणना के आधार पर शक ५७१ अधिक मार्गशीर्ष में पड़ेगा।[3] अतएव

वलमी	शक
३३० प्रचलित =	५७१ प्रचलित

के समान है। पूर्व तुलना से इस तिथि का स्थान निश्चित हो जाता है।

श०	मा० स०	गु० (वलमी) स०
३९४[4]	५२९[4]	१५३[4]
५७१[5]	७०६	३३०[5]
११८६[6]	१३२१[6]	९४५[6]

---

१ ए० इ०, भा० १०, पृ० ७०

२ गु० ले०, भूमिका, पृ० ९३

३ भंडारकर कामेमोरेशन भाल्युम, पृ० २०९

४ देखिए ऊपर की तिथि।

५ खैरा ताम्रपत्र की तिथि।

६ वेरावल लेख की तिथि।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

अतएव इन समस्त लेखों तथा अलबेरूनी के कथन के आधार पर यही निश्चित होता है कि गु० स० में २४१ जोड़ने पर श० का० बनता है। व्यतीत तथा प्रचलित में जोड़ने से क्रमशः व्यतीत तथा प्रचलित श० का० में परिवर्तन होता है।

चैत्रादि वर्ष का प्रचार

फ्लीट का मत था कि गु० स० श० का० के २४१ वर्ष बाद नहीं परंतु २४२ वर्ष प्रश्चात् प्रारंभ हुआ।[1] परंतु ऊपर कथित विस्तृत विवेचन के सम्मुख फ्लीट महोदय का मत स्वीकार नहीं किया जा सकता। फ्लीट ने डा० कीलहार्न के कथन का समर्थन करते हुए यह भूल की कि दक्षिण भारत की तरह उत्तरी भारत में भी मालव संवत् का प्रारंभ कार्तिक से हुआ[2] चैत्र से नहीं, इसको मान लिया। परंतु यदि गुप्त लेखों का अध्ययन किया जाय तो स्पष्ट प्रकट हो जाता है कि मालव संवत् चैत्र से प्रारंभ होता है।[3] द्वितीय कुमारगुप्त के सारनाथ के लेख से पता चलता है कि गु० स० १५४ व्यतीत यानी गु० स० १५५ के ज्येष्ठ द्वितीया को वह मूर्ति स्थापित की गई थी।[4] इसी प्रकार बुधगुप्त के सारनाथ तथा एरण के लेखों से भी यही बातें प्रकट होती हैं। इन लेखों में स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि राजा व्यतीत गु० स० १५७ तथा १६५ या प्रचलित १५८ वैशाख तथा प्रचलित १६६ आषाढ़ में शासन करता था। इतना ही नहीं, यशोधर्मन् के मंदसोर के लेख (मा० स० ५८६) में यह वर्णन मिलता है कि संवत् वसंत (चैत्र तथा वैशाख) से प्रारंभ होता है।[5] इन प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि गुप्तों के शासनकाल में मालव-संवत् चैत्र से प्रारंभ होता था, कार्तिक से नहीं। वेरावल लेख के आधार पं० गौरीशंकर ओझा ने दिखलाया है कि विक्रम संवत् चैत्रादि है। वेरावल लेख के अनुसार वि० स० तथा गु० स० का अंतर ३७५ (१३२०-९४५) आता है; परन्तु यह लेख काठियावाड़ में स्थित होने के कारण वि० स० कार्त्तिकादि है जो चैत्रादि १३२१ होता है। इस कारण वि० स० तथा गु० स० का अंतर ३७६ होगा।[6] गु० स० में ३७६ जोड़ने से चैत्रादि वि० स०, २४१ मिलाने से श० का० तथा ३१९-२० मिलाने से ई० स० होता है।

---

१ गु० ले०, भूमिका, पृ० ८४

२ इ० ए०, भा० २०, पृ० ३२; गु० ले०, भूमिका, पृ० ६६

३ भंडारकर कामेमोरेशन भाल्युम, पृ० २०७-८

४ आ० स० रि०, १९१३-४

५ पञ्चसु शतेषु शरदां यातेष्वेकान्ननवति सहितेषु। मालवगणस्थितिवशात् कालज्ञानायलिखितेषु॥
यस्मिन् काले कलमृदुगिरां कोकिलानां प्रलापा, भिन्दन्तीव स्मरशरनिभाः प्रोषितानां मनांसि।
भृङ्गालीनां ध्वनिरनुरतं भारमन्द्रश्च यस्मिन्, नाधूतज्यं धनुरिव नदच्छ्रु यते पुष्पकेतोः॥
प्रियतमकुपितानां रामयन्बद्धरागं किसलयमिव मुग्धं मानसं मानिनीनां।
उपनयति नभस्वान्मानभङ्गाय यस्मिन्, कुसुमसमयमासे तत्र निर्मापितोयम्॥
—(का० इ० इ०, भा० ३, नं० ३५)

६ प्राचीन भारतीय लिपिमाला, पृ० १७५

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

अंतिम परिणाम

गुप्त-संवत् पर इस विस्तृत विवरण से निम्न परिणाम निकलते हैं—

(१) मालव तथा शक संवत् चैत्र से प्रारंभ होता है।

(२) गुप्त तथा वलभी संवत् एक ही है। दोनों के भिन्न-भिन्न नाम होने के कारण समय में तनिक भी भिन्नता नहीं है।

(३) वलभी या गु० स० शक काल के २४१ वर्ष के पश्चात् आरंभ होता है। शक काल के व्यतीत तथा प्रचलित होने का निर्णय गु० स० पर अवलंबित है।

(४) गुप्त-संवत् भी चैत्र से प्रारंभ होता है। चैत्रादि होने के कारण गुप्त संवत् का ई० स० ३१८-१९ से गणनारंभ हुआ। इसका प्रारंभिक वर्ष ई० सन् ३१९-२० (७८+२४१) से लिया जायगा।

गु० स० ० व्यतीत = शक २४१ व्यतीत
" " १ प्रचलित = " २४२ प्रचलित

गुप्त-संवत् के संस्थापक

यदि समस्त संवतों के इतिहास पर ध्यान दिया जाय तो यह पता चलता है कि अमुक संवत् का प्रारंभ किसी काल विशेष से होता या उस वंश के किसी घटना के स्मारक में संवत्सर चलाया गया था। गुप्त-वंश में भी ऐसी ही घटना उपस्थित हुई जिस कारण से वंश नाम के साथ (गुप्त) संवत् का प्रयोग प्रारंभ हुआ। गुप्त-वंश के आदि दो नरेश—गुप्त तथा घटोत्कच का नाम इतिहास में प्रसिद्ध नहीं है। वे साधारण सामंत के रूप में शासन करते थे। गुप्तों के तीसरे राजा प्रथम चंद्रगुप्त ने अपने बाहुबल से राज्य का विस्तार किया तथा इसी ने सर्वप्रथम 'महाराजाधिराज' की पदवी धारण की। बहुत संभव है कि सिंहासनारूढ़ होने पर इसने यह पदवी धारण की तथा उसी के उपलक्ष में अपने वंश के नाम के साथ गुप्त-संवत् की स्थापना की। इसकी पुष्टि गुप्त लेखों में उल्लिखित तिथियों से भी होती है। प्रथम चंद्रगुप्त के पौत्र चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के लेखों में ८२,९३ की तिथियाँ मिलती हैं। इस आधार पर विद्वानों का अनुमान ठीक ज्ञात होता है कि प्रथम चंद्रगुप्त ही प्रतापी शासक था और उसी के राज्यारोहन पर संवत् चला। पितामह तथा पौत्र के बीच तीन पीढ़ियों में ९३ वर्ष का अंतर युक्ति-संगत मालूम पड़ता है। इस संवत् का प्रारंभ ई० स० ३१९-२० से होता है। फ्लीट व एलन के मतानुसार गुप्त संवत् अन्य संवतों की भाँति (राज्यवर्षों में गणना की परिपाटी से) बराबर प्रयोग होते रहने पर क्रम से प्रचलित हो गया; इससे अनुमान होता है कि प्रथम चंद्रगुप्त के प्रचलित किए हुए राज्य संवत् का प्रयोग उसके उत्तराधिकारी वंशधर करने लगे, जो आगे चलकर गुप्त संवत् के नाम से प्रसिद्ध हो गया। जो हो, परंतु यह निःसंदेह है कि गुप्त संवत् या गुप्त-काल नामक संवत्सर का प्रारंभ ई० स० ३१९-२० से हुआ। इसी में समस्त गुप्त लेखों तथा समकालीन प्रशस्तियों की तिथियाँ दी गई हैं। यह संवत् लगभग ६०० वर्ष तक प्रचलित रहा और गुप्तवंश के नष्ट हो जाने पर काठियावाड़ में वलभी संवत् के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

अध्याय १०

गुप्तकालीन लघु अभिलेख

मिट्टी की मुहरें

प्राचीन भारत के इतिहास में अभिलेखों के महत्व का मूल्यांकन करना कठिन है। इतिहास के प्रधान साधनों में लेखों की गणना प्रमुख रूप में की जाती है जिसका संक्षिप्त विवरण उपस्थित किया गया है। गुप्त अभिलेखों का अध्ययन उसकी महत्ता की अभिवृद्धि करता है। लेखों के अंकन करने के अनेक आधारों के अंतर्गत मिट्टी की मुहर (Terracotta Seals) अपना स्थान रखता है। कच्ची मिट्टी को लेकर उसे एक विशिष्ट आकार का बनाकर गहराई में लेख अंकित किए जाते थे। उसके साथ किसी प्रतीक को भी स्थान दिया जाता था। अक्षर चाकू के नोक से बनाए जाते थे। प्रतीक के लिए भी चाकू का प्रयोग होता रहा। इस प्रक्रिया के पश्चात् उसे आग में पका दिया जाता ताकि वह मुहर स्थायी रह सके। उसी से सदा कार्य लिया जाता और आवश्यकतानुसार स्थान विशेष पर निशान लगाया जाता। वही छाप मुहर बन जाता। ऐसे पकायी गई मुहरें पुरातत्व खनन से प्रकाश में आई हैं। गुप्तकालीन मुहरें अधिकतर वैशाली तथा नालंदा से उपलब्ध हुई हैं। वैशाली की मुहरों की विशिष्ठता है। यों तो मौर्य, शुंग तथा कुषाण कालीन मुहरें उपलब्ध हुई हैं किंतु गुप्त मुहरें अधिक संख्या में हैं तथा ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। एक ही खुदाई में गुप्तकालीन सतह से सत्तर की संख्या में निकली हैं। मुहरों की तिथि निश्चित करने के लिए तीन प्रकार के साक्ष्य हैं—

(१) खुदाई की सतह (Strata)।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

(२) अन्य पुरातत्व सामग्रियों (Antiquities—लघु मूर्ति एवं सिक्कों) से तुलनात्मक विश्लेषण।

(३) पुरालिपि का साक्ष्य (Palaeography)।

यद्यपि पुरातत्व संबंधी खनन से जमीन के परत का विशिष्ट अध्ययन किया जाता है और उस आधार पर कई निर्णय प्रस्तुत किए जाते हैं तोभी उसकी प्रमाणिकता संदेहरहित नहीं है। दूसरे साक्ष्य पर अधिक विश्वास किया जाता है। यदि मुहर के साथ मिट्टी की लघुमूर्ति (Figurine) प्राप्त होती है तो उसकी विशेषता के अनुशीलन से किसी निश्चित तिथि पर पहुँचते हैं। चूंकि एक ही परत में मुहर तथा लघुमूर्ति उपलब्ध हुई अतः मुहर की वही तिथि समझी जाती है जो लघुमूर्ति की होगी। मिट्टी परत (Strata) में गुप्तकालीन लघुमूर्तियाँ मुहर का तिथि काल निश्चित करती हैं। प्राचीन भारत में अमुक युग में विशेष प्रकार की लघुमूर्तियाँ बनती रहीं। अतएव मुहरों की तिथि निश्चित करना सरल हो जाता है। इसके अतिरिक्त सिक्कों की उपलब्धि भी (एक ही परत में) मुहरों की तिथि निर्णय करने में सहायक सिद्ध हुई हैं। तीसरा साक्ष्य पुरालिपि का है जिसको कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। प्रत्येक युग की पृथक-पृथक लिपि ज्ञात है। अतएव मुहरों पर खुदे लेख अक्षरों के सहारे विशिष्ट काल से संबंधित किए जाते हैं। गुप्तकालीन मुहरें गुप्तलिपि में खुदे हैं अतएव लिपि के अध्ययन से मुहरों का पढ़ना सुगम है। तिथियाँ भी स्वतः ज्ञात हो जाती है। इन विषयों के विश्लेषणात्मक अध्ययन से वैशाली तथा नालंदा की मुहरें गुप्तकालीन बतलाई गई हैं।

वैशाली की मुहरें

पुरालिपि के आधार पर यह कहा जाता है कि चौथी तथा पाँचवी शताब्दियों में गुप्त सम्राटों ने मुहरें तैयार कराई। वैशाली की मुहरों में गुप्त लिपि के पूर्वी प्रकार का (Eastern Variety of Gupta Script) प्रयोग किया गया है। ल, ष तथा ह विशिष्ट रूप से अंकित हैं। आ, ओ तथा औ मात्राओं के चिह्न वक्र रेखा के रूप में प्रदर्शित हैं। कुछ मुहरों में म अक्षर ग के सदृश प्रकट होता है।

जहाँ तक भाषा का प्रश्न है गुप्त मुहरें संस्कृत भाषा में अंकित हैं। कहीं प्राकृत मिश्रित संस्कृत का प्रयोग दीख पड़ता है। अधिक मुहरों पर सम्पूर्ण लेख पढ़ा नहीं गया। केवल राजा की पदवी सहित नाम उपलब्ध है जिसके सहारे गुप्तकालीन इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। वैशाली मुहरों पर **'कुमारामात्याधिकरण'** पदवी अधिकतर अंकित है। इसके साथ **'युवराजपदीय'** अथवा **'युवराज भट्टारक पदीय'** की पदवियाँ मिलती हैं।

इन पदवियों में युवराज शब्द साधारण अर्थ में राजकुमार के लिए प्रयुक्त है। इससे सिंहासन के उत्तराधिकारी का तात्पर्य नहीं माना जा सकता। इसके अतिरिक्त राज दरबार के

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

अनेक कर्मचारीगण तथा पदाधिकारियों की मुहरें प्राप्त हुई हैं। सेना अध्यक्ष, कोषाध्यक्ष, पुलिस का सर्वोच्च पदाधिकारी, राजप्रबंधक आदि अधिकारियों की मुहरें वैशाली की खदाई से मिली हैं। मंत्री तथा उपरिक कर्मचारी की मुहरें भी उपलब्ध हुई हैं।

सबसे अधिक संख्या में व्यापारी संस्थाओं—श्रेणी (निगम) की मुहरें यह प्रकट करती हैं कि व्यापार की वृद्धि में व्यापारियों के कार्य निर्विघ्न रूप से चलते रहे। वर्तमान चैम्बर आफ कामर्स के सदृश पाटलिपुत्र में संस्थाएँ कार्य कर रही थीं। निगम, श्रेष्ठिन (बैंक के अधिकारी) सार्थवाह (व्यवसायी) तथा कुलिक (सौदागर) के नाम से मुहरें प्रकाश में आई हैं।

मुहरों के अध्ययन से भौगोलिक बातों का परिज्ञान हो जाता है। उत्तरी बिहार के तिरहुत भूभाग का नाम 'तिरभुक्ति' के रूप में सामने आता है। वैशाली के नाम सहित मुहरें मिली हैं। विष्णुपद के स्वामी नारायन के लेख से गया के विष्णुपद मंदिर का अनुमान लगाया जाता है। इस प्रकार बिहार प्रदेश के बाहर भी भौगोलिक स्थानों के नाम मुहरों पर अंकित हैं।

जहाँ तक मुहरों पर प्रतीकों का प्रश्न है, उनपर बौद्धमत के प्रतीक का अभाव है। मानव के पाद-चिह्न को विष्णुपद मानना उचित होगा। उसे बुद्ध-पद नहीं माना जा सकता। प्रायः मुहरों पर अंकित प्रतीक किसी धर्म से संबंधित नहीं हैं। अधिक संख्या में ब्राह्मण मत के चिह्न दीख पड़ते हैं। कलस, त्रिशूल, चक्र, शंख एवं वेदि आदि ब्राह्मणधर्म के प्रतीक हैं। श्रेणियों की मुहरों पर अंकित चिह्न का अर्थ अज्ञात सा है। वामन की आकृति को कुबेर का नाम दिया जा सकता है। वैष्णवमत के प्रसिद्ध प्रतीक गजलक्ष्मी की आकृतियाँ भी दृष्टिगोचर होती हैं।

इस विवरण का सारांश यह है कि वैशाली की मुहरें गुप्त इतिहास निर्माण में सहायता करती है। उनके अध्ययन से राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक विषयों पर प्रकाश पड़ता है। सबसे प्रधान राजकीय मुहर गोविंदगुप्त की माता ध्रुवदेवी का है जो अभिलेखों में प्रथम कुमारगुप्त की माता कही गई हैं। अतएव द्वितीय चंद्रगुप्त के दो पुत्रों के नाम पृथक-पृथक मिलते हैं। मुहर तथा लेख का अध्ययन यह प्रकट करता है कि गोविंदगुप्त वैशाली का राज्यपाल रहा होगा। उसी प्रकार घटोत्कच का नाम यह बतलाया है कि घटोत्कच नाम के दो गुप्तनरेश थे। इस वंश का दूसरा महाराजा (श्रीगुप्त का पुत्र) घटोत्कच नाम से विख्यात था तथा प्रथम कुमारगुप्त के समय में भी इसी नाम का राजकुमार शासन करता रहा। वैशाली मुहरों का विश्लेषण यह प्रकट करता है कि वह स्थान राजनैतिक तथा महत्त्वपूर्ण व्यापारिक केंद्र था।

नालंदा की मुहरें

पटना जिले में नालंदा बौद्धों का प्रसिद्ध महाविहार था, जहाँ खुदाई से स्तूप, बिहार एवं हजारों मिट्टी की मुहरें प्रकाश में आई हैं। बौद्धमत से संबंधित होने के कारण मुहरों पर धर्मचक्र का प्रतीक स्वाभाविक है। कई मुहरें संघ के भिक्षुओं की हैं। इनकी बनावट साधारण रीति से

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

हुई थी। किंतु मिट्टी के दो टप्पे भी खुदाई से निकले हैं। उनके ऊपरी भाग में **धर्मचक्र के अतिरिक्त बौद्ध मंत्र (ओं धम्मा हेतु प्रभवा)** भी खुदा है। उस समय संस्कृत भाषा का बोलबाला था अतः मुहरों के लेख भी संस्कृत ही में है। मध्यकालीन नागरी अक्षरों का प्रयोग हुआ है। मिट्टी के मुहरों पर अक्षरों का सुंदर अंकन देखते बनता है जैसे किसी सुलेखक ने कागज पर लिखा हो। नालंदा वज्रयान का प्रसिद्ध केंद्र था, अतएव वज्रयान संबंधी देव आकृतियाँ तथा चिह्न मिलते हैं।

नालंदा से प्राप्त गुप्तकालीन लघुलेख वैशाली की मुहरों से आकार में बड़े हैं। गुप्तकालीन छब्बीस मुहरें नालंदा से प्राप्त हुई हैं जिनमें अधिकतर क्षतिग्रस्त हैं। ऊपरी भाग में लेख अंडाकार खुदे हैं। चारों तरफ एक पतली लकीर बनी है जिसकी सीमा में लघुलेख तथा प्रतीक घिरे हैं। लेख के ऊपरी भाग में गरुड़ की आकृति अंकित है जो ऊँचा सतह बनाता है। इससे प्रकट होता है कि वैष्णव मतावलंबी नरेश ने उस मुहर को तैयार किया था। गुप्तसम्राट् वैष्णव थे अतएव गरुड़ आकृति की सार्थकता है। नालंदा की मुहर ही यह घोषित करता है कि प्रथम कुमारगुप्त का पुत्र पुरुगुप्त था। उसका पुत्र नरसिंह तथा उसीका भाई बुधगुप्त था। बुधगुप्त के संबंध में अन्य कोई साक्ष्य नहीं है। द्वितीय कुमारगुप्त की नालंदा मिट्टी की मुहर तथा भितरी (वाराणसी के समीप) रजत मुद्रा में एक ही भिन्नता है। वह है द्वितीय कुमारगुप्त की माता का नाम। नालंदा मुहर में नरसिंह की स्त्री (यानी द्वितीय कुमार की माता) का नाम मित्रदेवी लिखा है। किंतु भितरी रजत मुद्रा में उसी राजा की पत्नी का नाम महालक्ष्मी अंकित है। इस प्रकार के विश्लेषण से सामाजिक बातें प्रकाश में आती हैं।

गुप्तकालीन नरेश वैन्यगुप्त की एक मुहर नालंदा से प्राप्त हुई है जिसके अंतिम पंक्ति में **'परम भागवतो महाराजाधिराज श्री वैन्यगुप्त'** अंकित है। इसी शासक का एक ताम्रपत्र लेख तिपेरा (बंगाल) जिले के गुणैधर स्थान से प्रकाश में आया है (इ० हि० क्वा०, भा० ६, पृ० ५३)। जिसमें राजा के लिए केवल महाराज की पदवी उल्लिखित है। दोनों के अनुशीलन से प्रकट होता है कि वैन्यगुप्त शक्तिशाली राजा था। उसका राज्य बंगाल से बिहार (नालंदा) तक विस्तृत था। वह वैष्णव मतावलंबी भी था। उस नरेश की महान पदवी लघुलेख (मुहर) से ज्ञात होती है अन्यथा नहीं। सभी लेख संस्कृत भाषा तथा उत्तरी भारत की ब्राह्मी (लिपि) में खुदे हैं।

सिक्कों पर अंकित लेख (Coin Legend)

भारतीय मुद्राशास्त्र में गुप्तकालीन सिक्के महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उनसे पूर्व भारतीय शासक—यूनानी तथा कुषाण नरेशों ने कलात्मक दृष्टि से सुंदर सिक्कों का प्रचलन किया था किंतु उनमें विदेशीपन के भाव निहित थे। ऊपर लघुलेख (Legend) भी अभारतीय लिपि में अंकित किए गए थे, अर्थात् यूनानी तथा खरोष्ठी लिपियों में। अन्य भारतीय नरेशों ने भी (सातवाहन

CG-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

आदि) लेखयुक्त सिक्कों का प्रचलन किया था पर वह सभी कलारहित थे। उन पर शासक का अर्द्धचित्र खुदा नहीं मिलता जैसे यूनानी या कुषाण सिक्कों पर दृष्टिगत होते हैं। गुप्तकालीन मुद्राएँ ही ऐसी हैं जिन पर राजा की आकृति तथा नाम खुदे हैं। सभी समान तौल के नहीं हैं। सर्वप्रथम १२१ ग्रेन के बराबर थे किंतु भारतीय सुवर्ण तौल १४४·६ ग्रेन को अपना लिया गया। प्रारंभिक दशा में उन पर जो विदेशी प्रभाव था वह भी शनैः शनैः जाता रहा। अतएव उत्कृष्टता तथा कलापूर्ण होने के कारण गुप्त सिक्कों को राष्ट्रीय कहना सर्वथा उचित होगा।

मौलिकता तथा कलात्मक दृष्टि से गुप्त सिक्के प्राचीन भारतीय मुद्राओं में अपनी सानी नहीं रखते। इस प्रकार की सुंदरता तथा कलात्मक विशेषता अन्य सिक्कों में दीख नहीं पड़ती। गुप्तयुग की कला में निर्माण शक्ति (Creative Power) थी जो सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। गुप्त सिक्कों पर भी वह छटा स्पष्ट रूप से प्रकट हो रही है। गुप्त राजाओं ने अनेक प्रकार के सिक्के प्रचलित किए। गुप्त सम्राट् एक प्रकार की मुद्रा से संतुष्ट न हुए। उनमें विविधता दर्शनीय है। गुप्तकालीन मुद्राओं की कला सर्वथा भारतीय है।

मुद्रालेखों का अध्ययन सिक्कों के प्रकार (Types) का परिज्ञान कराता है। लघुलेखों की सार्थकता से राजा का नाम तथा सिक्कों की विशेषता प्रकट हो जाती है। गुप्त सिक्कों पर लेख अंकित करने का दो विभिन्न दिशाएँ थीं। नाम तो सदा बाँह के नीचे लंबवत् अंकित है किंतु वृत्त में भी लेखों को स्थान दिया गया। उनके अनुशीलन से कई विषयों पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। राजा के जीवन घटनाओं की जानकारी सरल हो जाती है। इस प्रकार सिक्कों पर अंकित लघुलेख गुप्त इतिहास के एक साधन हैं।

गुप्त नरेशों ने तीनों धातुओं—सोना, रजत तथा तांबा का प्रयोग अपने सिक्कों के लिए किया था। सभी सिक्कों पर एक प्रकार का लघुलेख नहीं मिलता। उनको विशिष्ट अवसर तथा अर्थ निमित्त अंकित किया गया था। गुप्त मुद्रा-लेखों (legends) का अनुशीलन से निम्न बातों पर प्रकाश पड़ता है—

(१) भाषा एवं लिपि।
(२) राजा का नाम तथा पदवी।
(३) धातु तथा तौल का ज्ञान।
(४) विभिन्न घटनाओं का प्रदर्शन।
(५) शासक के जीवन घटना का उल्लेख।
(६) धार्मिक इतिहास पर प्रकाश।
(७) सामाजिक चर्चा—वस्त्राभूषण।
(८) नवीनता का समावेश।
(९) देश काल की अभिव्यक्ति।
(१०) मुद्रालेख की सार्थकता।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

भारतीय सिक्कों के अध्ययन से ही लिपि तथा वर्णमाला का ज्ञान हो सका। यूनानी सिक्कों पर अग्रभाग में युनानी नाम खुदे थे तथा पृष्ठ भाग पर (वही) खरोष्ठी में अंकित था।

दोनों लेखों में समानता थी, इस प्रकार खरोष्ठी का परिज्ञान हुआ। कुछ द्विभाषी सिक्कों पर खरोष्ठी तथा ब्राह्मी का प्रयोग मिलता है। जो नाम या शासक की पदवी खरोष्ठी में खुदी थी वही नाम तथा संस्कृत पदवी ब्राह्मी में भी होगा, यह अनुमान किया गया। उदाहरण ने लिए यूनानी राजा मिनेंडर के सिक्के द्विभाषी है। खरोष्ठी में महरजस मिनद्रस है तो ब्राह्मी में भी रजरजस मिंद्रस खुदा है। इसी तरह खरोष्ठी के सहारे ब्राह्मी के अक्षर ज्ञात हो गए। अतएव इसी मार्ग से अक्षरों का ज्ञान होता गया। विद्वानों ने वर्णमाला तैयार कर अभिलेखों का पढ़ना प्रारंभ किया। ब्राह्मी की जानकारी हो जाने पर उस लिपि के विकसित रूप को भी पढ़ा गया। उत्तरी भारत की ब्राह्मी को गुप्त काल में "गुप्तलिपि" कहने लगे। अतः गुप्त सिक्कों पर सर्वत्र गुप्तलिपि का प्रयोग दीख पड़ता है। तत्कालीन अभिलेखों की भाषा संस्कृत है। इसीलिए कलाकारों ने सिक्कों पर संस्कृत भाषा में ही लेख खोदा था। गुप्त युग में साहित्यिक पुनरुत्थान हुआ जो सिक्के में भी प्रतिबिंबित होता है। आश्चर्य तो यह है कि गुप्त मुद्रालेख (legends) भी छंदवद्ध हैं। पृथ्वी, उपगीति तथा वंशस्थविल गद्यात्मक नहीं हैं। यों तो संस्कृत भाषा के इतिहास में महाक्षत्रप रूद्रदामन का गिरनार लेख (१५० ई०) काव्यमय संस्कृत का पहला उदाहरण है किंतु तीसरी शताब्दी के पश्चात् अधिकांश गुप्त शासकों के अभिलेख तथा मुद्रालेख संस्कृत भाषा में ही अंकित हैं। जनसाधारण तक संस्कृत को पहुँचाने में गुप्त सिक्कों ने अद्वितीय काम किया। काव्य की दृष्टि से उनका ऊँचा स्थान है। अन्य किसी राजवंश ने मुद्रालेखों को छंदवद्ध करने की प्रथा का अनुसरण नहीं किया।

यह कहा गया है कि गुप्त सिक्के पिछले कुषाण सिक्कों के अनुकरण पर तैयार किए गए थे। उनपर ब्राह्मी में राजा का नाम लंबवत् लिखा है। यही कारण था कि गुप्त मुद्राशास्त्र में उस प्रणाली को अपनाया गया। गुप्त नरेशों के नाम बांह के नीचे लिखा जाने लगा। प्रथम चंद्रगुप्त के स्वर्ण मुद्राओं पर चंद्रगुप्त तो बांह के नीचे पढ़ा जाता है किंतु उसकी रानी कुमार देवी का नाम आकृति के बाहर अंकित है। कभी समुद्रगुप्त के व्याघ्रनिहंता प्रकार में पृष्ठ भाग पर भी समुद्रगुप्त उत्कीर्ण है। राजा-रानी तथा खड्गधारी प्रकार में प्रथम कुमार गुप्त के नाम भी पृष्ठ भाग पर लिखा है। द्वितीय चंद्रगुप्त तथा प्रथम कुमार गुप्त के रजत सिक्कों के पृष्ठ भाग पर पदवीसहित नामोल्लेख है। सिक्कों के पृष्ठ भाग पर अधिकतर गुप्त शासकों की पदवी अंकित हैं, जैसे पराक्रमः या अश्वमेघ पराक्रमः (समुद्रगुप्त के लिए) विक्रमः अथवा विक्रमादित्य (द्वितीय चंद्रगुप्त के लिए) तथा महेंद्र की पदवी (प्रथम कुमारगुप्त के लिए) खुदी है। द्वितीय चंद्रगुप्त के रजत सिक्कों राजा के लिए तीन पदवियों का उल्लेख किया गया है। परमभागवत, महाराजाधिराज तथा विक्रमांक अंकित हैं।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

गुप्त सिक्कों पर अंकित लघुलेखों (legends) के अनुशीलन से सिक्कों की धातु तथा तौल का परिज्ञान हो जाता है। गुप्त नरेशों की स्वर्ण मुद्राओं तथा रजत सिक्कों पर विभिन्न प्रकार के लघुलेख मिलते हैं। एक-दूसरे के स्थान को नहीं ले सकता। अतः निश्चित है कि स्वर्ण मुद्राओं पर एक विशिष्ट प्रकार का लेख है। उदाहरण के लिए

'समर शतवितत विजयी जितरिपु रजितो दिवं जयति' समुद्र के दण्डधारी प्रकार के सोने के सिक्कों पर खुदा है।

देवश्री महाराजा या नरेन्द्रचन्द्रः प्रथितरणो रणे जयत्यजेयो भुवि सिंहविक्रमः लेख द्वितीय चंद्रगुप्त की स्वर्ण मुद्राओं पर अंकित है। किंतु रजत सिक्कों पर

परमभागवत महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त विक्रमादित्य अथवा

"श्री गुप्तकुलस्य महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त विक्रमांकस्य" लेख सदा मिलते हैं। अतः सोने तथा चांदी धातुओं के प्रयोग का परिज्ञान मुद्रालेखों के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है। यदि कोई व्यक्ति लेखों को गंभीर रूप से पढ़े तो शीघ्र व्यक्त कर देगा कि यह लेख अमुक धातु के सिक्कों पर खोदा जाता था। प्रथम कुमारगुप्त के विषय में भी यही चरितार्थ होता है। उसके स्वर्ण सिक्कों पर मुद्रालेखों की विविधता है। किंतु निम्न लेख के पढ़ने से ही प्रकट होता है कि सिक्के चांदी के हैं। जैसे

"परम भागवत महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्त महेंद्रादित्य"

पश्चिमी भारत से प्राप्त रजत सिक्कों पर अंकित लेख। इस राजा के चांदी के सिक्कों में भी विशेषता है कि पश्चिमी तथा मध्यदेशीय मुद्रालेख एक समान नहीं हैं। पश्चिम भारत के रजत सिक्कों पर **'परमभागवत'** शब्द से लेख आरंभ होता है, परंतु मध्यदेशीय सिक्के नए प्रकार के लेख सहित है। वह मुद्रालेख मध्यदेशीय रजत सिक्कों पर सदा अंकित होते रहे।

"विजिता वनिरवनपति कुमारगुप्तों दिवं जयति"

गुप्त शासन के पश्चात् भी मध्यदेशीय सिक्कों पर उस लेख का अनुकरण होता रहा, केवल मुद्रा लेख में शासन का नाम परिवर्तित है। हूण नरेश तोरमाण के चाँदी के सिक्के पर भी यही लेख है। कहने का तात्पर्य यह है कि गुप्त मुद्रालेख तथा उनका प्रचलन शासक के कार्य पद्धति तथा अवस्था को व्यक्त करते हैं।

मुद्राओं का प्रचलन यह प्रकट करता है कि गुप्त सम्राट् आर्थिक दशा को दृष्टि में रखकर सिक्कों को तैयार कराते थे ताकि जन जीवन सुखी रह सके। प्राचीन काल से कुषाण नरेशों ने भारतीय मुद्रा में स्वर्ण का प्रयोग किया जो अन्तर्राष्ट्रीय बाजार का मापदन्ड था। (International Standard) पिछले कुषाण नरेश उस प्रतिष्ठा तथा संमान के पात्र न थे किंतु मिश्रित सोने का सिक्का प्रचलित करते रहे। गुप्त शासन के आरंभ से भारतीय व्यापार अंतर्राष्ट्रीय

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

बाजार तक पहुँचा और इस कार्य की उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई। समुद्रगुप्त ने समतट विजय कर एसिया के दक्षिणपूर्वी भाग से व्यापारिक संबंध बढ़ाया। ताम्रलिपि के बंदरगाह से भारतीय व्यापारी सुवर्णद्वीप को जाने लगे। पश्चिमी भाग को चंद्रगुप्त विक्रमादित्य ने क्षत्रपों को पराजित कर गुप्त साम्राज्य में मिला लिया जिसके कारण पश्चिमी एसिया तथा पूर्वी योरोप में भारतीय व्यवसायी आने जाने लगे। इस प्रकार गुप्तयुग में स्वर्ण मुद्राएँ अधिक संख्या में प्रचलित की गई। स्वर्ण मुद्राओं की शुद्धता से अंतर्राष्ट्रीय जगत में प्रतिष्ठा की बात स्वतः सिद्ध होती है। संस्कृत में अंकित मुद्रालेख एसिया के दक्षिण पूर्वी भूभाग में संस्कृत भाषा के प्रचार में सहायक हुए। गुप्त सम्राट् स्कंदगुप्त के प्रारंभिक शासन में हूणों का आक्रमण हुआ था तथा राजकीय कोष पर धक्का लगा। स्यात् कालांतर में धन की आवश्यकता तथा शुद्ध धातु (सोने) की कमी के कारण मिश्रित सोने के सिक्के प्रचलित किए गए। आर्थिक कठिनाई को दूर करने के लिए ताँबे के सिक्कों पर चाँदी का पानी चढ़ाकर रजत सिक्के घोषित किए गए। तात्पर्य यह है कि गुप्त कालीन सिक्के ऐतिहासिक घटनाओं को भी व्यक्त करते हैं।

गुप्त शासकों ने सिक्कों में नवीनता लाने का प्रयत्न किया था। पूर्व प्रचलित सिक्को में विदेशीपन की झलक थी। विदेशी चिह्न भी थे। उन्हें हटाकर भारतीयता में ढ़ालने की कोशिश की गई। राजकीय जीवन घटनाओं तथा आमोद-प्रमोद की भी अभिव्यक्ति सिक्कों द्वारा की गई है। समुद्रगुप्त ने दिग्विजय के पश्चात् अश्वमेध किया। उसी का प्रदर्शन 'अश्वमेघ' सिक्कों से हो जाता है। अग्रभाग पर अश्व तथा पृष्ठ भाग पर महिषी यज्ञ-सूची लिए खड़ी है। ऊपरी भाग में "**राजाधिराज पृथिवी मवित्वादिवं जयत्या हृतवाजिमेधः**" लेख अंकित है। यानी राजाधिराज (समुद्र) ने जितने यज्ञ किया उससे पृथिवी का रक्षण कर स्वर्ण की प्राप्ति करता है। पृष्ठ भाग पर '**अश्वमेध पराक्रमः**' खुदा है (शक्तिशाली राजा अश्वमेध करता है) दंडधारी प्रकार सिक्के पर खुदे लेख से प्रकट होता है कि समुद्रगुप्त ने सैकड़ों युद्ध किया था, तत्पश्चात् अश्वमेध संपन्न किया। अतएव "**समर शतवितत विजयी जितरिपु**" लेख युद्धों की ओर संकेत करता है। समुद्रगुप्त द्वारा प्रचलित व्याघ्रनिहंता प्रकार सिक्का उसके आखेट प्रेम का प्रदर्शन करता है। राजा व्याघ्र को पैर से दबा कर धनुष से निशान लगा रहा है। कलात्मक दृष्टि से यह सिक्का अत्यंत सुंदर है: प्रभावोत्पादक है। राजा की आकृति आवेशपूर्ण है। इसमें विदेशीपन को त्यागकर भारतीय पोषाक का प्रयोग किया गया है। वीणाधारी प्रकार का सिक्का राजा समुद्रगुप्त के संगीत प्रेम का साक्षी है। इस सिक्के के अग्रभाग पर राजा का शरीर वस्त्र रहित है। पर्यङ्क पर बैठा वीणा बजा रहा है। समुद्रगुप्त के संगीत निपुणता का वर्णन प्रयाग प्रशस्ति में भी मिलता है। अग्रभाग पर मुद्रालेख अधूरा है पर "महाराजाधिराज श्री समुद्रगुप्त" पढ़ा गया है। द्वितीय चंद्रगुप्त की भी कई मुद्राएँ उनके आखेट प्रेम को बतलाती है! सिंह निहंता प्रकार में सिंह से डट कर युद्ध कर रहा हैं। अश्वारोही प्रकार से उस राजा के चतुर

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

अश्वारोही होने की बातें चरितार्थ होती हैं। उस पर खुदालेख भी द्वितीय चंद्रगुप्त की रण में कुशलता की बातें वर्णित करता है—नरेंद्र चंद्र प्रथित रणे अथवा सिंह विक्रम राजा की वीरता की याद दिलाते हैं।

प्रथम कुमारगुप्त के सिक्कों का अध्ययन भी उसी परिणाम पर ले जाता है कि सिक्कों पर अंकित लेख राजा के जीवन घटनाओं का वर्णन करते हैं। अश्वारोही प्रकार कुमारगुप्त का सर्वप्रिय सिक्का माना जाता है। यों तो चौदह प्रकार की स्वर्ण मुद्राओं का उसने प्रचलन किया परंतु कतिपय मुद्रालेख काव्यमय हैं तथा राजा के विशेष जीवन घटनाओं का परिज्ञान कराते हैं।

अश्वारोही प्रकार में—'पृथिवी तलांवर शशि कुमारगुप्तो जयत्यजित:' लेख अंकित है। यानी राजा अजेय है, पृथ्वी रूपी आकाश में चंद्रमा के सदृश है, ऐसा कुमारगुप्त विजयी हो। पृष्ठ भाग पर भी, **'अजितमहेंद्र:'** खुदा है। 'खड्गनिहंता प्रकार' वाले सिक्के का विशेष रूप से उल्लेख करना आवश्यक है। प्रथम कुमारगुप्त आखेट के प्रसंग में गैंड़ा को मार रहा है। यह सिक्का अत्यंत कलापूर्ण है। लेख छंदोवृद्ध होने पर भी श्लेषात्मक है। इसमें खड्ग शब्द दो अर्थ में प्रयुक्त है—तलवार तथा गैंड़ा। मुद्रालेख—

'भर्त्ताखड्गत्राता कुमारगुप्तो जयत्यनिशम्'

वाक्य में कुमारगुप्त को दो प्रकार से शक्तिशाली माना है। प्रथम कुमारगुप्त सदा विजयी हो जो गैंड़ा के (खड्ग) भय से लोगों को मुक्त करें। दूसरा भाव यह है कि राजा कुमारगुप्त तलवार से जनता की रक्षा करता है। ऐसा श्लेषात्मक प्रयोग काव्य की सुदंरता का बोधक है। इसी के अश्वमेघ सिक्का पर अंकित लेख राजा के विजय का उल्लेख करता है। कुमारगुप्त ने शत्रुओं को जीता है—'देवो जितशत्रु कुमारगुप्तोधिराजा' यद्यपि किसी प्रशस्ति में कुमारगुप्त के अश्वमेघ का वर्णन नहीं मिलता परंतु सिक्के ज्वलंत उदाहरण है तथा **'अश्वमहेन्द्र:'** पदवी से यह प्रमाणित होता है कि महेन्द्र (कुमारगुप्त की पदवी) ने अश्वमेघ संपन्न किया। संक्षेप में यह कहना यथार्थ होगा कि गुप्त सिक्कों पर खुदे मुद्रालेख तथा प्रदर्शन शासकों के जीवन घटनाओं की ओर भी संकेत करते हैं।

गुप्त सम्राटों द्वारा प्रचलित सिक्कों पर अंकित मुद्रालेखो का अध्ययन तत्कालीन धार्मिक अवस्था पर प्रकाश डालता है। गुप्त सम्राटों ने पिछले कुषाण के सिक्कों पर प्रदर्शित दंड को गरुड़ध्वज से प्रतिस्थापन किया। गरुड़ पक्षी के संबंध में विशेष कहने की आवश्यकता नहीं है कि यह भगवान् विष्णु का वाहन है। अतएव यह वैष्णव धर्म का प्रतीक माना गया है। दूसरी नवीनता यह है कि यूनानी देवी आरदोक्षो के स्थान पर लक्ष्मी को अपनाया गया। विष्ण भार्या लक्ष्मी की आकृति यह घोषित करती है कि वह राजवंश वैष्णव मत का अनुयायी था जिनके सिक्कों पर लक्ष्मी की आकृति दीख पड़ती हैं। अतएव विष्ण के वाहन गरुड़ तथा

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

भार्या लक्ष्मी की स्थिति में गुप्त सम्राटों को वैष्णव मानना सर्वथा उचित होगा। प्रतीक के अतिरिक्त मुद्रालेखों का साक्ष्य स्पष्ट प्रकट करता है कि गुप्त सम्राटों की पदवियां राजा के वैष्णव होने की बातों की पुष्ट करती है—

(१) **परमभागवत महाराजाधिराज श्रीचंद्रगुप्त विक्रमादित्यः।**

(२) **परम भागवत महाराजाधिराज श्रीकुमारगुप्त महेन्द्रादित्यः।**

(३) **परमभागवत महाराजाधिराज श्रीस्कंदगुप्त क्रमादित्यः।**

उपरियुक्त पदवी—'**परमभागवत**' से तनिक भी संदेह नहीं रह जाता कि गुप्तवंशी नरेश वैष्णव मतानुयायी थे। वैष्णव मत को पुराने काल में भागवत मत भी कहा गया है। अतएव परम भागवत का पदवीधारी वैष्णव होगा, यह निर्विवाद है। सम्राट् द्वितीय चंद्रगुप्त द्वारा प्रचलित सोने का एक अद्वितीय सिका '**चक्रविक्रम**' नाम से प्रसिद्ध हुआ है। वह बयाना निधि से प्रकाश में आया है और अपने तरह का एक ही सिक्का है। उसके अग्रभाग पर भगवान् विष्णु की आकृति है जो राजा को प्रसाद भेंट कर रही है। इसके पृष्ठभाग पर 'चक्रविक्रमः' की विरुद है जिसके कारण इस स्वर्णमुद्रा को द्वितीय चंद्रगुप्त का मानते हैं। उसका वैष्णव मतानुयायी होना संदेह रहित एवं निर्विवाद है।

गुप्तकालीन सिक्कों का अध्ययन अनेक विषयों पर प्रकाश डालते हैं। पुरानी बातों क त्याग पर भारतीयता को अपनाना गुप्त सम्राटों की विशेषता थी। अतएव प्रारंभिक अवस्था में जिन ईरानी वेशभूषा को सिक्कों पर स्थान दिया गया था, उन्हें कालांन्तर में हटा दिया तथा भारतीय वस्त्र एवं आभूषण अपनाए गए। इतना ही नहीं उनके अध्ययन से देश तथा काल का भी ज्ञान हो जाता है। गुप्तकालीन मुद्रालेख में दो प्रकार के अक्षरों का प्रयोग होने लगा। गुप्तलिपि को पूर्वी तथा पश्चिमी उपविभागों में विभक्त करते हैं। अधिकतर सिक्कों पर पूर्वी प्रकार की लिपि अंकित मिलती है। अतएव प म य ह अक्षरों को पूर्वी उपविभाग में रख देने पर उस सिक्कों का प्रचलन पाटलिपुत्र के समीप हुआ होगा, ऐसी कल्पना होने लगती हैं। यह कहना कठिन है कि स्वर्ण सिक्के किस टकसाल में तैयार हुए थे पर अक्षरों के आधार पर देश काल का अनुमान लग जाता है।

गुप्त मुद्रालेख की सार्थकता के संबंध में दो चार शब्द कहना आवश्यक प्रतीत होता है। सिक्कों पर अंकित लेख से गुप्तकालीन साहित्यिक पुनरुत्थान का आभास मिलता है। काव्य की दृष्टि से उनका स्थान ऊँचा है तथा छंदवद्ध मुद्रालेख गुप्त शासकों की देन है। जितने लेख खुदे हैं वह सार्थक है तथा शासक के जीवन घटना की ओर संकेत करते हैं। उदाहरण के लिए समुद्रगुप्त के दंडधारी सिक्के पर अंकित लेख को ध्यान से देखें—

समर शत वितत विजयोजित रिपुरजितो दिवं जयति—समुद्रगुप्त सर्वत्र विजयी है, सैकड़ों लड़ाइयों में सफलता प्राप्त की तथा शत्रु को पराजित किया। वह स्वर्ग की प्राप्ति करता है।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

इस प्रकार की सूचना प्रयाग प्रशस्ति से भी उपलब्ध होती है। उस स्थान पर अनेक अस्त्र शस्त्रों का उल्लेख है जिनका प्रयोग समुद्रगुप्त ने अनेक युद्धों में किया था और जिनके चोट से राजा का शरीर सुशोभित हो रहा था—

विविध समर शतावरण दक्षस्य स्वभुज बल पराक्रमैकबँधोः पराक्रमांकस्य परशु शर शंकु शक्ति प्रासासि तोमर भिन्दपाल नाराच वैतास्तिकाद्यनेक प्रहरण विरुढ़ाकुल व्रण शताङ्क शोभा समुद्रयोपचित कांततर वर्ष्मणः। (प्रयाग प्रशस्ति)

इस प्रकार अनेक उदाहरण उपस्थित किए जा सकते हैं। मुद्रालेखों की सार्थकता से ही देश काल एवं पात्र की बातें व्यक्त हो जाती है। वह पंक्ति किस काल में अंकित हुई तथा कौन शासक राज्य कर रहा था। लिपि का प्रयोग भी चतुरता से किया गया। स्वर्ण तथा रजत सिक्कों के मुद्रालेखों में स्पष्ट अंतर है। जिस लेख का प्रयोग गुप्त शासकों ने किया था उसे कालांतर में किसी राजा ने मुद्राओं पर स्थान नहीं दिया। केवल रजत सिक्कों खुदे लेख—

विजितावनिरवनिपतिः श्रीदित्तं जयति

हूण तथा मौखरि सिक्कों पर मिलते हैं जो गुप्तमुद्रालेख का अनुकरण मात्र हैं।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

गुप्त प्रशस्तियाँ

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

समुद्रगुप्त के लेख

प्रयाग प्रशस्ति

१. [यः] कुल्यैः स्वै··························· ातस···························
२. [यस्य ?]···
··························[।।*] [१]
३. पु (?) व······················· त्र·······················
४. [स्फु]रद्व(?)··क्ष स्फुटो-
[द्ध्वं]सित·················· प्रवितत·················[।।*] [२*]
५. यस्य ·प्र[ज्ञानु]षङ्गोचित-सुख-मानसः शास्त्रत[त्त्वा]र्त्थ-भर्त्तुः
[– –] ·स्तब्धो ⏑ – – ⏑)नि(⏑⏑⏑⏑ –]नोच्छ्रृ-
[– – ⏑ – –]
६. [स]त्काव्य-श्री-विरोधान्बुध-गुणित-गुणाज्ञाहतानेव कृत्वा [वि]द्वल्लोके [ऽ*]वि[नाशि ?] स्फुट-बहु-कविता-कीर्त्ति-राज्यं भुनक्ति[।।*] [३]
७. [आ]र्यो हीत्युपगुह्य भाव-पिशुनैरुत्कर्ण्णितै रोमभिः सभ्येषूच्छ्वसितेषु तुल्य-कुलज-म्लानाननोद्वीक्षि[तः] [।*]

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

८. [स्ने]ह-व्यालुलितेन बाष्प-गुरुणा तत्त्वेक्षिणा चक्षुषा यः पित्रा [ऽ*]भिहितो नि[रीक्ष्य] निखि[लां पाह्येवमुर्व्वी]मिति[॥*][४]

९. [दृ]ष्ट्वा कर्म्माण्यनेकान्यमनुज-सदृशान्यद्भुतोद्भिन्न-हर्षा भ[ा]वैरास्वादय[न्त⏑⏑⏑⏑⏑⏑⏑––⏑––⏑] [कें]-चित् [।*]

१०. वीर्य्योत्तप्ताश्च केचिच्छरणमुपगता यस्य वृत्ते [ऽ*]प्रणामे [ऽ*]प्य[र्त्ति ?]-[ग्रस्तेषु ?––⏑⏑⏑⏑⏑––⏑–– ⏑––] [॥*] [५]

११. संग्रामेषु स्व-भुज-विजिता नित्यमुच्चापकाराः श्वः-श्वो मानि-प्र[⏑⏑⏑⏑ – –⏑ – –⏑ – –] [।*]

१२. तोषोत्तुङ्गैः स्फुट-बहु-रस-स्नेह-फुल्लैर्म्मनोभिः पश्चात्तापं व-[⏑⏑⏑⏑––⏑] [मं ?] स्य[ा]द्वसन्त[म् ?] [॥*] [६]

१३. उद्वेलोदित-बाहु-वीर्य्य-रभसादेकेन येन क्षणादुन्मूल्याच्युत-नागसेन-ग[णपत्यादीन्नृपान्संगरे ? ।*]

१४. दण्डैर्ग्राहयतैव कोत-कुलजं पुष्पाह्वये क्रीडता सूर्य्येने(णे)त्य(?) [⏑–⏑–] तट[⏑–––⏑ ––⏑–] [॥*] [७]

१५. धर्म्म-प्राचीर-बन्धः शशि-कर-शुचयः कीर्त्तयः स-प्रताना वैदुष्यं तत्त्व-भेदि प्रशम[⏑⏑⏑] कु[–च⏑]मु (सु ?) [–⏑]-तार्त्थम् (?) [।*]

१६. [अद्ध्येयः]सूक्तमार्ग्गः कवि-मति-विभवोत्सारणं चापि काव्यं को नु स्याद्यो [ऽ*]स्य न स्याद्गुण इति [वि]दुषां ध्यान-पात्रं य एकः [॥*] [८]

१७. तस्य विविध-समर-शतावतरण-दक्षस्य स्व-भुज-बल-पराक्क्रमैक-बन्धोः पराक्क्रमाङ्कस्य परशु-शर-शङ्कु-शक्ति-प्रासासि-तोमर-

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

१८. भिन्दिपाल - न[ा]राच - वैतस्तिकाद्यनेक-प्रहरण - विरूढाकुल - व्रण - [शताङ्क-शोभा-समुदयोपचित-कान्ततर-वर्ष्मणः]

१६. कौसलकमहेन्द्र-माह[ा*]कान्तारकव्याघ्रराज- कौरालकमण्टाराज-पैष्टपुरकमहेन्द्रगिरि - कौट्टूरकस्वामिदत्तैरण्डपल्लकदमन - काञ्चेयकविष्णुगोपावमुक्तक-

२०. नीलराज-वैङ्गेयकहस्तिवर्म्म - पालक्ककोग्रसेन - दैवराष्ट्रककुबेर-कौस्थलपुरकधनञ्जय-प्रभृति - सर्व्वदक्षिणापथराज - ग्रहण - मोक्षानुग्रह-जनित-प्रतापोन्मिश्र-माहाभाग्यस्य

२१. रुद्रदेव-मतिल-नागदत्त-चन्द्रवर्म्म - गणपतिनाग - नागसेनाच्युतनन्दि-बलवर्म्माद्यनेकार्य्यावर्त्तराज-प्रसभोद्धरणोद्वृत-प्रभाव-महतः परिचारकीकृत-सर्व्वाटविक-राजस्य

२२. समतट-डवाक - कामरूप-नेपाल-कर्त्तृपुरादि-प्रत्यन्त-नृपतिभिर्म्मालिवार्जुनायन-यौधेय-माद्रकाभीर-प्रार्जुन-सनकानीक- काक - खरपरिकादिभिश्च सर्व्व-कर-दानाज्ञाकरण-प्रणामागमन-

२३. परितोषित-प्रचण्ड-शासनस्य अनेक-भ्रष्ट-राज्योत्सन्न-राजवंश-प्रतिष्ठापनोद्भूत-निखिल-भु[व]न-[विचरण]-शान्त-यशसः दैवपुत्र-षाहि-षाहानुषाहि-शकमुरुण्डैः सैंहलकादिभिश्च

२४. सर्व्व-द्वीप - वासिभिरात्म-निवेदन - कन्योपायन-दान-गरुत्मदङ्क-स्वविषयभुक्ति-शासन-[य]ाचनाद्युपाय-सेवा-कृत - बाहु - वीर्य्य - प्रसर-धरणि-बन्धस्य प्रि (पृ) थिव्यामप्रतिरथस्य

२५. सुचरित - शतालङ्कृतानेक - गुण - गणोत्सिक्तिभिश्चरण - तल-प्रमृष्टान्य-नरपति-कीर्त्तेः साध्वसाधूदय-प्रलय-हेतु-पुरुषस्याचिन्त्यस्य भक्त्यवनति-मात्र-ग्राह्य-मृदुहृदयस्यानुकम्पावतो (ऽ*) नेक-गो-शतसहस्र-प्रदायिन[ः]

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

२६. कृपण-दीनानाथातुर-जनोद्धरण-सत्त्रदीक्षाद्युपगत-मनसः समि-द्धस्य विग्रहवतो लोकानुग्रहस्य धनद-वरुणेन्द्रान्तक-समस्य स्व-भुज-बल-विजितानेक-नरपति-विभव-प्रत्यर्प्पणा - नित्य - व्यापृतायुक्त-पुरुषस्य

२७. निशित-विदग्ध-मति-गान्धर्व्व-ललितैर्व्व्रीडित - त्रिदशपतिगुरु - तुम्बुरु-नारदादेर्व्विद्वज्जनोपजीव्यानेक-काव्य-क्रियाभिः प्रतिष्ठित-कवि-राज-शब्दस्य सुचिर-स्तोतव्यानेकाद्भुतोदार-चरितस्य

२८. लोकसमय-क्रियानुविधान-मात्र-मानुषस्य लोक-धाम्नो देवस्य महाराज-श्री-गुप्त-प्रपौत्रस्य महाराज-श्री-घटोत्कच-पौत्रस्य महा-राजाधिराज-श्री-चन्द्रगुप्त-पुत्रस्य

२९. लिच्छवि-दौहित्रस्य महादेव्यां कुमारदेव्यामुत्फ(त्प)न्नस्य महा-राजाधिराज-श्री-समुद्रगुप्तस्य सर्व्व-पृथिवी-विजय-जनितोदय-व्याप्त-निखिलावनि-तलां कीर्त्तिमितस्त्रिदशपति-

३०. भवन-गमनावाप्त-ललित-सुख-विचरणामाचक्षाण इव भुवो बाहु-रयमुच्छ्रितः स्तम्भः [।*] यस्य । प्रदान-भुज-विक्रम-प्रशम-शास्त्र-वाक्योदयैरुपर्य्युपरि-सञ्चयोच्छ्रितमनेक-मार्ग्गं यशः [।*]

३१. पुनाति भुवन-त्रयं पशुपतेर्ज्जटान्तर्गुहा-निरोध-परिमोक्ष-शीघ्र-मिव पाण्डु गाङ्गं [पयः] [।।] [९] एतच्च काव्यमेषामेव भट्टा-रक-पादानां दासस्य समीप-परिसर्प्पणानुग्रहोन्मीलित-मतेः

३२. खाद्यटपाकिकस्य महादण्ड नायक-ध्रुवभूति पुत्रस्य सान्धिविग्र-हिक-कुमारामात्य-म[हादण्ड नाय]क-हरिषेणस्य सर्व्व-भत-हित-सुखायास्तु । (।।)

३३. अनुष्ठितं च परमभट्टारक-पादानुध्यातेन महादण्डनायक-तिल-भट्टकेन

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

एरण प्रशस्ति

७. [– – ◡ – ◡ ◡ ◡ – – ◡] सुवर्ण्ण-दाने
८. [न्यक्का]रिता नृपतयः पृथु-राघवाद्याः [॥*]२
९. [राजा] बभूव धनदान्तक-तुष्टि-कोप-तुल्यः
१०. [◡ – ◡]म-नयेन समुद्रगुप्तः [।*]
११. [– –]प्य पार्त्थिव-गणस्सकलः पृथिव्याम्
१२. [– –]स्त(स्व ?)-राज्य-विभव-द्ध्रुतमास्थितो [ऽ*]भूत् [*]३
१३. [– –]न भक्ति-नय-विक्क्रम-तोषितेन
१४. [यो] राज-शब्द-विभवैरभिषेचनाद्यैः [।*]
१५. [– –]नितः परम-तुष्टि-पुरस्कृतेन
१६. [– – ◡]वो नृपैरप्रतिवार्य्य-वीर्य्यः [॥*]४
१७. [श्रीर]स्य पुरु-पराक्क्रम-दत्त-शुल्का
१८ [हस्त्य]श्व-रत्न-धन-धान्य समृद्धि-युक्ता [।*]
१९. [नित्य]ङ्गृहेषु मुदिता बहु-पुत्र-पौत्र-
२०. [स]ङ्क्रामिणी कुल-वधु[धूः]व्रतिनी निविष्टा [॥*]५
२१. [यस्य] र्ज्जितं समर-कर्म्म पराक्क्रमेद्ध
२२. [दीप्तं] यशः सु-विपुलम्परिबम्भ्रमीति [।*]
२३. [कर्म्मा]णि यस्य रिपवश्च रणोर्ज्जितानि
२४. [स्व]प्नान्तरेष्वपि विचिन्त्य परित्रसन्ति [॥*]६
२५. [– – ◡ – ◡ ◡ ◡ – ◡ ◡ – ◡ – –] [–]प्तः (?)स्व
भोग-नगरैरिकिण-प्रदेशे [।*]
२६. [– – ◡ – ◡ ◡ ◡ – ◡ ◡ – ◡ – –] [सं]स्थापितस्स्व-
यशसः परिबृङ्हन(ण)ार्त्थम् [॥*]७
२७. [– – ◡ – ◡ ◡ ◡ – ◡ ◡ – ◡ – –] [– – ◡]वो नृपति
राह यदा [◡ – –] [।*]

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

नालंदा अभिलेख

१. १॰ स्वस्ति [।*] महानौ-हस्त्यश्व-जयस्कन्धावारा**नन्दपुर**-वासका[त्स]-
र्व्वरा[जोच्छे]त्त्(:*) पृथिव्यामप्रतिरथस्य चतुरुदधि-सलि[लास्वा]-

२. दित-यशसो धनद-वरुणे[न्द्रा]न्त(क*)-समस्य कृतान्त-परशोर्न्यायाग-
तानेक-गो-हिरण्य-कोटि-प्रदस्य चिरोत्स[न्ना]-

३. श्वमेधाहर्त्तु र्म्महाराज-श्री-**गु(प्त*)**-प्रपौत्रस्य महाराज श्री-**घटोत्कच**-
पौत्रस्य महारा[जाधि]राज-[श्री-**चन्द्रगुप्त**]-पुत्र-

४. स्य **लिच्छवि**-दौ[हि]त्रस्य महादेव्याङ्**कुमारदेव्या**मुत्पन्न ऽ परमभा-
[गवतो महाराजाधिराज-**श्रीसमुद्रगु**]**प्तः ताबि[र्गुण्य]**(?)-

५. वै[षयिक]**भद्रपुष्करक**ग्राम-**क्रिमिलवा**वैषयिकपू[**र्णणा?**]गग्रा[म(योः*)]
[ब्राह्मण-पुरोग*]-ग्राम-व[ल]त्कौशभ्या(?)माह [।*]

६. एव[ं*] चाह विदितम्बो भवत्वेषौ ग्रा[मौ] [मया] [मा]तापित्रोरा-
[त्मनश्च] षु[ण्याभिवृद्ध]ये जयभट्टिस्वामिने

७. * * * * [सोपरि]करो[द्दे]शेनाग्र]हा[रत्वे]नातिसृष्टः [।*]
तद्यु ष्मा-भिर[स्य]

८. त्रैविद्यस्य श्रोत्तव्यमाज्ञा च कर्त्त[व्या] [स]र्व्वे [च] [स]मुचिता
ग्रा(म*)-प्रत्या-(या*) मेय-हिरण्यादयो देया न चेत्त ऽ प्र-

९. [भृ]त्यनेन त्रै[वि]द्ये नान्य-ग्रामादि-करद- कुटुम्बि-[कारुक]ादय ऽ प्रवेश
[यित]व्या-[म]न्यथ[ा] नियतमाग्रहाराक्षेपः

१०. [स्य]ादिति ।। **सम्बत् ५** माघ-दि० २ निवद्धः [।*]

११. अनुग्रामाक्षपटलाधि[कृत]-महापीलूपति- महावलाधि[कृ]त - गोपस्वाम
(**च***)ादेश-लिखितः [।*]

१२. [कुमा*]र-श्री-**चन्द्रगुप्तः** [।।*]

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

गया अभिलेख

१. १ॅ स्वस्ति [॥*] महानौ-हस्त्यश्व जयस्कन्धावाराज।**योद्ध्या**-वासकात्सर्व्व-राजोच्छेत्त‍ु पृ-

२. थिव्यामप्रतिरथस्य चतुरुदधि-सलिलास्वादित-यश(सो*) धनद-वरुणेन्द्रा-

३. न्तक-समस्य कृतान्त परशोर्न्यायागतानेक-गो-हिरण्य-कोटि-प्रदस्य चिरोच्छ-

४. न्नाश्वमेधाहर्त्तु महाराज-श्री-**गुप्त**-प्रपौत्रस्य महाराज-श्री-**घटोत्कच**-पौत्रस्य

५. महाराजाधिराज-श्री-**चन्द्रगुप्त**-पुत्रस्य **लिच्छवि**-दौहित्रस्य महादेव्या(ं*) कु-

६. **मारदेव्या**मुत्पन्न(ः*) परमभागवतो महाराजाधिराज-श्री-**समुद्र**-

७. **गुप्तः गया**वैषयिक-**रेवतिका**ग्रामे ब्राह्मण-पुरोग-ग्राम-वल-

८. त्कौषभ्या(?)माह । एव(ं*) चार्थं विदितम्बो भवत्वेश ग्रामो मया मातापित्त्रोरा-

९. त्मनश्च पुण्याभिवृद्धये भारद्वाज-सगोत्राय वह्वृचाय स[व्र]ह्मचा-

१०. रिणे ब्राह्मण-गोपदेवस्वामिने सोपरिकरोद्देशेनाग्रहारत्वेनाति-

११. सृष्टः [।*] तद्युष्माभिरस्य श्रोतव्यमाज्ञा च कर्त्तव्या सर्व्वै [च] [स]मुचिता ग्राम-प्र-

१२. त्यया मेय-हिरण्यादयो देयाः [।*] न चेतत्प्रभृत्येतदाग्रहारिकेणन्यदग्र-

१३. मादि-करद-कुटुम्बि-कारुकादयः प्रवेशयितव्यामन्यथा नियतमाग्र-

१४. हाराक्षेप(ः*) स्यादिति [॥*] **सम्बत्** ६ वैशाख-दि १० [॥*]

१५. अन्यग्रामाक्षपटलाधिकृत-**द्यूत-गोपस्वाम्या**देश-लिखितः [॥*]

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

रामगुप्त का लेख

पूर्वी मालवा प्रतिमा-लेख

(अ) प्रतिमा की चरण चौकी पर

१. भगवतोऽर्हंत । चंद्रप्रभस्य प्रतिमेयं कारिता
२. महाराजाधिराज श्री रामगुप्तेन उपदेशात् पाणिपा
३. त्रिक चंद्रक्षमाचार्य्य क्षमण-श्रमण पशिष्याचार्य
४. सर्प्प सेन क्षमण शिष्यस्य गोलक्यान्त्यास त्पुत्रस्य चेलु क्षमण स्येति

(ब) द्वितीय प्रतिमा लेख

१. भगवतोऽर्हंत । पुण्यदंतस्य प्रतिमेयं करिता
२. महाराजाधिराज श्री रामगुप्तेन उपदेशात् पाणिपात्रिक
३. चंद्रक्षम (णा) चार्य्य (क्षमण) श्रमण प्रशिष्यस्य
४. × × ×

(स) तृतीय प्रतिमा (चरण चौकी) अभिलेख

१. भगवताऽर्हंतः (चंद्रप्रभ) स्म प्रतिमेयकारिता महाराजाधिराज
२. श्री (रामगुप्तेन) उपदेशात् पाणिपात्रि
३. × × ×
४. × × ×

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

द्वितीय चन्द्रगुप्त के लेख

मेहरोली लौह-स्तंभ अभिलेख

१. यस्योद्वर्त्तयतः प्रतीपमुरसा शत्रून्समेत्यागतान्वङ्गेष्वाहव-वर्त्तिनो [ऽ*]भिलिखिता खड्गेन कीर्त्तिर्भुजे

२. तीर्त्वा सप्त मुखानि येन समरे सिन्धोर्ज्जिता वाह्लिका यस्याद्याप्यधिवास्यते जलनिधिर्व्वीर्य्यानिलैर्द्दक्षिणः [।।*]

३. खिन्नस्येव विसृज्य गां नरपतेर्ग्गामाश्रितस्येतरां मूर्त्या (त्त्यां) कर्म्म जितावनिं गतवतः कीर्त्या (त्त्या) स्थितस्य क्षितौ

४. शान्तस्येव महावने हुतभुजो यस्य प्रतापो महान्नाद्याप्युत्सृजति प्रणाशित-रिपोर्य्यत्नस्य शेषः क्षितिम् [।।*]

५. प्राप्तेन स्व-भुजार्ज्जितं च सुचिरञ्चैकाधिराज्यं क्षितौ चन्द्राह्वेन समग्र-चन्द्र-सदृशीं वक्त्र-श्रियं बिभ्रता

६. तेनायं प्रणिधाय भूमि-पतिना भावेन विष्णो(ष्णौ) मतिं प्रांशुर्व्विष्णुपदे गिरौ भगवतो विष्णोर्ध्वजः स्थापितः [।।*]

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

उदयगिरि गुहा अभिलेख

१. सिद्धम् [।।*] य[दं]तज्ज्योतिरक्कभिसुव्व्यीम[— — ⌣ — ⌣ — —
— — — ⌣ —]व्यापि चन्द्रगुप्ताख्यमद्भुतम् [।।*] १

२. विक्रमावक्रय-क्रीता दास्य-न्यग्भूत-पार्त्थिव[ा] [— — —] मान-
संरक्त-धर्म्म[— — ⌣ — ⌣ —] [।।*] २

३. तस्य राजाधिराजर्षेरचिन्त्यो [— ⌣ —]र्म्मणः
अन्वय-प्राप्त साचिव्यो व्या[पृत-सन्धि]-विग्रहः [।।*] ३

४. कौत्सश्शाब इति ख्यातो **वीरसेनः** कुलाख्यया
शब्दार्त्थ-न्यायलोकज्ञ ⁀ कवि ⁀ **पाटलिपुत्रकः** [।।*] ४

५. कृत्स्न-पृथ्वी-जयार्त्थेन राज्ञैवेह सहागतः
भक्त्या भगवतश्शम्भोर्गुहामेतामकारयत् [।।*] ५

मथुरा स्तंभ (गु० स० ६१)

१. सिद्धम् [।*] भट्टारक-महाराज-[राजाधि]राज-श्री-**समुद्रगुप्त**-स-

२. [त्पु]त्रस्य भट्टारक-म[हाराज-[रा*जाधि]राज-श्री-**चन्द्रगुप्त**-

३. स्य विज(य*)-राज्य-संवत्स[रे*] [पं]**चमे** [५] **कालानुवर्त्तमान-सं-**

४. **वत्सरे एकषष्ठे** ६०(+*)१······[प्र]थमे शुक्लदिवसे पं-

५. **चम्यां** [।*] अस्यां पूर्व्वा[यां] [भ]**गव**[त्कु]**शिकाद्दशमेन भगव-**

३. **त्पराशराचतुर्थेन** [**भगवत्क***]पि[ल]विमल-शि-

७. ष्य-शिष्येण **भगव**[दुपमित*]विमल-शिष्येण

८. **आर्य्योदि**[ता*]**चार्य्ये**[ण*] [**स्व***]-पु[ण्या*]**प्यायन-निमित्तं**

९. गुरूणां च **कीर्त्य**[**र्थमुपमितेश्व**]**र-कपिलेश्वरौ**

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

१०. गुर्व्वायतने गुरु·····प्रतिष्ठापितो [।*] नै-
११. तत्ख्यात्यर्थमभिलि[ख्यते] [।*] [अथ*] माहेश्वराणां वि-
१२. ज्ञप्ति × क्रियते सम्बोधनं च [!*] यथाका[ले]नाचार्या-
१३. णां परिग्रहमिति मत्वा विशङ्कः[ं] [पू]जा-पुर-
१४. स्कार[ं] परिग्रह-पारिपाल्यं [कुर्य्या]दिति विज्ञप्तिरिति [।*]
१५. यश्च कीर्त्यभिद्रोहं कुर्य्या[ा]द्य[श्चा]भिलिखित[मुप]र्य्यधो
१६. वा [स] पंचभिर्महा[ा*]पातकैरुपपातकैश्च संयुक्तस्स्यात् [।*]
१७. जयति च भगवा[ण्डण्डः] रुद्रदण्डो(ऽ*)ग्र[ना]यको नित्य[ं] [॥*]

उदयगिरि गुप्त लेख (गु० स० ८२)

१. सिद्धम् ॥ संवत्सरे ८०(+*) २ आषाढ़-मास-शुक्लेकादश्याम् परम-
भट्टारक-महाराजाधि(राज*)-श्री-चन्द्र[गु]प्त-पादानुद्धयातस्य ।
२. महाराज-छगलग पौत्रस्य महाराज-विष्णुदास-पुत्रस्य सनकानिकस्य
महा[राज*] * * लस्यायं दे[यधर्म्म]ः ।

गढ़वा लेख (गु० स० ८८)

परम भागवत महाराजाधिराज श्री
चंद्रगुप्त राज्य संवत्सरे ... ...
... ...
दिवस पूर्वायां ... ...
मातृदास प्रमुख पुण्याप्यानार्थ्थम्
... ...

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

दा सत्र सामान्य ब्राह्मण ... ...

दीनौरर्द्धं समिः १० ... ...

यश्चैनरम् धर्म्मं स्कंधं ... ...

... ... युक्तः स्यादिति

(दूसरी ओर)

परम भागवत महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त राज्य संवत्सरे ८०८

अस्यां दिवस पूर्वायां पाटलिपुत्र ... ...

हस्तस्य भार्या...

आत्म पुण्योपचयार्थ्थम् ... ...

... ...

दीनाराः १० दस ... ...

धर्म्मं स्कंदधं व्युच्छिन्द्या पंच महापातकैः संयुक्तः स्यादिति

सांची वेदिका लेख (**गु० स० ९३**)

[सिद्धम् ॥*]

१. **का[कना*]दबोट**-श्रीमहाविहारे शील-समाधि-प्रज्ञा-गुण भावितेन्द्रियाय परम-पुण्य-

२. क्षे[त्र][ग*]ताय चतुर्द्दिगभ्यागताय श्रमण-पुङ्गवावसथायार्य्यं-सङ्घाय महाराजाधि-

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

३. रा[ज-श्री]**चन्द्रगुप्त**-पाद-प्रसादाप्यायित-जीवित-साधनः अनुजीवि-सत्पुरुष-सद्भाव-

४. वृ[त्त्यर्थं *] जगति प्रख्यापयन् अनेक-समरावाप्त-विजय-यशस्पताकः **सुकुलिदेश-न**

५. **ष्टो** * * * वास्तव्य उन्दान-पुत्राम्र**कार्द्दवो** मज-शरभङ्गाम्ररात-राजकुल-मूल्य-क्री-

६. त[म] * * * * **ईश्वरवासकं** पञ्च-मण्डल्या[*] प्रणिपत्य ददातिं पञ्चविंशतिश्च दीना-

७. रान् [।।*] * * * * * * यादर्द्धेन महाराजाधिराज-श्री**चन्द्रगुप्तस्य देवराज** इति प्रि-

८. य-ना[म्नः*] * * * * * रितस्य सर्व्व-गुण-संपत्तये यावच्चन्द्रादित्यौ तावत्पञ्च भिक्षवो भुंज-

९. तां र[त्न*]-गृ[हे*] [च*] [दी*][प]को ज्वलतु [।*] मम चापरा-र्द्धात्पञ्चैव भिक्षवो भुंजतां रत्न-गृहे च

१०. दीपक इ[ति] [।।*] [त]देतत्प्रवृत्तं य उच्छिन्द्यात्स गो-ब्रह्म-हत्यया संयुक्तो भवेचेत्पञ्चभिश्चान-

११. न्तर्य्यैरिति [।।*] **सं** ९० (+*) ३ भाद्रपद-दि ४ [।।*]

मथुरा शिला लेख

सर्व राजोच्छेत्ता पृथिव्यां अप्रतिरथस्य चतुरुदधि सलिल स्वादित यशसो धनद वरुढ़ इंद्रान्तक समस्य कृतांतपरक्षोः न्यायागतानेक गो हिरण्य काटि प्रदस्य चिरोत्सन्ता अश्वमेधाहर्तुः महाराज

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

श्री गुप्त प्रपौत्रस्य महाराज श्री घटोत्कच पौत्रस्य महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त पुत्रस्य लिच्छवि दौहित्रस्य महादेव्यां कुमारदेव्यां उत्पन्नस्य महाराजाधिराज श्री समुद्र गुप्त पुत्रेण तत्परिग्रहितन महादेव्यां दत्तदेव्यां उत्पन्नेन परमभागवतेन महाराजाधिराज श्री (चंद्रगुप्तेन)

(शेष नष्ट हो गया है।)

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

प्रथम कुमारगुप्त के लेख

भिलसद शिला-स्तंभ लेख (गु० स० ९६)

१. [सिद्धम् ।।*] [सर्व्व-राजोच्छेत्तुः पृथिव्यामप्रतिथरस्य चतुरुदधि-स*] [लिला]-स्वादित-यशसो

२. [धनद-वरुणेन्द्रान्तक-समस्य कृतान्त-परशोः न्यायागतानेकगो-हि*]-रण्यकोटिप्रदस्य चिरोत्सन्नाश्वमेधाहर्त्तुः

३. [महाराज-श्रीगुप्त-प्रपौत्रस्य महाराज-श्रीघटोत्कच-पौत्रस्य० म*] [हा]राजाधिराज-श्री चन्द्रगुप्त पुत्रस्य

४. लिच्छ[वि-दौहित्रस्य*] महादेव्यां कुमारदेव्यामुत्पन्नस्य महाराजा*] धिराज-श्रीसमुद्रगुप्त-पुत्रस्य

५. महादेव्यां दत्त[देव्यामुत्पन्नस्य] [स्वयमप्रतिरथस्य*] [परम*]-भागवतस्य महाराजाधिराज-श्री चन्द्रगुप्त-पुत्रस्य

६. महादेव्यां ध्रुवदेव्यामुत्पन्नस्य महाराजाधिराज-श्रीकुमारगुप्तस्याभि-[व]र्द्धमानविजय-राज्य-संवत्सरे षण्णवते

७. [अस्यान्दि]वस-पूर्व्वायां भगवतस्त्रैलोक्य-तेजस्संभार-संतताद्भुत-मूर्त्तेर्ब्रह्मण्यदेवस्य

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

८. * * * * निवासिनः स्वामि-**महासेन**स्यायतने-
[ऽ*]स्मिन्कार्त्तयुगाचार-सद्धर्म्म-वर्त्मानुयायिना [।।*]

९. [माता] * * * * * * [प]र्षदा [।*]
मानितेन **ध्रुवशर्म्मणा** कर्म्म महत्कृतेदम् । [।*]

१०. कृ[त्व]ा [नेत्र*]ाभिरामां मु[नि-वसति][मिह*] [स्व]र्ग्ग-सोपान-[रू]पां ।
कौबेरच्छन्दबिम्बां स्फटिकमणिदलाभास-गौरां प्रतोलीम् ।

११. **प्रासादाग्राभिरूपं गुणवर-भवनं** [धर्म-स*]त्रं **यथावत्** ।
पुण्येष्वेवाभिरामं व्रजति शुभमतिस्तात-**शर्म्मा** ध्रुवो(ऽ*)स्तु ।[।*]

१२. — ा — ी र ‿ —शुभामृतवर-प्रख्यात-ल[ब्धा भुवि] ।
ˋ— ˋ— भक्तिरहीन-सत्व-समता कस्तं न संपूजयेत् ।

१३. [येनापूर्व्व*]-विभूति-सञ्चय-चयैः शैली— ‿ — — ‿ — : ।
तेनायं ध्रुवशर्म्मण स्थिर-वरस्तभो[च्छ्र]यः कारितः ।[।*]

गढ़वा लेख (गु० स० ९८)

जितंभगवता । परमभागवत महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्त राज्य-
संम्वतसरे ९० + ८ अस्यां दिवस पूर्व्वायां ...

... ...

आत्मपुण्योपचयार्थम्

... ... कल्याण सदसत्र

... ... कस्य तलक निवसे

... ... दिनाराः द्वादश

... ... स्यांकुरोद्धस्त संयुक्तः स्यादिति

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

उदयगिरि गुहा लेख (गु० स० १०६)

१. नमः सिद्धेभ्यः [।।*] श्री-संयुतानां गुण-तोयधीनां गुप्तान्वयानां नृप-सत्तमानां

२. राज्ये कुलस्याभिविवर्द्धमाने षड्भिर्य्युते वर्ष-शते [ऽ*]थ मासे [।।१।।] सु-कार्त्तिके बहुल-दिने [ऽ*]थ पंचमे

३. गुहा-मुखे स्फट-विकटोत्कटामिमां [।*] जित-द्विषो जिन-वर-पार्श्व-संज्ञिकं जिनाकृतिं शम-दमवान-

४. चीकरत् [।।२*।।] आचार्य्य-भद्रान्वय-भूषणस्य शिष्यो ह्यसावार्य्य-कुलोद्गतस्य [।*] आचार्य्य-गोश-

५. र्म्म-मुनेस्सुतस्तु पद्मावतावश्वपतेर्भटस्य [।।३*।।] परैरजेयस्य रिपुघ्न-मानिनस्स सङ्घि-

६. लस्येत्यभिविश्रुतो भुवि [।*] स्व-संज्ञया शङ्कर-नाम-शब्दितो विधान युक्तं यति-मा-

७. र्ग्गमास्थितः (४) स उत्तराणां सदृशे कुरुणां उदग्दिशा बेश वरे प्रस्तूतः। क्षयाय कर्म्मारिमणस्य धीमान् यदत्र पुण्यं तदपासस्सज्जं (५)

धानाइदह ताम्रपत्र लेख (गु० स० ११३)

१. ·········[स*]म्वत्सर-श[ते] त्रयोदशोत्त[रे*]

२. १०० + १० + ३*]···[अस्या*][न्दि]वस-पूर्व्वायां परमदैवत-पर-

३. म-भट्टारक-महाराजाधिराज-श्रीकुमारगुप्तः*]···कुटु[म्बि]···ब्राह्मण-शिवशर्म्म-नागशर्म्म-मह-

४. ·········वकीर्त्ति-क्षेमदत्त-गोष्ठक-वर्ग्गपाल-पिङ्गल-शुङ्कक-काल-

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

५. ....विष्णु-[देव]शर्म्म-विष्णुभद्र-खासक-रामक-गोपाल-

६. ....श्रीभद्र-सोमपाल-रामाद्यक(?)-ग्रामाष्टकुलाधिकरणञ्च

७. ....विष्णुना(?णा) विज्ञापिता इह **खाटा(टा?)पार-** विषये(ऽ*)नुवृत्त-मर्य्यादास्थि[ति]-

८. ...नीवीधर्म्म-क्ष(क्क?)येण लभ्य[ते] [।*] [त]दर्हथ ममांद्यानेनैव क्क्रमेन(?ण) दा[तु]

९. ......समेत्या(?)भिहितै(:*) सर्व्वमेव * * कर-प्रतिवेशि(?)-कुटुम्बि-भिरवस्थाप्य क-

१०. ...... * रि * कन * यदितो * * [त]दवधृतमिति यतस्तथेति प्रतिपाद्य

११. ....[अष्टक-न*]वक-नला[भ्या]मपविञ्छ्य क्षेत्र-कुल्यवापमेकं दत्तं [।*] ततः आयुक्तक-

१२. ...... * **भ्रा(?)तृकटक**-वास्तव्य-छन्दोग-ब्राह्मण-वराहस्वामिनो दत्तं [।*] त[द्भव]-

१३. ....भूम्या दा[नाक्षे]पे च गुणागुणमनुचिन्त्य शरीर-क[ा*] ञ्चनकस्य चि-

१४. [र-चञ्चलत्वं*]......... [।।*] [उ]क्तञ्च भगवता द्वैपायनेन [।*] स्वदत्ताम्परदत्ताम्वा

१५. [यो हरेत वसुन्धरां ।*]
[स विष्ठायां कृमिर्भूत्वा पितृ*]भिः सह पच्यते [।।*]
षष्टिं वर्षं-सहस्राणि स्वर्ग्गे मोदति [भू]मिदः [।*]

१६. [आक्षेप्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत् ।।*]
[पू*]र्व्वंदत्तां द्विजातिभ्यो यत्नाद्रक्ष युधिष्ठिर [।*]
महीं [मही][मताञ्छ्रेष्ठ*]

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

१७. [दानाच्छ्रेयोऽनुपालनं ।।*]
..................यं...भद्रेन उत्कीर्णा स्थम्भेश्वरदासे[न] [।।*]

मथुरा लेख (गु० स० ११३)

सिद्धं । परमभट्टारक महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्तस्य विजय
राज्य सं० १०० + १० + ३—तमदिवस २०
अस्यां पूर्व्वायां कोट्टिणा गणा द्विधा

तुमैन शिलालेख (गु० स० ११६)

१. रिर्य्यस्य लोक त्रयान्ते । चरणकमलं मत्स्यं वन्द्यते सिद्ध सिद्धैः
राजा श्रीचंद्रगुप्तस्तदनु जयतियो मेदिनी सागरान्ताम् ।

२. श्रीचंद्रगुप्तस्य महेन्द्र कल्पः कुमारगुप्तः तनयः समग्रां (–) ररक्ष
साध्वीमिव धर्म्मपत्नीम् वीर्य्याग्रहैः तैरुपगुह्य भूमिम् ।

३. (– –) गौरः क्षित्यम्बरे गुणसमूह मयूखजालो नाम्नोदिततस्स तु
घटोत्कचगुप्तचंद्रः (–) स पूर्व्वजानां स्थिर सत्व कीर्त्तिर्भुजार्ज्जितां
कीर्त्तिमभिप्रपद्य

४. गुप्तान्वयांनां वसुधरेश्वराणाम् समाशते षोड़शवर्ष युक्ते । कुमारगुप्ते
नृपतौ पृथिव्याम् विराजमाने शरदीव सूर्य्यं । वटोदके साधु
जनाधिवासे

५. ते श्रीदेव इत्यर्ज्जितनामधेयः ।। तदग्रजोभूद्धरि देव संज्ञस्ततोनुजो
यस्तु सधन्य देवः । यततोवरो श्च स भद्रदेवः ततः कनीयानपि
सङ्घदेवः

६. नरुक्तचित्ताः समानवृत्ता कृति भावधीराः कृतालयाः तुम्बवने
वभूवुः । अकार यं यस्ते गिरि शृङ्ग तुङ्ग शशिप्रभं देवनिकेतन—।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

करमदांडा शिला लिंग लेख (गु० स० ११७)

१. नमो **महादेवाय** । म[हाराजाधिराज-श्री][**चन्द्रगुप्तपादा-***]-

२. नुध्यातस्य चतुधुदधि-सलिलास्वादित-य[शसो] [महाराजा*]-

३. धिराज-श्री**कुमारगुप्तस्य** विजयराज्य-**संवत्स**[र]-**शते सप्तदशोत्त**[**रे***]

४. कार्त्तिक-मास-दशम-दिवसे(ऽ*)स्यान्दिवस-पूर्व्वायां [च्छान्दोग्या-चार्य्याश्व]वाजि-

५. सगोत्र-कुरम[ा]र[व्या?]भट्टस्य पुत्रो विष्णुपालितभट्टस्तस्य पुत्रो मह[ा]र[ा]-

६. जधिराजा-श्री**चंद्रगुप्तस्य** मन्त्री कुमारामात्यशिशखरस्वाम्यभूत्तस्य पुत्रः

७. पृथिवीषेणो महाराजाधिराज-श्री**कुमारगुप्तस्य** मन्त्री कुमारामात्यो-(ऽ*)न

८. न्तरं च महाबलाधिकृतः भगवतो महादेवस्य **पृथिवीश्वर** इत्येवं समाख्यातस्या-

९. स्यैव भगवतो यथा-कर्त्तव्य-धार्म्मिक-कर्म्मणा पाद-शुश्रूषणाय भगव**च्छै-**

१०. **लेश्वरस्वामि**-महादेव-पादमूले **आयोध्यक**-नानागोत्रचरण-तपः-

१२. स्वाध्याय-मन्त्र-सूत्र-भाष्य-प्रवचन-पारग-भारडिदसमद-देवद्रोण्यां

११. ... ...

कलैकुरि ताम्रपत्र लेख (गु० सं० १२०)

१. स्वस्ति । **श्रृंगवेरवैथेयपूर्ण्ण** कौशिकायाः आयुक्त (काच्युतदासोधिक) रणञ्च हस्ति शीर्षं विभीतक्यां गुल्म गांधि

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

२. (कायां) धान्यपाटलिकायां संगो हालिषु ब्राह्मणादीन्ग्राम कुटुंबिनः कुशल मनु वर्ण्य बोधयति । बिदितं

३. भविष्यति यथा इहवीथी कुलकभीम कायस्थ प्रभुचंद्र रुद्रदासदेवदत्त लक्ष्मण क × × ×(विनयद)त्त कृष्ण

४. दासं पुस्तपाल सिंहनंदि यशोदामभिः वीथी महत्तर कुमारदेवगंड प्रजापति उभयशो रामशर्म ज्येष्ठ

५. दामस्वामिचंद्र हरिसिंह कुटुम्बि यशो विष्णु कुमार विष्णु भवकुमार-भूतिकुमार यशः +स्तवै (खि) लिनक

६. शिवकुंडवसुशिनायर शिवदामरुद्र प्रभमित्र कृष्णमित्र मधशर्म ईश्वरचंद्र रुद्रभव

७. श्रीनाथ हरिशर्म गुप्तशर्म सुशर्महरि अलातस्वामी ब्रह्मस्वामि महासेन भट्ट स्वाम्य ··········

८. र्म्मं रुष्टशर्म कृष्णदत्त नंद्रदाम भवदत्त अहिशर्म सोमविष्णु लक्ष्मण-शर्म कीर्ति विष्णु कुमशर्म शु

९. शुक्क्र शर्म सर्प्पपालित कंकुटि विश्व शंकर जयस्वामि कैवर्तशर्म्म हिमशर्म्म पुरंद्र जयविष्णु············

१०. सिंहत्त बोदनाराग्नदास वीरनागराज्य नाग गुहमहिभवनाथ गुहविष्णु-शर्व्वविष्णु वि······················कुलदास

११. श्रीगुहविष्णु रामस्वामि कामन कुंड रतिभद्र अच्युतभद्र लीढ़क प्रभकीर्ति जय दत्त कालक (?) अच्युतनरदेवभव

१२. भवरक्षित पिंचकुंड प्रवरकुंड शर्व्वदास गोपाल पुरोगाः वयं च विज्ञापिताः इह वीथ्यामप्रतिकर खिलक्षेत्र

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

१३. स्य शश्वत कालोपयोगाया क्षयनीव्या द्वि दीनारिक्य खिलक्षेत्र कुल्यावाप विक्रय मर्य्यादया इच्छेमहि प्रति

१४. प्रति मातापित्रोः पुण्याभि वृद्धये पौंड्रवर्द्धनक चातुर्व्विद्य वाजिसनेय चरणाभ्यन्तर ब्राह्मणदेव

१५. भट्ट अमरदत्त महासेनदत्तानां पंचमहायज्ञ प्रवर्तनाय नर्वकुल्या-बापन्क्रीत्वा दातु एभिरेवोप

१६. रिर्निर्दिष्टक ग्रामेषु खिलक्षेत्राणि विद्यन्ते तदर्हथा स्मतः अष्टादश दीनारान्गृहीत्वा एतान्नवकुल्यवापा—

दूसरी ओर

१७. न्यनुपादयितु यतः एषां कुलिकभीमादीनां विज्ञाप्यमुपलभ्य पुस्तपाल सिंह नन्दियशोदा (·· ······)

१८. वधारणयावधृत्वा स्त्ययमिहवीथ्या मप्रतिकार खिलक्षेत्र शश्वत कालोपभोगाया क्षयनीव्या द्वि दीनारि

१९. क्य कुल्याबाप विक्रयोनुवृत्तः तद्दीयतां नास्ति विरोधः कश्चिदित्य-वस्थाप्य कुलिक भीमादिभ्यो अष्टादश

२०. दीनारानुपसंहरित कानायीकृत्य हस्ति शीर्ष विभीतक्यां धान्य-पाटलिकायां (संगो) हालिक ग्रामेषु

२१. द्यां दक्षिणोद्देशेषु अष्टौ कुल्यवापा धान्यपाटलिक ग्रामस्य पश्चि-मोत्तरोद्देशे (सद्यः खात) परिखा वेष्टित

२२. मुत्तरेण वाटानदीपश्चिमेन गुल्मगन्धिका ग्राम सीमानमिति + कुल्यवाप एको गुल्मगन्धिकायां पूर्व्व

२३. णाद्यपथः पश्चिमप्रदेशे द्रोणवापद्वयं: हस्तिशीर्ष प्रावेश्य तापसपोत्तके दयिता पोत्तकेच वि

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

२४. भीतक प्रावेश्यचित्रवातंगरे (च) कुल्यवापाः सप्तद्रोणवापाः षट ऐषु यथोपरिनिर्दिष्टीक ग्रामप्रदेशे

२५. शेष्वेषां कुलिक भीमकायस्थ प्रभुचंद्र रुद्रदासादीनां मातापित्रौः पुण्याभिवृद्धये ब्राह्मण

२६. देवभट्टस्य कुल्यवापा पंच (कुल ५) अमरदत्तस्य कुल्यवापद्वयं महासेन-दत्तस्य कुल्यवापद्वयं

२७. कु एषां त्रयाणां पंचमहायज्ञप्रवर्तनाय नवकुल्यावापानि प्रदत्तानि। तंद्यु ष्माकं

२८. ति लिख्यते च समुपस्थितकालयेप्यत्ते विषयपतयः आमुक्तकाः कुटुम्बिनोधिकरणिका वा समन्वय

२९. हारिणो भविष्यन्ति तैरपि भूमिदान फलमवेश्य अक्षयनीव्यानु-पालंनीया। उक्तं च महाभारते भगव

३०. ता व्यासेन

स्वदत्ता परदत्तांबा यो हरेत वसुंधरां
स विष्टायां क्रिमिर्भूत्वा पितृभिः सह पच्यते
षष्टिवर्ष सहस्राणि स्वर्गे वसति भूमिदः

३१. आक्षेप्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत् कृशाय कृशवत्तये वृत्तिं

३२. (भूमिः) वृत्तिकरीन्दत्वा सुखी भवतिकायदः

बहुमिर्वसुधाभुक्ताभुज्यते च पुनःपुनः यस्ययस्ययदाभूमिः तस्य तस्य

दामोदरपुर ताम्रपत्र लेख (गु० सं० १२४)

१. **सम्व**.१०० (+*) २० (+*) ४ फाल्गुण-दि ७ परमदैवत परमभट्टारक-महाराज[ा*]-

२. धिराज-श्री**कुमारगुप्ते** पृथिवी-पतौ तत्पाद-परिगृहीते **पुण्ड्रवर्द्ध** [न*]-

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

३. भुक्तादुपरिक-**चिराततदतेना**नुवलवानक-**कोटिवर्ष**-विषये च त-

४ न्नियुक्तक-कुमारामात्य-वेत्रवर्मन्यघिष्ठाणाधिकरणञ्च नगरश्रे ष्ठि-

५. धृतिपाल-सार्त्थवाहवन्धुमित्र-प्रथमकुलिकधृतिमित्र-प्रथमका[य*]-

६. स्थशाम्बपाल-पुरोगे संव्यवहरति यतः ब्राह्मण-कर्प्पटिकेण

७. विज्ञापित(ं*) अरर्हथ ममाग्निहोत्रोपयोगाय अप्रदाप्रहत-खि-

८. ल-क्षेत्र[ं*] त्रदीनारिक्य-कुल्यवापेण शश्वताचंद्रार्क्क-तारक-भोज्ये[त*]-

९ या नीवी-धर्म्मेण दातुमिति एवं दीयतामित्युत्पन्ने त्रिनी दीना[राण्यु*]-

१०. पसंगृह्य यतः पुस्तपाल-रिशिदत्त-जयनन्दि-विभुदत्तानामवधा-

११. रणया **डोङ्गाया** उत्तर-पश्चिमद्देशे कुल्यवापमेकम् दत्तम् [।।*]

१२. स्व-दत्तां पर-दत्ताम्बा यो हरेत वसुन्धरां [।*]
भूमि-[दान]-संबद्धा[ः*] श्लोका भवन्ति [।*]

१३. स विष्ठायां क्रिमिभूंत्वा पित्रिभि सह पच्यतेति [।।*]

दामोदरपुर ताम्रपत्र लेख (गु० सं० १२८)

१. स[ं] १०० (+*) २० (+*)८ वैशाख-दि १०(+*) ३ पर[मदैव]त-परमभट्टारक-महाराजाधिराज-[श्री][**कुंमा***]-

२. **रगुप्ते** पृथिवी-पतौ [तत्पाद]-परिगृहीतस्य **पु[ण्ड्र]वर्द्धन**-भुक्तावुप [रिक-**चि**]**रात-दत्त**[**स्य**]

३. भोगेना[नुव]ह[मानक]-**कोटिव**[**र्ष**]-विषये तन्नियुक्तक-कु[मा]रामात्य-वे[त्र]-

४. वर्म्मणि अधिष्ठाना[धिक]र[णञ्च] नगर[श्रे]ष्ठिधृतिपाल-सार्थवा [हवन्धुमि]त्र-प्र[थ]-

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

५. मकुलिकधृतिमित्र-[प्रथ]मकायस्थ[शाम्ब]पाल-पुरो[गे] सम्व्यव[हर] ति [यतः*] स···

६. विज्ञापितं अ[र्हं]थ मम प[ञ्च]-महायज्ञ-प्रवर्त्तनायानुवृत्ताप्रदाक्षयनि [वी*]-

७. मर्य्यादया दातुमिति एतद्विज्ञाप्यमुपलभ्य पुस्तपा[ल]-रिसिदत्त-जयन [न्दि-वि]-[भुदत्तानामव*]-

८. धारणया दीयतामित्यु[त्प]न्ने एतस्माद्य[था]नुवृत्त-त्रैदीनारि[क्य-कु] ल्यवापे[न]

दूसरी ओर

९. [द्व]यमुप[संगृ]ह्य **ऐरा]वता[गो]राज्ये** पश्चिम-दिशि पञ्चद्रो[णा]-

१०. [म]काः ह[ट्ट]-पानकैश्च सहितेति दत्ताः [।*] तदुत्तर-कालं सम्व्य्-वहारिभिः [धर्म्ममवेक्ष्या]नु[म]-

११. न्तव्याः [।*] अपि च भूमि-दान-सम्वद्धामिमौ श्लोकौ भवतः [।*] पूर्व-दत्तां द्विजाति[भ्यो]

१२. यत्नाद्रक्ष युधिष्ठिर [।*]
महीं महीवतां श्रेष्ठ दानाच्छ्रेयो(ऽ*)नुपा(ल*)नं [॥*]
वहुभिर्व्वसुधा दत्ता दी[य]ते च

१३. पुनः पुनः [।*]
यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलमिति [॥*]

मनकुवार प्रस्तर बौद्ध प्रतिमा लेख (गु० सं० १२९)

१. १॰ नमो बुधान [।*] भगवतो सम्यक्सम्बुद्धस्य स्व-मताविरुद्धस्य इयं प्रतिमा प्रतिष्ठापिता भिक्षु-**बुद्धमित्रेण**

२. **सम्बत् १०० (+*)२० (+*) ९ महाराज-श्रीकुमारगुप्तस्य राज्ये** ज्येष्ठमास-दि १० (+*)८ सर्व-दुःक्ख-प्रहानार्त्थम् [॥*]

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

गढ़वा शिला लेख

जितं भगवता । परमभागवत महाराजाधिराज
श्री कुमारगुप्त राज्य संम्वतसरे ... ...
दिवसे १० अस्मां दिवस पूर्व्वायां ... ...
... ...
सद सत्र सामान्य ... ...
दत्त दिनारः १० ... ...
सत्रे च दिनार ... ...
... स पंचमहापातकैः संयुक्तैः
स्यादिति ... ...
गोविन्द लक्ष्मा ... ...

मन्दसोर शिला लेख (मालव संवत् ४९३ एवं ५२९)

१. [सिद्धम् ।।]
[यो] [वृत्यर्त्थं]मुपास्यते सुर-गणै[स्सिद्धै श्च] सिद्धर्यत्थिभि-
र्द्ध्यानैकाग्र-परैर्व्विधेय-विषयैर्म्मोक्षार्त्थिभिर्य्योगिभिः ।
भक्तया तीव्र-तपोधनैश्च मुनिभिश्शाप-प्रसाद-क्षमै-
र्हेतुर्य्यो जगत ✕ क्षयाभ्युदययो⌒पायात्सवो **भास्करः** ।[।*]
तत्व-ज्ञान-विदो(ऽ*)पि यस्य न विदुर्ब्रह्मर्ष-

२. यो(ऽ*)भ्युद्यता
✕ कृत्स्नं यश्च गभस्तिभिः प्रवृसृतै⌒पु[ष्ण]ाति लोक-त्रयम् ।
ग[न्ध]र्व्वामर-सिद्ध-किन्नर-नरैस्संस्तूयते(ऽ*)भ्युत्थितो
भक्तेभ्यश्च ददाति यो(ऽ*)भिलषितं तस्मै **सवित्रे** नमः ।[।*]

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

य⏝[प्र]त्यहं प्रतिविभात्युदयाचलेन्द्र-
विस्तीर्ण्ण-तुङ्ग-शिखर-स्खलितांशुजालः [।*]
क्षीबाङ्गना-

३. जन-कपोल-तलाभिताम्र-
⏝पायात्स वस्सु[कि]रणाभ[रणो] विवस्वान् ।[।*]
कुसुमभरानततरुवर-देवकुल-सभा-विहार-रमणियात् ।
लाट-विषयान्नागावृत-शैलाज्जगति प्रथित-शिल्पाः ।[।*]
ते देश-पार्त्थिव-गुणापहृताः प्रकाश-
मद्ध्वादिजान्यविरलान्यसुखा-

४. न्यपास्य ।
जातादरा **दशपुरं** प्रथमं मनोभि-
रन्वागतास्ससुत-बन्धु-जनास्समेत्य ॥
मत्तेभ-गण्ड-तट-विच्युत-दान-बिन्दु-
सिक्तोपलाचल-सहस्र-विभूषाणायाः [।*]
पुष्पावनम्र-तरु-मण्ड-वतंसकाया
भूभे⏝परन्तिलक-भूतमिदं क्रमेण ॥
तटोत्थ-वृक्ष-च्युत-

५. नैक-पुष्प-
विचित्र-तीरान्त-जलानि भान्ति ।
प्रफुल्ल-पद्माभरणानि यत्र
सरांसि कारण्डव-संकुलानि ।
विलोल-वीची-चलितारविन्द-
पतद्रजः-पिञ्जरितैश्च हंसैः ।
स्व-केसरोदार-भरावभुग्नैः

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

क्वचित्सरांस्यम्बुरुहैश्च भान्ति ।[।*]
स्व-पुष्पभारावनतैर्न्नगेन्द्रै-
र्मंद-
६. प्रगल्भालि कुल-स्वनैश्च ।
अजस्रगाभिश्च पुराङ्गनाभि-
र्व्वनानि यस्मिन्समलंकृतानि ।।*
चलत्पताकान्यबला-सनाथा-
न्यत्यर्त्थशुक्लान्यधिकोन्नतानि ।
तडिल्लता-चित्र-सिताभ्र-कूट-
तुल्योपमानानि गृहाणि यत्र ।।
कैलास-तुङ्ग-शिखर-प्रतिमानि चान्या-
न्याभान्ति दीर्ग्घ-बलभी-
७. नि सवेदिकानि ।
गान्धर्व्व-शब्द-मुखरानि निविष्ट-चित्र-
कर्म्माणि लोल-कदली-वन-शोभितानि ।
प्रासाद-मालाभिरलंकृतानि
धरां विदार्य्यैव समुत्थितानि ।
विमान-माला-सहशानि यत्र
गृहाणि पूर्ण्णेन्दु-करामलानि ।।*
यद्भात्यभिरम्य-सरिद्वयेन चपलोर्म्मिणा समुपगूढं [।]
८. रहसि कुच-शालिनीभ्यां प्रीति रतिभ्यां स्मराङ्गमिव ।
सत्य-[क्षमा]-दम-शम-व्रत-शौच-धैर्य्य-
[स्वाद्ध्या]य-वृत्त-विनय-स्थिति-बुद्ध्युपेतैः ।
विद्या-तपो-निधिभिरस्मयितैश्च विप्रै-
र्य्यद्भ्राजते ग्रहगणै × खमिव प्रदीप्तैः ।।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

अथ समेत्य निरन्तर-सङ्गतै-
रहरहः-प्रविजृम्भित-

९. सौहृदाः [।*]
नृपतिभिस्सुतवत्प्रतिम[ा]निताः
प्रमुदिता न्यवसन्त सुखं पुरे ॥
श्रवण-[सु]भग[ं] ध[ा]नुर्व्वे[द्यं] दृढ़ं परिनिष्ठिताः
सुचरित-शतासङ्गा × केचिद्विचित्र-कथाविदः ।
विनय-निभृतास्सम्यग्धर्म्म-प्रसङ्ग-परायणा-
प्रियमपरुषं पत्थ्यं चान्ये क्षमा बहु भाषितुं ॥

१०. केचित्स्व-कर्म्मण्यधिकास्तथान्यै-
र्व्विज्ञायते ज्योतिषमात्मवद्भिः ।
[अद्यापि] चान्ये समर-प्रगल्भा-
[× कु]र्व्वन्त्यरीणामहितं प्रसह्य ।[*]
प्राज्ञा मनोज्ञ-वधवः प्रथितोरुवंशा
वंशानुरूप-चरिताभरणास्तथान्ये ।
सत्यव्रताः प्रणयिनामुपकार दक्षा
विस्रम्भ-

११. [पूर्व्वं]मपरे दृढ-सौहृदाश्च ॥
विजित-विषय-सङ्गैर्द्धर्म्म-शीलैस्तथान्यै-
[मृ]दुभि[रधि]क-स[त्वैर्ल्लोकयात्रा]मरैश्च ।
स्व-कुल-तिलक-भूतैर्मुक्तरागैरुदारै-
रधिकमभि[वि]भाति श्रेणिरेवंप्रकारैः ॥
तारुण्य-कान्त्युपचितो(ऽ*)पि सुवर्ण्ण-हार-
तांबूल-पुष्प-विधिना सम-

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

१८. चन्दन-तालवृन्त-
हारोपभोध-रहिते हिम-दग्ध-पद्मे ॥
रोद्ध्र प्रियंगुतरु कुन्दलता-विकोश-
पुष्पा[सव] प्रमु[दि]तालि-कलाभिरामे ।
काले तुषार कण-कर्क्कश-शीत-वात-
वेग-प्रनृत्त-लवली-नगणैकशाखे ॥
स्मर-वशग-तरुणजन-वल्लभाङ्गना-विपुल-कान्त-पीनोरु-

१९. स्तन-जघन-घनालिङ्गन निर्भर्त्सित-तुहिन-हिम-पाते ॥
[मा]लवानां गण-स्थित्या या[ते] शत-चतुष्टये ।
त्रिनवत्यधिके[ऽ*]ब्दानाम्रितौ सेव्य-घनस्तने ॥
सहस्यमास-शुक्लस्य प्रशस्ते(ऽ*)ह्नि त्रयोदशे ।
मङ्गलाचार-विधिना प्रासादो (ऽ*)यं निवेशितः ॥
बहुना समतीतेन

२०. कालेनान्यैश्च पर्त्थिवैः ।
व्यशीर्य्यतैकदेशो(ऽ*)स्य भवनस्य ततो(ऽ*)धुना ॥
स्वयशो-[व्रिद्धये सर्व्वमत्युदा]रमुदारया ।
संस्कारितमिदं भूयः **[श्रेण्या)** भानुमतो गृहं ॥
अत्युन्नतमवदातं नभः(:*)स्पृशन्निव मनोहरैश्शिखरैः ।
शशि-भान्वोरभ्युदयेष्वमल-मयूखायतन-

२१. भूतं ॥
वत्सर-शतेषु पंचसु विशंत्यधिकेषु नवसु चाब्देषु ।
यातेष्वभिरम्य-[तप]स्यमास-शुक्ल-द्वितीयायां ॥
स्पष्टैरशोकतरु-केतक-सिंदुवार-
लोलातिमुक्तकलता-मदयंतिकानां ।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

पुष्पोद्गमैरभिनवैरधिगम्य नून-
मैक्यं विजृंभित-शरे हर-पूत-देहे ॥

२२. मधुपान-मुदित-मधुकर-कुलोपगीत-नगनैक-पृथु-शाखे ।
काले नव-कुसुमोद्गम-दंतुर-कांत-प्रचुर-रोध्रे ॥
शशिनेव नभो विमलं कौ[स्तु]भ-मणिनेव शार्ङ्गिणो वक्षः ।
भवन-वरेण तथेदं पुरमखिलमलंकृतमुदारं ॥
अमलिन-शशि-

२३. लेखा-दंतुरं पिङ्गलालां ।
परिवहति समूहं यावदीशो जटानां ।
वि[कच-क]मल-मालामंस-सक्तां च शार्ङ्गी
भवनमिदमुदारं शाश्वतन्तावदस्तु ॥
श्रेण्यादेशेन भक्त्या च कारितं भवनं रवेः ।
पूर्वा चेयं प्रयत्नेन रचिता **वत्सभट्टिना** ॥

२४. स्वस्ति कर्तृ-लेखक-वाचक-श्रोतृभ्यः ॥ सिद्धिरस्तु ॥

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

स्कंदगुप्त के अभिलेख

जूनागढ़ शिला लेख (गु० स० १३६, १३७, व १३८)

खण्ड १

१. सिद्धम् [।।*] श्रियमभिमत-भोग्यां नैक-कालापनीतां त्रिदश-पति-सुखार्त्थं यो बलेराजहार। कमल-निलयनायाः शाश्वतं धाम लक्ष्म्याः

२. स जयति विजितार्त्तिर्व्विष्णुरत्यन्त-जिष्णुः ।।[१*] तदनु जयति शश्वत् श्री-परिक्षिप्त-वक्षाःस्व-भुज-जनित-वीर्यो राजराजाधि-राजः। नरपति-

३. भुजगानां मान-दर्प्पोत्फणानां प्रतिकृति-गरुडा [ज्ञां] निर्व्विषी (षीं) चावकर्त्ता ।।[२*] नृपति-गुण-निकेतः **स्कन्दगुप्तः** पृथु-श्री चतुरु-[दधि-जला]न्तां स्फीत-पर्यन्त-देशाम्।

४. अवनिमवनतारिर्यः चकारात्म-संस्थां पितरि सुर-सखित्वं प्राप्त-वत्यात्म-शक्त्या ।।[३*] अपि च जित[मे]व तेन प्रथयन्ति यशांसि

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

यस्य रिपवो [ऽ*]पि [।*] आमूल-भग्न-दर्प्पा नि[वंचना ?
म्लेच्छ-देशेषु] ॥[४*]

५. क्रमेण बुद्धया निपुणं प्रधार्य ध्यात्वा च कृत्स्नान्गुण-दोष-हेतून् ।
व्यपेत्य सर्वान्मनुजेन्द्र-पुत्रांल्लक्ष्मीः स्वयं यं वरयांचकार ॥[५*]
तस्मिन्नृपे शासति नैव कश्चिद्धर्म्मादपेतो मनुजः प्रजासु ।

६. आर्त्तो दरिद्रो व्यसनी कदर्यो दण्डो(ण्ड्यो) न वा यो भृश-
पीडितः स्यात् ॥[६*] एवं स जित्वा पृथिवीं समग्रां भग्नाग्र-
दर्पा[न्] द्विषतश्च कृत्वा । सर्व्वेषु देशेषु विधाय **गोप्तृ**(**प्तृ**)**न्**
संचिन्तया[मा]स बहु-प्रकारम् ॥[७*]स्यात्को [ऽ*]नुरूपो

७. मतिमान्विनि(नी)तो मेधा-स्मृतिभ्यामनपेत-भावः । सत्यार्ज-
वौदार्य-नयोपपन्नो माधुर्य-दाक्षिण्य-यशो-[ऽ*]न्वितश्च ॥[८*]
भक्तो [ऽ*]नुरक्तो नृ-[विशे]ष-युक्तः सर्व्वोपधाभिश्च विशुद्ध-बुद्धिः ।
आनृण्य-भावोपगतान्तरात्माः(त्मा) सर्व्वस्य लोकस्य हिते
प्रवृत्तः ॥[९*]

८. न्यायार्जने [ऽ*]र्थस्य च कः समर्थः स्यादर्जितस्याप्यथ रक्षणे च ।
गोपायितस्यापि [च] वृद्धि-हेतौ वृद्धस्य पात्र-प्रतिपादनाय ॥[१०*]
सर्व्वेषु भृत्येष्वपि संहतेषु यो मे प्रशिष्यान्निखिलान्सुराष्ट्रान् । आं
ज्ञातमेकः खलु **पर्णदत्तो** भारस्य तस्योद्वहने समर्थः ॥[११*]

९. एवं विनिश्चित्य नृपाधिपेन नैकानहो-रात्र-गणान्स्व-मत्या । यः
संनियुक्तो [ऽ*]र्थनया कथंचित् सम्यक्सुराष्ट्रावनिपाल-
नाय ॥[१२*] नियुज्य देवा वरुणं प्रतीच्यां स्वस्था यथा नोन्म-
नसो बभूवु[ः] [।*] पूर्व्वेतरस्यां दिशि **पर्णदत्तं** नियुज्य राजा
धृतिमांस्तथा [ऽ*]भूत् ॥[१३*]

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

१०. तस्यात्मजो ह्यात्मज-भाव-युक्तो द्विधेव चात्मात्म-वशेन नीतः। सर्व्वात्मना [ऽऽ*]त्मेव च रक्षणीयो नित्यात्मवानात्मज-कान्त-रूपः। (॥) [१४*] रूपानुरूपैर्ललितैर्विचित्रैः नित्य-प्रमोदान्वित-सर्व-भावः। प्रबुद्ध-पद्माकर-पद्म-वक्त्रो नृणां शरण्यः शरणागतानाम्। ॥[१५*]

११. अभवद्भुवि **चक्रपालितो** [ऽ*]सावि‍ति नाम्ना प्रथितः प्रियो जनस्य। स्व-गुणैरनुपस्कृतैरुदा[त्तैः] पितरं यश्च विशेषयांचकार। (॥) [१६*] क्षमा प्रभुत्वं विनयो नयश्च शौर्यं विना शौर्य-मह[ा ?]र्च्चनं च। दाक्ष्यं (?) दमो दानमदीनता च दाक्षिण्यमानृण्यम[शू]न्यता च। (॥) [१७*] सौंदर्यमार्येतर-निग्रहश्च अ-विस्मयो धैर्यमुदीर्णता च।

१२. इत्येवमेते [ऽ*]तिशयेन यस्मिन्नविप्रवासेन गुणा वसन्ति। (॥) [१८*] न विद्यते [ऽ*]सौ सकले [ऽ*]पि लोके यत्रोपमा तस्य गुणैः क्रियेत। स एव कात्स्न्येंन गुणान्वितानां बभूव नृ(नॄ)णामुपमान-भूतः। (॥) [१९*] इत्येवमेतानधिकानतो [ऽ*]न्यान्गुणान्प[री]क्ष्य स्वयमेव पित्रा। यः संनियुक्तो नगरस्य रक्षां विशिष्य पूर्वान्प्रचकार सम्यक्। (॥) [२०*]

१३. आश्रित्य वि(वी)यं [स्वभु]ज-द्वयस्य स्वस्यैव नान्यस्य नरस्य दर्पं। नोद्वेजयामास च कंचिदेवमस्मिन्पुरे चैव शशास दुष्टाः(न्)। (॥) [२१*] विस्रंभमल्पे न शशाम यो [ऽ*]स्मिन्काले न लोकेषु स-नागरेषु। यो लालयामास च पौर-वर्गान् [पितेव ?]-पुत्रान्सुपरीक्ष्य दोषान्। (॥) [२२*] संरंज्यां च प्रकृतीर्बभूव पूर्व्व-स्मिताभाषण-मान-दानैः।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

१४. निर्यन्त्रणान्योन्य-गृह-प्रवेशै[:] संवर्द्धित-प्रीति-गृहोपचारैः । (॥) [२३*] ब्रह्मण्य-भावेन परेण युक्तः शुक्लः शुचिर्दान-परो यथा-वंत् । प्राप्यान्स काले विषयान्सिषेवे धमार्थयोश्चा[प्य*]विरोध-नेन । (॥) [२४*] यो [ऽ*जायतास्मात्खलु?] पर्णदत्तात्स न्यायवा-नन्न किमस्ति चित्रं । मुक्ता-कलापाम्बुज-पद्म शीताच्चन्द्रात्कि-मुष्णं भविता कदाचित् । (॥) [२५*]

१५. अथ क्रमेणाम्बुद-काल आग[ते नि]दाघ-कालं प्रविदार्य तोयदैः । ववर्ष तोयं बहु संततं चिरं सुदर्शनं येन बिभेद चात्वरात् । (॥) [२६] संवत्सराणामधिके शते तु त्रिंशद्भिरन्यैरपि षड्भि-रेव । रात्रौ दिने प्रौष्ठपदस्य षष्ठे **गुप्त-प्रकाले गणनां विधाय** । (॥) [२७*]

१६. इमाश्च या रैवतकाद्विनिर्गता[ः*] पलाशिनीय सिकता-विला-सिनी । समुद्रकान्ताः चिर-बन्धनोषिताः पुनः पतिं शास्त्र-यथो-चितं ययुः । (॥) [२८] अवेक्ष्य वर्षागम-जं महोद्भ्रमं महोदधे-रूर्जयता प्रियेप्सुना । अनेक-तीरान्तज-पुष्प-शोभितो ।

१७. नदीमयो हस्त इव प्रसारितः । (॥)[२९*] विषाद्य[मानाः खलु सर्वतो ज]नाः कथं-कथं कार्यमिति प्रवादिनः । मिथो हि पूर्वापर-रात्रमुत्थिता विचिन्तयां चापि बभूवुरुत्सुकाः । (॥) [३०] अपीह लोके सकले सुदर्शनं पुमां (मान्) हि दुर्दर्शनतां गतं (तः) क्षणात् ।

१८. भवेन्नु सो [ऽ*]म्भोनिधि-तुल्य-दर्शनं सुदर्शनं [– ⏑ ⏑ – ⏑ – ⏑ –] [॥३१*] [⏑ – ⏑ – – ⏑]वणे स भूत्वा पितुः परां भक्तिमपि प्रदर्श्य । धर्मं पुरोधाय शुभानुबन्धं राज्ञो हितार्थं नग-रस्य चैव । (॥) [३२*] संवत्सराणामधिके शते तु]

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

१६. त्रिंशद्भिरन्यैरपि सप्तभिश्च। [गुप्त-प्रकाले नय]-शास्त्रवेत्ता विश्वो [ऽ*]प्यनुज्ञात-महाप्रभावः। (॥) [३३*] आज्य-प्रणामैः विबुधानथेष्ट्वा धनैर्द्विजातीनपि तर्पयित्वा। पौरांस्तथा [ऽ*]भ्यर्च्य यथार्ह-मानैःभृत्यांश्च पूज्यान्सुहृदश्च दानैः। (॥)[३४*]

२०. ग्रैष्मस्य मासस्य तु पूर्व-प[क्षे] [⏑ – ⏑ – – प्र]थमे [ऽ*]ह्नि सम्यक्। मासद्वयेनादरवान्स भूत्वा धनस्य कृत्वा व्ययमप्रमेयम्। (॥)[३५*] आयामतो हस्त-शतं समग्रं विस्तारतः षष्टिरथापि चाष्टौ।

२१. उत्सेधतो [ऽ*]न्यत् पुरुषाणि [सप्त ?⏑ – ⏑ – ह]स्त-शत-द्वयस्य। (॥)[३६*] बबन्ध यत्नान्महता नृदेवान[भ्यर्च्य ?] सम्यग्घटितोपलेन। अ-जाति-दुष्टम्प्रथितं तटाकं **सुदर्शनं** शश्वत-कल्प-कालम्। (॥)[३७*]

२२. अपि च सुदृढ-सेतु-प्रान्त (?-)विन्यस्त-शोभ-रथचरण-समाह्व-क्रौंच-हंसास-धूतम्। विमल-सलिल[– – – ⏑ – – ⏑ – –] भुवि त[⏑ ⏑ ⏑ – – –]द[ने] (ऽ*)र्कः शशी च। (॥)[३८]*

२३. नगरमपि च भूयाद्वृद्धिमत्पौर-जुष्टं द्विज-बहु-शत-गीत-ब्रह्म-निर्नष्ट-पापं। शतमपि च समानामीति-दुर्भिक्ष[मुक्तं ⏑ ⏑ ⏑ ⏑ ⏑ ⏑ – – – ⏑ – – ⏑ – –] [॥३६*] [इति सुद]र्शन-तटाक-संस्कार-ग्रन्थ-रचना [स]माप्ता॥

खण्ड २

२४. दृप्तारि-दर्प प्रणुदः पृथु-श्रियः स्व-वङ्श-केतोः सकलवनी-पतेः। राजाधिराज्याद्भुत-पुण्य[कर्मणः] [⏑ – ⏑ – – ⏑ ⏑ – ⏑ – ⏑] [॥४०*] [– – ⏑ – – ⏑ ⏑ – ⏑ – – – – ⏑ – –

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

⏑ ⏑ – ⏑ – –] [।] द्वीपस्य गोप्ता महतां च नेता दण्ड-
स्थि[ता]नां

२५. द्विषतां दमाय। (॥) [४१*] तस्यात्मजेनात्म-गुणान्वितेन गोविन्द पादार्पित-जीवितेन। [– – ⏑ – – ⏑ ⏑ – ⏑ – – – – ⏑ – – ⏑ ⏑ – ⏑ – –] [॥४२*] [– – ⏑ – – ⏑ ⏑ – ⏑ ⏑ – ⏑ –]ग्धं विष्णोश्च पाद-कमले समवाप्य तत्र। अर्थ-व्ययेन

२६. महता महता च कालेनात्म-प्रभाव-नत-पौर-जनेन तेन। (॥) [४३*] चक्रं बिभर्ति रिपु [– – ⏑ – ⏑ – – – – ⏑ – ⏑ ⏑ ⏑ – ⏑ ⏑ – ⏑ – –][।] [– – ⏑ – – ⏑ ⏑ ⏑ – ⏑ ⏑ – ⏑ – –] तस्य स्व-तंत्र-विधि-कारण-मानुषस्य। (॥)[४४*]

२७. कारितमवक्र-मतिना **चक्रभृतः** चक्रपालितेन गृहं। वर्ष-शते [ऽ*]ष्टात्रिंशे गुप्तानां काल-[क्रम-गणिते] [॥४५*] [– – ⏑ – ⏑ ⏑ ⏑ – ⏑ ⏑ – ⏑ – – – – – ⏑ – ⏑ ⏑ ⏑ – ⏑ ⏑ – ⏑ – –[।*] [सा]र्थमुत्थितमिवोर्जयतो [ऽ*]चलस्य

२८. कुर्वत्प्रभुत्वमिव भाति पुरस्य मूर्घ्नि ॥[४६*] अन्यच्च मूर्द्धनि सु[– ⏑ ⏑ – ⏑ – – – – ⏑ – ⏑ ⏑ ⏑ – ⏑ ⏑ – ⏑ – – [।*] – – ⏑ – ⏑ ⏑ ⏑]

२९. रुद्ध-विहंग-मार्गं विभ्राजते ⏑ ⏑ ⏑ – ⏑ ⏑ – ⏑ – – [॥४७*]

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

कहौम स्तंभलेख (गु० स० १४१)

१. सिद्धम् [।।*] यस्योपस्थान-भूमिर्नृपति-शत-शिरः-पात-वाता-
वधूता
२. गुप्तानां वन्शजस्य प्रविसृत-यशसस्तस्य सर्व्वोत्तमर्द्धे: [।*]
३. राज्ये शक्रोपमस्य क्षितिप-शत-पतेः **स्कन्दगुप्तस्य** शान्ते
४. वर्षे त्रिन्शद्दशैकोत्तरक-शततमे ज्येष्ठ-मासि प्रपन्ने । (।।) [१*]
५. ख्याते [ऽ*]स्मिन्ग्राम-रत्ने कुकुभ इति जनैस्साधु-संसर्ग-पूते ।
६. पुत्त्रो यस्सोमिलस्य प्रचुर-गुण-निधेर्भट्टिसोमो महा[त्म]ा [।*]
७. तत्सूनू रुद्रसोम[:*] पृथुल-मति-यशा व्याघ्र इत्यन्य-संज्ञो ।
८. मद्रस्तस्यात्मजो [ऽ*]भूद्द्विज-गुरु-यतिषु प्रायशः प्रीतिमान्यः ।
(।।) [२*]
९. पुण्य-स्कन्धं स चक्क्रे जगदिदमखिलं संसरद्वीक्ष्य भीतो
१०. श्रेयोर्त्थं भूत-भूत्यै पथि वि (नि) यमवताम**र्हतामादिकर्तॄन्** [।*]
११. पञ्चेन्द्रां (न्)]स्थापयित्वा धरणि-धरमयान्सन्निखातस्ततो[ऽ*]यम्
१२. शैल-स्तम्भः सुचारुर्गिरिवर-शिखराग्रोपमः कीर्त्ति-कर्त्ता[।।*][३*]

इंदोर ताम्रपत्रलेख (गु० स० १४६)

१. सिद्धम् [।।*] यं विप्रा विधिवत्प्रबुद्ध-मनसो ध्यानैक-ताना (न)-
स्तुवः (स्तवाः) यस्यान्तं त्रिदशासुरा न विविदुर्न्नोर्ध्वं न तिर्य-
२. ग्गति[म्] [।*]यं लोको बहु-रोग-वेग-विवशः संश्रित्य चेतो-
लभः पायाद्वः स जगत्पिधान-पुटभिद्रश्म्या-
३. करो भास्करः ।।[१।।*) परमभट्टारक-महाराजाधिराज-श्री-

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

स्कन्धगुप्तस्याभिवर्द्ध मान-विजय-राज्य-संव्वसर-शते षच्च (ट्च)-त्वा-

४. [रि]ङ्शदुत्तरतमे फाल्गुन मासे तप्त [1*]द-परिगृहीतस्य विषय-पति-शर्व्वनागस्यान्तर्व्वेद्यां भोगाभिवृद्धये वर्त्त-

५. माने [।*] चन्द्रापुरक-पद्मा-चातुर्व्विद्य-सामान्य-ब्राह्मण-देवविष्णुर्द्देवपुत्रो हरित्रात-पौत्रः डुडिक-प्रपौत्रः सततान्गि-हो-

६. त्र-छ (च्च) न्दोगो राणायणी (नी)यो वर्षगण-सगोत्र इन्द्रापुरक-वणिग्भ्यां क्षत्रियाचलवर्म-भृ(भ्रु)कुण्ठसिङ्हाभ्यामधिष्टा (ष्ठा)-

७. नस्य प्रच्यां दिशीन्द्रपुराधिष्ठान-माडास्यात-लग्नमेव प्रतिष्ठापितक-भगवते सवित्रे दीपोपयोज्यमात्म-यशो-

८. (ऽ*)भिवृद्धये मूल्यं प्रयच्छतिः (ति) [॥*] इन्द्रपुर-निवासिन्य-**स्तैलिक-श्रेण्या** जीवन्त-प्रवराया इतो (ऽ*)धिष्ठानादपवक्रम-

९. ण-संप्रवेश-यथास्थिरायाः आजस्त्रिकं ग्रहपतेर्द्विज-मूल्य-दत्तमनया तु श्रेण्या यदभग्न-योग्यम्(गं)

१०. प्रत्थ(थ)माहव्यि[व*]च्छिन्न-संस्थं देयं तैलस्य तुल्येन **पल-द्वयं** तु २ चन्द्रार्क्क-सम-कालीनं [॥*]

११. यो व्यक्क्रमेद्दायमिमं निबद्धम्(द्धं) गो-घ्नो गुरु-घ्नो द्विज-धातकः सः [।*] तैः पातकै (*)

१२. पञ्चभिरन्वितो [ऽ*]धर्ग (धो ग)च्छेन्नरः सोपनिपातकैश्चेति ॥[२*]

भित्तरी स्तंभलेख

१. [सिद्धम्] [॥] सर्व्व]-राज[ोच्छे]त्तुः पृथिव्यामप्रतिरथस्य चतुरुदधि-सलिलास्वादित-यशसो धनद वरुणेन्द्र (ा]न्तक-स[मस्य]

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

२. कृतान्त-परशोः न्यायागत[ा]नेक-गो-हिरण्य-क[ो]टि-प्रदस्य चिरो[त्स]न्नाश्वमेधाहर्त्तुर्म्महाराज-श्री-गुप्त-प्रपौत्र[स्य]

३. महाराज - श्री - घटोत्कच-पौत्रस्य महाराजाधिराज-श्री-चन्द्रगुप्त-पुत्रस्य लिच्छवि-दौहित्रस्य महादेव्यां कुम[ा]र[दे]व्या-

४. मुत्पन्नस्य महाराजाधिराज - श्री - समुद्रगुप्तस्य पुत्रस्तत्परिगृहीतो महादेव्यान्दत्तदेव्यामुत्पन्नः स्वयं चाप्रतिरथः

५. परम-भागवतो महाराजाधिर[ा]ज-श्री-चन्द्रगुप्तस्तस्य पुत्रस्तत्पा-दानुद्ध्यातो महादेव्यां ध्रुवदेव्यामुत्पन्नः परम-

६. भागवतो महाराजाधिर[ा]ज-श्री - कुमारगुप्तस्तस्य—प्रथित-पृथु-मति-स्वभाव-शक्तेः पृथु-यशसः पृथिवी-पतेः पृथु-श्रीः [।]

७. पि[तृ]-प[रि]गत-पाद-पद्म-वर्त्ती प्रथित-यशाः पृथिवी-पतिः सुतो [ऽ*]यम् [॥१॥*] जगति भु[ज]-बलाड्यो[ढ्यो] गुप्त-वङ्शैक-वीरः प्रथित-विपुल-

८. धामा नामतः स्कन्दगुप्तः [ ] सुचरित-चरितानां येन वृत्तेन वृत्तं न विहतममलात्मा तान-धीदा (?)-विनीतः [॥२॥*] विनय-

९. बल-सुनीतैर्व्विक्क्रमेण क्क्रमेण प्रतिदिनमभियोगादीप्सितं येन ल[ब्ध्व]ा [।*]स्वभिमत-विजीगीषा-प्रोद्यतानां परेषां प्रणि-

१०. हित इव ले[भे सं] विधानोपदेशः [॥३॥*] विचलित-कुल-लक्ष्मी-स्तम्भनायोद्यतेन क्षिति-तल-शयनीये येन नीता त्रियामा [।*] समु-

११. दित-बल-कोषान्पुष्यमित्रांश्च [जि]त्वा क्षितिप-चरण-पीठे स्थापितो वाम-पादः [॥४॥*] प्रसभमनुप [मै]र्व्विध्वस्त-शस्त्र-प्रतापै-र्विन[य-स]मु-

१२. [चितैश्च] क्षान्ति-शौ[र्यै]र्न्निरूढम् [।*] चरितममल-कीर्त्तेर्ग्गी-

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

यते यस्य शुभ्रं दिशि-दिशि परितुष्टैराकुमारं मनुष्यैः [।।५।।*]
पितरि दिवमुपे[ते]

१३. विप्लुतां वङ्‌श-लक्ष्मीं भुज-बल-विजितारिर्य्यः प्रतिष्ठाप्य भूयः [।*]
जितमिति परितोषान्मातरं सास्र-नेत्रां हत-रिपुरिव कृष्णो देव-
कीमभ्युपे-

१४. [तः] [।।६।।*] [स्वै] र्द्द[ण्डैः ⏑⏑]र(?)त्यु[–]त्प्रचलितं वङ्‌शं
प्रतिष्ठाप्य यो बाहुभ्यामवनिं विजित्य हि जितेष्वार्त्तेषु कृत्वा
दयाम् [।*]नोसिक्तो [न] च विस्मितः प्रतिदिनं

१५. संवर्द्धमान-द्युतिः गीतैश्च स्तुतिभिश्च वन्दक-ज[नो ?] यं प्राप-
यत्यार्य्यताम् [।।७।।*] **हूणैर्य्यस्य** समागतस्य समरे दोर्भ्यां धरा
कंपिता भीमावर्त्त-करस्य

१६. शत्रुषु शरा[– –⏑ – पातिताः ? ।*] – – –⏑⏑ –⏑–
विरचितं (?) प्रख्यापितो [दीप्ति-दा ?]न द्यो(?)ति[⏑]
नभी(?] षूलक्ष्यत इव श्रोत्रेषु गाङ्ग-ध्वनिः [।।८।।*]

१७. [स्व]-पितुः कीर्ति – * * * * * * ⏑ – ⏑ * [।*] * * *
* ⏑ – * * * * * ⏑ – ⏑ * [।।९।।*] [कर्त्तव्या]
प्रतिमा काचित्प्रतिमां तस्य शार्ङ्गिणः [।*]

१८. [सु] प्रतीतश्चकारेमां [यावदाचन्द्र-तारकम् [।।१०।।*] इह चैनां
प्रतिष्ठाप्य सुप्रतिष्ठित-शासनः [।*] ग्राममेनं स विदधे पितुः
पु[ण्य]ाभिवृद्धये [।।११।।*]

१९. अतो भगवतो मूर्त्तिरियं यश्चात्र संस्थितः (?) (।*] उभयं
र्निर्द्दिदेशासौ पितुः पुण्याय पुण्य-धीरिति (।।१२।।*)

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

बिहार स्तंभ लेख

खण्ड १

१. ⏑ – ⏑ – – ⏑ ⏑ – ⏑ – –
⏑ – ⏑ – – ⏑ ⏑ – ⏑ – –:[।*]
नृ-चन्द्र इन्द्रानुज-तुल्य-वीर्य्यो
गुणैरतुल्यः ⏑ ⏑ – ⏑ – –[।।*]

२. – – ⏑ – – ⏑ ⏑ – ⏑ – –
– – ⏑ – – ⏑ ⏑ – ⏑ – –[।*]
तस्यापि सूनुर्भुवि स्वामि-नेयः
ख्यातः स्व-कीर्त्त्या ⏑ ⏑ – ⏑ – –[।।*]

३. ⏑ – ⏑ – – ⏑ ⏑ – ⏑ – –
⏑ – ⏑ – – ⏑ ⏑ – ⏑ – –[।*]
[स्व]सैव यस्यातुल-विक्रमेण
कुमारगु[प्तेन] ⏑ – ⏑ – –[।।*]

४. – – ⏑ – – ⏑ ⏑ – ⏑ – –
– – ⏑ – – ⏑ ⏑ – ⏑ – –[।*]
[पि]त्रिश्च देवांश्च हि हव्य-कव्यैः
सदा नृशंस्यादि ⏑ – ⏑ – –[।।*]

५. ⏑ – ⏑ – – ⏑ ⏑ – ⏑ – ⏑ – ⏑
⏑ – ⏑ – – ⏑ ⏑ – ⏑ – ⏑ –[।*]
[अ]चीकरद्देव-निकेत-मण्डलं
क्षितावनौपम्य ⏑ – ⏑ – ⏑ –[।।*]

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

३. ....[स्कन्दगुप्त*][बटे ?] किल [।*]
स्तम्भ-वरोच्छ्रिय-प्रभासे तु मण्ड......[।।*]

७. ....भिवृ क्षाणां [।*]
कुसुम-भरानताग्र-[शु ंग?]-व्यालम्ब-स्तवक.....[।।*]

८. – – ⏑ – – – ⏑ ⏑ – ⏑ – –
– – ⏑ – – – ⏑ ⏑ – ⏑ – – [।*]
भद्रार्य्यया भाति गृहं नवाभ्र-
निर्म्मोक-निर्मु[क्त] ⏑ – ⏑ – – [।।*]

९. – – ⏑ – – – ⏑ ⏑ – ⏑ – –
– – ⏑ – – – ⏑ ⏑ – ⏑ – – [।*]
स्कन्द-प्रधानैर्भुवि मातृभिश्च
लोकान्स सुष्य(?) ⏑ ⏑ – ⏑ – – [।।*]

१०. – – ⏑ – – – ⏑ ⏑ – ⏑ – –
– – ⏑ – – – ⏑ ⏑ – ⏑ – –
– – ⏑ – – – ⏑ ⏑ – ⏑ – –
– – ⏑ यूपोच्छ्रयमेव चक्रे [।।*]
भद्रार्य्यादी.....................

११. ...... [स्क*]न्दगुप्त-बटे अन्शानि २० (+*) ५ ता(?)म्रकटा-
कु(?): कल...............

१२. ......पितुः स्वमातुर्य्यद्यस्ति हि दुष्कृतं भजतु तने............

११. ....काग्रहारे अन्शानि ३ अनन्तसेनेनोप..............

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

खण्ड २

१४. ·········[सर्व्व-राजोच्छे*]त्तुः प्रिथिव्यामप्रतिरथस्य

१५. [चतुरुदधि - सलिलास्वादित - यशसो धनद-वरुणे*]न्द्रान्तकसमस्य कृतान्त-

१६. [परशोः न्यायागतानेक-गो-हिरण्य-कोटि-प्रदस्य चिरो*]त्सन्नाश्व-मेधाहर्त्तुः

१७. [महाराज-श्री**गुप्त**-प्रपौत्रस्य महाराज-श्री**घटो***]**त्कच**-पौत्रस्य महाराजा-

१८. [धिराज श्री**चन्द्रगुप्त**-पुत्रस्य लिच्छवि-दौहित्रस्य म*]हादेव्यां कुमार-देव्यामुत्पन्नस्य

१९. [महाराजाधिराज-श्री-**समुद्रगुप्तस्य** पुत्र*]स्तत्परिगृहीतो महादेव्यां

२०. [दत्तदेव्यामुत्पन्नः स्वयं चाप्रतिरथः पर*]मभागवतो महाराजा-

२१. [धिराज श्री**चन्द्रगुप्त**स्तस्य पुत्रस्तत्पादानुद्ध्या*]तो महादेव्यां ध्रुवदेव्या-

२२. [मुत्पन्नः परम-भागवतो **महाराजाधिराज-श्रीकुमारगुप्तस्तस्य***] **पुत्रस्तत्पादानुद्धयातः**

२३. **[परम-भागवतो महाराजाधिराज-श्रीस्क*]न्दगुप्तः** [।।*]

२४. ··· ··· ··· ··· परमभागवतो

२५. [महाराजाधिराज-श्री-**स्कन्दगुप्तः***] ··· ··· [वै*]षयिका**जपुरक**-सामै[ग्रा] [म*]-

२६. ··· ··· ··· ग्रा···क···[अ*]क्षय-नीवी ग्रामक्षेत्र

२७. ··· ··· ··· कृ···उपरिक-कुमारामात्य-

२८. ··· ··· ··· ङ्गि कुलः(?) वणि(ज*)क-पादितारिक-

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

२६. ... ... [आ*]ग्रहारिक-शौल्किक-गौल्मिकासन्यां श्र(?)-

३०. ... ... वा[सि]कादीनस्मत्प्रसादोपजीविनः

३१. [समाज्ञापयामि*] ... ...**वर्म्मणा** विज्ञापितो(ऽ*)स्मि मम पितामहेन

३२. ... ... नमे भट्ट-गुहिलस्वामिना भद्रा[र्य्य]का

३३. ... ... [प्र]ति ...आग्रोकय...नाकय... ... ...

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

द्वितीय कुमारगुप्त का अभिलेख

सारनाथ बौद्ध प्रतिमा लेख (गु० सं० १५४)

१. **वर्षशते गुप्तानां सचतुःपञ्चाशदुत्तरे** [।*]
भूमिं रक्षति **कुमारगुप्ते** मासि ज्येष्ठे द्वितीयायाम् ।।

२. भक्त्यावर्ज्जित-मनसा यतिना पूजार्त्थमभयमित्रेण [।*]
प्रतिमा-प्रतिमस्य गुणै[र]प[रे]यं [का]रिता **शास्तुः** ।।

३. माता-पितृ-गुरु-पू[र्व्वै]: पुण्येनानेन सत्व-कायो(ऽ*)यं [।*]
लभतामभिमतमुपशम-ि * * * * म् ।।

भितरी मुहर लेख

१. [सर्व्व]-राजोच्छेत्तु—पृथिव्यामप्रतिरथस्य महाराज-श्री [**गुप्त**]-प्रपौ
[त्र]स्य महाराज-श्री**घटोत्कच**-पौत्रस्य म[हा]-

२. [राजा]धिर[ा]ज-श्री**चन्द्रगुप्त**-पुत्रस्य लिच्छ[वि-दौहित्रस्य]
म[हादे]व्य[ां] [कुमा]रदेव्यामुत्पन्नस्य महाराजाधिराज-

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

३. [श्री]**समुद्रगुप्तस्य** पुत्रस्तत्परि[गृही]तो म[हादेव्या] [**न्दत्तदेव्या**]
मुत्पन्नस्स्वयं च[ा]प्रतिरथ⌒परमभाग-

४. [वतो] [महाराजा] धिराज-श्री**चन्द्रगुप्त**स्तस्य [पुत्र]स्तत्पाद[ा]नु
[द्ध्या] तो महादेव्य[ां] [ध्रु]वदेव्यामुत्पन्नो म[हारा]-

५. [जाधि]राज-श्री**कुमार**[**गुप्त**]स्तस्य पुत्रस्तत्पादानुद्ध्य[ातो] महादेव्या-
मनन्त-देव्य[ा]मुत्पन्नो महा[रा]-

६. [जाधिरा]ज-श्री[**पुरुगुप्त**]स्तस्य पुत्रस्तत्पादानुद्ध्य[ातो] महादे[**व्यां**]
श्रीचन्द्र-देव्यामुत्प[न्नो] म[हा]-

७. [राजाधिरा]ज-श्री**नरसिंहगुप्त**स्तस्य [पु]त्रस्त[त्प]ादा[नुद्ध्यातो]
मह[ादेव्यां] श्रीम[न्मित्र]-

८. [देव्या]मु[त्प][न्न⌒परमभ[ा]गवतो मह[ाराजाधिरा]ज-श्री**कुम**[ा]
र[**गुप्तः** ॥]

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

बुधगुप्त का लेख

सारनाथ बौद्ध प्रतिमा लेख (गं० सं० १५७)

१. **गुप्तानां** समतिक्रान्ते **सप्तपंचाशदुत्तरे** [।*)
शते समानां पृथिवीं **बुधगुप्ते** प्रशासति ।।
[वैशाख-मास-सप्तम्यां मूले श्याम-गते*]

२. मया [।*]
कारिताभयमित्रेण प्रतिमा शाक्य-भिक्षुणा ।।
इमामुद्दण्ड-सच्छत्र-पद्मास[न-विभूषितां ।*]
[देवपुत्रवतो दिव्यां*]

३. चित्रवि[द्या]-सचित्रितां ।।
यदत्र पुण्य' प्रतिमां कारयित्वा मया भृतम् [।*]
माता-[पित्रोगु'][रूणां च लोकस्य च समाप्तये ।।*]

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

बनारस स्तंभ लेख (गु० सं० १५९)

स(म्व)१००(+)५०+६ मार्ग्गदि० २०+८ महाराजाधिराज बुधगुप्त राज्ये पार्वरिक वास्तव्य मार (विष १) दुहिता भाटि दुहि च दाम स्वामिन्या शिला स्तम्भ स्थापितः ।

दामोदरपुर ताम्रपत्र लेख (गु० सं० १६३)

(पहली ओर)

१. [सं १००*) (+*) [६०] (+*) ३ आषाढ़-दि १० (+*) ३ परमदैवत-परम-भट्टा[र]क-महाराजाधिराज-श्रीबुधगुप्ते [पृथि]वी-पतौ तत्पाद-[परि]गृहीते पुण्ड्र[व]-

२. [र्द्धन]भुक्तावुपरिक-महाराज-ब्रह्मदत्ते संव्यवहरति [।*] स्व[स्ति] [।*] पलाश-वृन्दाकत्सविश्वासं महत्तराद्यष्टकुलाधि[क]-

३. [र]ण-ग्रामिक-कुटुम्बिनश्च चण्डग्रामके ब्राह्मणाद्यान्क्षुद्र-प्रकृति-कुटुम्बिनः कुशल-मुक्तानुदर्शयन्ति [यथैवं ?]

४. [वि]ज्ञापयती नो ग्रामिक-नाभको[ऽ*]हमिच्छे मातापित्रोस्स्व-पुण्याप्यायनाय कदिचिद्व्राह्मणार्य्यान्प्रतिवासयितु

५. [तद]हंथ ग्रामानुक्रम-विक्रय-मर्य्यादया मत्तो हिरण्यमुपसंगृह्य समुदयवाह्याप्रद-[खिल-क्षेत्राणा] [ ]

६. [प्र]सादं कर्त्तु मति [।*] यतः पुस्तपाल-पत्रदासेनावधारितं युक्तमनेन विज्ञापित-मस्त्यय विक्रय-

७. मर्य्यादा-प्रसङ्गस्तद्दीयतामस्य परमभट्टारक-महाराज-पा[दे]न पुण्योपचयायेति [।*] पुनरस्यैव

८. [पत्रदा] सस्यावधारणयावधृत्य नाभक-हस्ताद्दीनार-[द्वय]मुपसंगृह्य स्थायपाल-कपिल-श्रीभद्राभ्यायायकृ[त्य] च समदय-

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

(दूसरी ओर)

९. [बाह्याप्रद*]-[खि]ल-क्षेत्रस्य कुल्यवापमेकमस्य **वायिग्रामकोत्तर-**
पार्श्वस्यैव च सत्य-मर्य्यादाया दक्षिण-पश्चिम-पूर्व्वेण
१०. मह[त]राद्यधिकरण - कुटुम्बिभिः प्रत्यवेक्ष्याष्टक - नवक-नवक -

नलाभ्यामपविञ्छ्य चतुस्सीमोल्लिङ्ग्य च नागदेवस्य
११. [दत्तं] [।*] [तदु]त्तर-कालं संव्यवहारिभिर्द्धर्म्ममवेक्ष्य प्रतिपाल-
नीयमुक्तञ्च महर्षिभः [।*]
स्वदत्ताम्परतत्तां वा यो हरेत वसुन्धरा ।
१२. [स विष्ठ]यां कृमिर्भूत्वा पितृभिस्सह पच्यते [।।]
वहुभिर्व्वसुधा दत्ता राजभिस्सगरादिभिः [।*]
यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य
१३. तदा फलं [।।*]
षष्टिं वर्ष-सहस्राणि स्वर्ग्गे मोदति भूमिदः [।*]
आक्षेप्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेदिति ।।

एरण स्तंभ लेख (गु० सं० १६५)

१. जयति विभुश्चतुर्भुजश्चतुरर्णव-विपुल-सलिल-पर्य्यङ्कः [।]
जगतः स्थित्युत्पत्ति-न्य[यादि*]-
२. हेतुर्ग्गरुड-केतुः (।।*)
शते पञ्चषण्टचधिके वर्षाणां भूपतौ च **बुधगुप्ते ।**
आंषाढ-मास-[शुक्ल]-
३. [द्वा]दश्यां सुरगुरोर्द्दिवसे । [।*]
सं १००(+*) ६० (+*) ५ [।।*]

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

कालिन्दी-नर्म्मदयोर्म्मध्यं पालयति लोकपाल-गुणै-
र्ज्जगति महा[राज]-

४. श्रियमनुभवति **सुरश्मिचन्द्रे** च। [।*]-
अस्यां संवत्सर-मास-दिवस-पूर्व्वायां स्वकर्म्माभिरतस्य क्रतु-याजि[नः]

५. अधीत-स्वाध्यायस्य विप्रर्षेर्म्मैत्रायणीय-वृषभस्येन्द्रविष्णोः प्रपौत्रेण
पितुर्गुणानुकारिणो वरुण[विष्णोः]

६. पौत्रेण पितरमनुजातस्य स्व वंश-वृद्धि-हेतोर्हरिविष्णोः पुत्रेणात्यन्त-
भगवद्भक्तेन विधातुरिच्छया स्वयंवरयेव र[ा]ज-

७. लक्ष्म्याधिगतेन चतुःसमुद्र-पर्य्यन्त-प्रथित-यशसा अक्षीण-मानधने-
नानेक-शत्रु-समर-जिष्णुना महाराज-**मातृविष्णुन**[ा]

८. तस्यैवानुजेन तदनुविधायिन[ा] तत्प्रसाद-परिगृ[ही]तेन **धन्यविष्णुना**
च। मातृ-पित्रोः पुण्याप्यायनार्थंमेष भगवतः।

९. पुण्यजनार्द्दनस्य **जनार्द्दनस्य** ध्वजस्तम्भो(ऽ*)भ्युच्छ्रितः [।।*] स्वत्यस्तु
गो-ब्राह्मण-[पु]रोगाभ्यः सर्व्व-प्रजाभ्थ इति ।[।*]

दामोदरपुर ताम्रपत्र लेख

(पहली ओर)

१. ... ... फाल्गुन-दि १० (+*) [५] परमदैवत-परमभट्टारक-
महाराजाधिराज-श्रीवुधगु[प्ते] [पृथिवी*]-

२. [पतौ*] [त*]त्पाद-परिगृहीतस्य **पुण्ड्रवर्द्धन**-भुक्तावुपरिक-महाराज-
जयदत्तस्य भोगेनानु[वहमा]-

३. नके **[को]टि[वर्ष]**-विषये च तन्नियुक्तकेहायुक्तक-**शण्डके** अधिष्ठानाधि-
करण[*] **नगरश्रेष्टिरिभु**-

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

४. पा[ल] -सार्त्थवाहवसुमित्र-प्रथमकुलिकवरदत्त-प्रथमकायस्थविप्रपाल-पुरोगे च स[म्व्य]-वहरति

५. अनेन श्रेष्ठि-रिभुपालेन विज्ञापितं **हिमवच्छिखरे कोकामुखस्वामिनः** चत्वारः कुल्यवापाः [**श्वे**]**तव-**

६. **राहस्वामिनो**[ऽ*]पि सप्त कुल्यवापाः अस्मत्फलाशन्सिनो पुन्याभिवृद्धये **डोङ्गाग्रापे** पूर्व्वं मया

७. अप्रदा अतिसृष्टकास्तदहन्तत्क्षेत्र-समीप्य-भूमौ तयोराद्य-**कोकामुख-स्वामि-श्वेतवराह-**

८. **स्वामिनोर्ना**[**म**]**लिङ्ग**मेकं देवकुल-द्वयमेतत्कोष्ठिका-द्वयञ्च कारयितु-मिच्छाम्यहंथ वास्तूना

९. सह [कुल्य]वापान्यथाक्रय-मर्य्यादया दातुमिति (।*) यतः पुस्तपाल-विष्णुदत्त-विजय-[नन्दि]-स्थानु-

१०. नन्दिनामवधारणयावधृतमस्त्यनेन **हिमवत्छिखरे** तयोः कोकामुख-स्वामि-श्वेतवरा[ह]-स्वामि[नोः]

११. अप्रदा-क्षेत्र-कुल्यवापा एकादश दत्तकास्तदर्त्थञ्चेह देवकुल-कोष्ठिका-करणे युक्त[मे]त-[द्विज्ञा]-

१२. [पितं] [क्र]मेण तत्क्षेत्र-सामीप्य-भूमौ वास्तु दातुमित्यनुवृत्त-त्रिदीनारि-क्यकु[ल्यवा]प-विक्रय[मर्य्या]द-

(दूसरी ओर)

१३. [या*]··· ··· ··· ··· ···

१४. ··· ··· ··· पु[ष्करि] णी पू [र्व्वेण] रिभु[पा]ल-पुष्करिणी ? [दक्षिणेन]

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

१५. ... ... दत्ताः [।*] [त]दुत्तरकालं [सं]व्यवहारिभिर्द्देवभ
[क्त्या]नु-मन्तव्या [उक्तं] व्यासेन [।*]
स्वं-दत्तां परदत्ता-

१६. (म्वा यो हरेत) वसुन्धराम् (।*)
स विष्टा[यां] क्रिमिर्भूत्वा पि[तृ] भिस्स[ह पच्यते] (।।*)
पूर्व्व-दत्तां द्विजातिभ्यो

१७. [यत्नाद्रक्ष यु]धिष्ठिर [।*]
महीं [महीमतां] श्रेष्ठ दा[नाच्छ्रेयो(ऽ*)नुपालनं] [।।*]
[बहु]भिर्व्वसु[धा द]त्ता

१८. [राजभिश्च] पुनः पुनः [।*]
[य]स्य [य]स्य यदा भूमि[स्तस्य तस्य] त[दा] फलम् ।। इति ।। [।।*]

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

वैन्यगुप्त का लेख

गुणैधर ताम्रपत्र लेख (गु० सं० १८८)

पहली ओर

१. स्वस्ति [।।*] महानौ-हस्त्यश्व-जयस्कन्धावारात्क्रीपुराद्भगवन्महादेव-
पादानुद्ध्यातो महाराज-श्रीवैन्यगुप्तः

२. कुशली * * * * * * * स्वपादोपजीविनश्च कुशलमाशंस्य
समाज्ञापयति [।*] विदितं भवतामस्तु यथा

३. मया मातापित्रोरात्मनश्च पु[ण्या]भिवृ[द्ध]ये(ऽ*)स्मत्पाददास
महाराज रुद्रदत्त-विज्ञाप्यादनेनैव माहायानिक-शाक्यभिक्ष्वा-

४. चार्य्य-शान्तिदेवमुद्दिश्य गोप (?) ··· ··· ··· (दिग्भागे?) कार्य्यमाण-
कार्य्याव-लोकितेश्वराश्रम-विहारे अनेनै-

५. वाचार्य्येण प्रतिपादित[क?]-माहायानिक-वैवर्त्तिक-भिक्षुसंघनाम्परिग्रहे
भगवतो बुद्धस्य सततं त्रिष्कालं

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

६. **गन्ध-पुष्प-दीप-धूपादि-प्र[वर्त्तनाय*] [त*]स्य भिक्षुसंघस्य च चीवर-पिण्डपात-शयनासन-ग्लानप्रत्ययभैषज्यादि-**

७. **परिभोगाय विहारे [च] खण्ड-फुट्ट-प्रतिसंस्कार-करणाय उत्तर-माण्डलिक-कान्ते-डदकग्रामे** सर्वतो भो-

८. गेनाग्रहारत्वेनैकादश-खिल-पाटकाः पञ्चभिः खण्डैस्ताम्र-पट्टे नातिसृष्टाः [।*] अपि च खलु श्रुति-स्मृती-

९. [ति*] हा [स]-विहितां पुण्यभूमिदान-श्रुतिमैहिकामुष्मिक-फल-विशेषे र्स्मृतो भावतः समुपगम्य स्वतस्तु पी-

१०. डामप्यूरीकृत्य पात्रेभ्यो भूमि * * * * * * * * * * [।*] द्विष (?)द्भिरस्म-द्वचन-गौरवात्स्व-यशो-धर्म्मावाप्तये चैते

११. पाटका अस्मिन्वि(?)हारे शश्वत्कालमभ्य[नुपालयितव्याः ॥*] अनुपालनम्प्रति **च** भगवता पराशरात्मजेन वेदव्या-

१२. सेन व्यासेन गीताः श्लोका भवन्ति [।*]
षष्टिं वर्ष-स[हस्रा]णि स्वर्ग्गे मोदति भूमिदः [।*]
आक्षेप्ता चानुमन्ता च ता-

१३. न्येव न(र*)के वसेत् [॥*]
स्व-दत्तां पर-दत्ताम्वा यो हरेत [वसु]न्धरां [।*]
[स] विष्ठायां कृमिर्भूत्वा पितृभिः सह पच्यते [॥*]

१४. पूर्व-दत्तां द्विजातिभ्यो यत्नाद्रक्ष युधिष्ठिर [।*]
महीं महिमतां श्रेष्ठ दानाच्छ्रेयो(ऽ*)नुपालनं [॥*]
वर्त्तमानाष्टाशीत्यु-

१५. **त्तर-शत-संवत्सरे** पौष-मासस्य चतुर्व्विंन्शतितम-दिवसे दूतकेन महाप्रतीहार-महापीलुपति-पञ्चाधि-

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

१६. करणोपरिक-पाव्यु परिक-[पुर?]पुरपालोपरिक-महाराज-श्रीमहासामन्त-
विजयसेने-नैतदेकादश-पाटक-दा-

१७. नायाज्ञामनुभाविताः कुमारामात्य-रेवज्जस्वामी भामह-वत्स-भोगिकाः
[॥*] लिखितं सन्धिविग्रहारिकरण-काय-

१८. स्थ-नरदत्तेन [॥* यत्रैक-क्षेत्रखण्डे नव-द्रोणवापाधिक-सप्त पाटक-
परिमाणे सीमा-लिङ्गानि [।*] पूर्व्वेण **गुणेका-**

१९. **ग्रहार**ग्राम-सीमा विष्णुवर्धकि-क्षेत्रश्च [।*] दक्षिणेन मिदुविलाल(?)-
क्षेत्रं राज-विहार-क्षेत्रञ्च [।*] पश्चिमेन सूरी-नाशी-रम्पूर्णेक-

२०. क्षेत्रं [।*] उत्तरेण दोषी-भोग-पुष्करिण[ी] ... ...
[ए*]वम्पियाकादित्य-वन्धु-क्षेत्राणाञ्च सीमा [॥*]

२१. द्वितीय-खण्डस्याष्टाविन्शति-द्रोणवाप-परिमाणस्य सीमा [।*] पूर्व्वेण
गुणिका-ग्रहारग्राम-सीमा [।*] दक्षिणेन पक्क-

२२. विलाल(?)-क्षेत्रं [।*]पश्चिमेन राजविहार-क्षेत्रं [।*] उत्तरेण वैद्य
(?)-क्षेत्रं [॥*] तृतीय-खण्डस्य त्रयोविन्शति-द्रोणवाप-

२३. परिमाणस्य सीमा [*] पूर्व्वेण ... ... क्षेत्रं [।*] दक्षिणेन
नखद्दा-चर्चरिक(?)-क्षेत्र-सीमा [।*] पश्चिमेन

दूसरी ओर

२४. ज(जो?)लारी-क्षेत्रं [।*] उत्तरेण नागी-जोडाक-क्षेत्रं [॥*] चतुर्थस्य
त्रिंशद्द्रोणवाप-परिमाण-क्षेत्र-खण्डस्य सीमा [।*] पूर्व्वेण

२५. बुद्धाक-क्षेत्र-सीमा [।*] दक्षिणेन कालाक-क्षेत्रं [।*] पश्चिमेन [सू]
र्य्य-क्षेत्र-सीमा [।*] उत्तरेण महीपाल-क्षेत्रं [॥*] [प]ञ्चमस्य

२६. पादोन-पाटक-द्वय-परिमाण-क्षेत्र-खण्डस्य सीमा [।*] पूर्व्वेण खण्ड-वि
[डु]ग्गुरिक-क्षेत्रं [।*] दक्षिणेंन मणिभद्र-

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

२७. क्षेत्र [।*] पश्चिमे यज्ञरात-क्षेत्र-सीमा [।*] उत्तरेण **नादडदक**ग्राम-सीमेति [।।*] विहार-तलभूमेरपि सीमा-लिङ्गानि [।*]

२८. पूर्व्वेण **चूडामणिनगरश्रीनौयोग**योर्म्मद्ध्ये जोला [।*] दक्षिणेन गणेश्वर-विलाल-पुष्करिण्या नौ-खातः [।*]

२९. पश्चिमेन प्रद्यु्म्नेश्वर देवकुल-क्षेत्र-प्रान्तः [।*] उत्तरेण **प्रडामार**-नौयोग-खातः [।।*] एतद्विहारप्रावेश्य-शून्यप्रतिकर-

३०. हज्जिक-खिल-भूमेरपि सीमा लिङ्गानि [।*] पूर्व्वेण प्रद्यु्म्नेश्वर-देवकुल-क्षेत्र-सीमा [।*] दक्षिणेन शाक्यभिक्ष्वाचार्य्य-जित-

३१. सेन-वैहारिक-क्षेत्रावसा(?)नः [।*] पश्चिमेन ह(?)चात-गंग उत्तरेण दण्ड-पुष्किणी चेति ।। **सं** १०० (+*) ८० (+*) ८ पोष-दि २० (+*) ४ [।।*]

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

भानुगुप्त का लेख

एरण स्तंभ लेख (गु० सं० १९१)

१. १° [।।*] **संवत्सर-शते एकनवत्युत्तरे** श्रावण-वहुलपक्ष-स[प्त]
म्य[ां] [।*]

२. **संवत्** १०० (+*) ९० (+*) १ श्रावण-ब-दि ७ ।।
* * क्ल-वङ्शादुत्पन्न * *-

३. **राजे**ति विश्रुतः [।*]
तस्य पुत्रो(ऽ*)तिविक्क्रान्तो नाम्ना राजाथ **माधवः** ।।
गोपराज[:]

४. सुतस्तस्य श्रीमान्विख्यात-पौरुषः [।*]
शरभराज-दौहित्रः स्ववंश-तिलको(ऽ*)धुना(?) [।।*]

५. श्री **भानुगुप्तो** जगति प्रवीरो
राजा महान्पार्थ-समो(ऽ*)ति-शूरः [।*]
तेनाथ सार्द्धन्त्विह **गोपर**[ाजो]

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

६. मिन्नानु[गत्येन] किलानुयातः ॥
कृत्वा (च*) [यु]द्धं सुमहत्प्रक[ा]शं
स्वर्ग्गं गतो दिव्य-न[रे?][न्द्र-कल्पः*] [।*]

७. भक्तानुरक्ता च प्रिया च कान्ता
भ[ार्य्याव]ल[ग्न]ानुगता[ग्नि]र[ा]शिम् ॥

दामोदरपुर ताम्रपत्र लेख (गु० सं० २२४)

कोटिवर्ष्षाधिष्ठानाधि[करणस्य) ।

पहली ओर

१. स[म्व] २००(+*) २० (+*) ४ भाद्र-दि ५ परमदैवत-परम-
भट्टारक-म[हा]-राजाधिराज-श्री...

२. **गुप्ते** पृथिवीपतौ तत्पाद-परिगृहीते **पुण्ड्रवर्द्धन**-भुक्तावुपरि[क-महाराज]
स्य [महा*]-

३. राजपुत्र-**देवभट्टारकस्य** हस्त्यश्व-जन-भोगेनानुवहमा[न]के **को[टिव]**
र्ष्ष-विष[ये] च त-

४. न्नियुक्तकेह्विषयपति-**स्वयम्भुदेवे** अधिष्ठानाधिकरण(म्*) आर्य्य[न]गर-
[श्रे ष्ठिरिभु]पाल-

५. सार्त्थवाहस्थाणुदत्त-प्रथमकुलिकमतिदत्त-प्रथमकायस्थस्कन्दपाल-पुरोगे
[स] व्य[वह]रति

६. **आयोध्यक**-कुलपुत्रक-अमृतदेवेन विज्ञापितमिह-विषये समुदयबाह्या-
प्रहता-खिल-[क्षे]त्रा-

७. णां त्रिदीनारिक्यकुल्यवाप-विक्रयो(ऽ*)नुवृत्तः तदर्हथ मत्तो दीनारानु-
पसंगृह्य मन्मातुः [पु]ण्या-

CC-0. JSarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

८. भिवृद्धये अत्रारण्ये भगवतः **श्वेतवराहस्वामिनो देवकुले खण्ड-फुट्ट-प्रति-[सं]स्का[र]-[क]-**

९. **रणाय बलिचरुसत्रप्रवर्त्तन-गव्यधूपपुष्पप्रापरा-मधुपर्क्क दीपाद्यु प [यो]गा[य] च**

१०. अप्रदा-धर्म्मेण ताम्रपट्टीकृत्य क्षेत्र-स्तोकन्दातुमिति [।*] यतः प्रथम-पुस्तपाल-नर[न]न्दि-

११. गोपदत्त-भट(?)नन्दिनामवधारणाया युक्त[त]या ध[र्म्माधि]कार-[बु]द्धया विज्ञापित(ं*) ना[त्र*] [वि*]-

१२. षय-पतिना(ं*) कश्चिद्विरोधः केवलं श्री-परमभट्टारकपादेन धर्म्मप [र]-

१३. [तावाप्ति] [:*]

दूसरी ओर

१४. इत्यनेनावधारणाक्रमेण एतस्मादमृतदेवात्पञ्चदश-दीनारानुपसंगृह्य एतन्मातु[:*]

१५. अनुग्रहेण **स्वच्छन्दपाटके**(ऽ*) [द्धं] टी-प्रावेश्य-**लवङ्गसिकायाञ्च** वास्तुभिस्सह कुल्यवाप-द्वयं

१६. **साटुवनाश्रमके**(ऽ*)पि वास्तुना सह कुल्यवाप एकः **परस्पतिकायां** पञ्च-कुल्य-वापकस्योत्त[रे]ण

१७. **जम्बून[द्या]**: पूर्व्वेण कुल्यवाप एकः **पूरणवृन्दिकहरौ** पाटक-पूर्व्वेण कुल्यवाप एकः इत्येवं खिल-क्षेत्र-

१८. स्य वास्तुना सह पञ्च कुल्यवापाः अप्रदा-धर्म्मेण भंग(व*)ते **श्वेतवराहस्वामिने** शश्वत्कालभोग्या दत्ताः [।*]

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

१६. तदुत्तरकालं संव्यवहारिभिः देवभक्त्यानुमन्तव्याः [।*] अपि च
भूमि[दा]न-सम्वद्धाः श्लोका भवन्ति [।*]

२०. स्व-दत्तां पर-दत्ताम्वा यो हरेत वसुन्धरां [।*]
स विष्ठायां क्रिमिभ्भुर्त्वा पितृभिस्सह पच्यते [॥*]
वहुभिर्व्वसुधा दत्ता

२१. राजभिस्सगरादिभिः [।*]
यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलं [॥*]
षष्टिं वर्ष्ष-सहस्राणि स्वग्गें मोदति भूमिद

२२. आच्चेप्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेदिति [॥*]

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

उत्तर-गुप्त वंशी अभिलेख

आदित्य सेन का अफसद लेख

१. ॐ [।।ँ] आसीद्दन्ति-सहस्र-गाढ-कटको विद्याधराध्यासितः सद्वंशः स्थिर उन्नतो गिरिरिव श्रीकृष्णगुप्तो नृपः। दृप्तारातिमदान्ध-वारण-घटा-कुम्भ-स्थलीः क्षुन्दता यस्यासंख्य-रिपु-प्रताप-जयिना दोष्णा मृगेन्द्रायितं ।।[१*] सकलः कलङ्क-रहितः

२. क्षत-तिमिरस्तोयधेः शशाङ्क इव। तस्मादुदपादि सुतो देंवः श्री-हर्षगुप्त इति ।।[२*] यो योग्याकाल-हेलावनत-दृढ-घनुर्भीम-वा-(बा)णौध-पाती मूर्तै (र्त्तै): स्व-स्वामि-लक्ष्मी-वसति-विमुखितै-रीक्षितः सास्रु (श्रु)-पातं। घोराणामा-

३. हवानां लिखितमिव जयं श्लाघ्यमाविर्दधानो वक्षस्पुद्दाम-शस्त्र-व्रण-कठिन-किण-ग्रन्थि-लेखाच्छलेन ।।[३*] श्री-जीवितगुप्तो [ऽ*]भूत्क्षितीश-चूडामणिः सुतस्तस्य। यो दृप्त-वैरि-नारी-मुख-नलिन-वनैक-शेसे (शिशि) रकरः ।।[४*]

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

४. मुक्तामुक्त-पयः - प्रवाह - शिशिरासूत्तुङ्ग - ताली-वन-भ्राम्यद्दन्ति-करावलून-कदली-काण्डेषु वेलास्वापि। श्च्योतत्स्फार-तुषार-निर्झर-पयःशीते [ऽ*]पि शैले स्थितान्यस्योच्चैर्द्विषतो मुमोच

५. न महाघोरः प्रताप-ज्वरः ॥[५*] यस्यातिमानुषं कर्म्म दृश्यते विस्मयाज्जनौघेन। अद्यापि कोशवर्द्धनतटात्प्लुतं पवनजस्येव ॥[६*] प्रख्यात-शक्तिमाजिषु **पुरः-सरं श्री-कुमा-**

६. **रगुप्तमिति**। अजनयदेकं स नृपो हर इव शिखि-वाहनं तनयं ॥[७*] उत्सर्प्पद्वात - हेला - चलित - कदलिका-वीचि-माला-वितानः प्रोद्यद्धूली-जलौघ-भ्रमित-गुरु-महामत्त-

७. मातङ्ग-शैलः। भीमः **श्रीशानवर्म्म**-क्षितिपति-शशिनः सैन्य-दुग्धोद-सिन्धुर्ल्लक्ष्मी-संप्राप्ति-हेतुः सपदि विमथितो मन्दरीभूय येन ॥[८*] शौर्य-सत्य-व्रत-धरो यः प्रयाग-गतो ध-

८. ने। अम्भसीव करीषाग्नौ मग्नः स पुष्प-पूजितः ॥[९*] श्री-दामोदरगुप्तो [ऽ*]भूत्तनयस्तस्य भूपतेः। येन दामोदरेणेव दैत्या इव हता द्विषः ॥[१०*] **यो मौखरेः समितिषद्ध-**

९. त-हूण-सैन्या वल्गद्धटा-विघटयन्नुरु-वारणानां। संमूर्च्छितः सुर-वधु(धू)र्वरयं(यन्) ममेति तत्पाण(णि)-पङ्कज-सुख-स्पर्शाद्विवु-(बु) द्धः ॥[११*] गुणव[द्*]-द्विज-कन्याना (नां) नानालंकार-यौवन-

१०. वतीनां। परिणायितवान्स नृपः शतं नि (वि) सृष्टाग्रहाराणां ॥[१२*] [श्री]महासेनगुप्तो [ऽ*]भूत्तस्माद्वीराग्र-णी[ः*] सुतः। सर्व्व-वीर-समाजेषु लेभे यो धुरि वीरत[ां] [॥१३*] [श्री]-मत्सुस्थितवर्म्म-युद्ध-विजय-

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

११. श्लाघा-पदाङ्कं मुहुर्यस्याद्यापि विवु (बु) द्ध-कुन्द-कुमुद-त्तुण्णा(?)-च्छहार[ायि?]त (तं)। लौहित्यस्य त[टे]षु [शी]तल-त[ले]-षू [त्फु] ल (ल्ल)नाग-[द्रु] म-च्छाया-सुप्त-विवु (बु) द्ध-[सि]द्ध-[मि]थुनैः [स्फी]तं यशो गीयते ।।[१४*] वसुदेवा-

१२. दिव तस्माच्छी - [से]वन - [शो?भो]दित - चरण - युगः । श्री-माधवगुप्तो [ऽ*]भून्माधव इव विक्रमैक-रस[ः।।] [१५*] [– – – ‿ ‿]नुस्मृतो धुरि र[णे] श्लघवतामग्र[णी]ः सो(सौ)जन्य-स्यनिधानमर्थ-निध (च)-

१३. य-त्यागो[द्*]धुराणां ध(व)र[ः]। ल[क्ष्मी]-स[त्य-स]रस्वती-कुल-गृ[हं] धर्मस्य सेतुर्द्दढः पू(?)ज्यो(?)ना[स्ति] स [भू]-तले [‿ ‿ ‿ – – – – ‿]ल[ः?] सद्गु[णैः] ।।[१६*] च[क्र] पाणि-तलेन सो [ऽ*]प्युदवहत्तस्यापि शा[र्ङ्ग] धनु-

१४. र्न्नाशायासुहृद[ां] सुखाय सुहृदां तस्याप्यसिर्नन्दकः । प्राप्ते विद्विषतां वधे प्रतिह[तं ?] तेनाप [– – ‿ – – – – ‿ ‿ – ‿ –] ठ(?) रि (?) म(?) [– –]न्याः प्रणंमुर्ज्जनाः ।।[१७*] आजौ मया विनिहिता व(ब)-

१५. लिनो द्विष[न्तः] कृ[त्यं] न म(मे) [ऽ*]]त्यपरमित्यवधार्य्य वीरः [।] **श्री-हर्षदेव-निज-**[सं]गम-वाञ्छया च(?) [– – ‿ – ‿ ‿ ‿ – ‿ ‿ – ‿ – – ।।] [१८*] श्रीमन्व(न्ब)भूव दलितारि-करीन्द्र-कुम्भ-मुक्ता-रज -

१६. पटल-पांसुल-मण्डलाग्रः । **आदित्यसेन** इति तत्तनयः क्षितीश-चूडाम[णि]र्द्द[‿ ‿ – ‿ ‿ – ‿ – – ।।] [१९*] [– – – ‿ ‿ – ‿] मागतमरिध्वंसोत्थमाप्तं यशः श्लाघ्यं

१७. सर्व्वं धनुष्मतां पुर इति श्लाघां परां बिभ्रति । आशीर्व्वाद-परं-

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

परा चि(?)र-सक्र(?)द् [— — ⏑ — — ⏑ — — — — — ⏑ ⏑
— ⏑ — ⏑ ⏑ ⏑ — — — ⏑] यामासम(?) ॥[२०*] आजौ
स्वेद-च्छलेन ध्व-

१८. ज-पट-शिखया मार्ज्जतो दान-पङ्कं खड्गं क्षुण्णेन मुक्ता-शकल-
सिकत[ली]कृ(?)त्य(?) [— — ⏑ — — — — — — ⏑ — —
⏑ ⏑ ⏑ ⏑ ⏑ ⏑] मत(त्त)-मा[तं]ग-घातं तद्गन्धाकृष्ट-
सर्प्पद्व(द्ब)-

१९. हल-परिमल-भ्रात्त(न्त)-मत्तालि-जालं ॥[२१*] आव(ब)द्ध-
भीम-विकट-भ्रुकुटी-कठोर-[सं]गा(ग्रा)म [— ⏑ ⏑ ⏑ — ⏑
⏑ — ⏑ — —। — — ⏑ — ⏑ ⏑]व-वल्लभ - वर्ग्ग - भृत्य-
गोष्ठीषु पेश-

२०. लतया परिहास-शीलः ॥[२२*] सत्य-भर्त्तृ-व्रता यस्य मुखोप-
ध[ा]न-तापसी। प[रि]हास [— ⏑ — — — — — — — ⏑ — ⏑
— ॥] [२३*] [— — — — ⏑ —]ज्ञः सकल-रिपु-व(ब)ल-ध्वंस-
हेतुर्ग्गरी-

२१. यान्निर्स्त्रिशोत्खात-धात-श्रम-जनित-जडो [ऽ*]प्यूर्ज्जित-स्व-प्रतापः।
युद्धे मत्तेभ-कुम्भ-स्थ[ल⏑ ⏑ ⏑ ⏑ — — ⏑ — — ⏑ — — — —]
[श्वे]तातपत्र-स्थगित-वसुमती-मण्डलो लो-

२२. क-पालः ॥[२४*] आजौ मत्त-गजेन्द्र-कुम्भ-दलन-स्फीत स्फुरद्दो-
र्युगो ध्वस्ताने(?)क(?) रिपु-प्रभाव-[व ⏑ — — — —] यशो-
मण्डलः। न्यस्ताशेष-नरेन्द्र-मौलि-चरण-स्फार-प्रतापान-

२३. लो लक्ष्मीवान्समराभिमान-विमल-प्रख्यात-कीर्त्तिर्नृपः ॥[२५*]
येनेयं शरदिन्दु-विम्व(बिम्ब)-धवला प्रख्यात-भूमण्डला लक्ष्मी-
संगम-कांक्षया सुमहती कीर्त्तिश्चिरं कोपिता। याता सा-

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

२४. गर-पारमद्भुततमा सापत्न्य-वैरादहो तेनेदं भवनोत्तमं क्षिति-
भुजा विष्णोः कृते कारितं ।।[२६*] तज्जनन्या महादेव्या श्रीमत्या
कारितो मठः । धार्मिकेभ्य[ः] स्वयं दत्तः सुरलो-
२५. क-गृहोपमः ।।[२७*] शंखन्दु-स्फटिक-प्रभा-प्रतिसम-स्फार-स्फुर-
च्छीकरं नक्र-क्रान्ति-चलत्तरङ्ग-विलसत्पक्षि-प्रनृत्यत्तिमि ।० राज्ञा
खानितमद्भुतं सुतपसा पेपीयमानं
२६. जनैस्तस्यैव प्रिय-भार्यया नरपतेः **श्रीकोणदेव्या** सरः ।।[२८*] या-
वच्चन्द्र-कला हरस्य शिरसि श्रीः शार्ङ्गिणो वक्षसि व्र (ब्र) ह्मास्ये
च सरस्वती कृत-
२७. [‿ – – – – ‿ – – ‿ –] । [भोगे] भूभुंजगाधिपस्य च तडि-
द्यावद्घनस्योदरे तावत्कीर्त्तिमिहातनोति धवला**मादित्यसेनो नृपः**
।।[२९*] सूक्ष्मशिवेन गौडेन प्रशस्ति**र्विकटाक्षरा** ।।(।)
१८. [– – –]मा(?) मिता सम्यग्धार्म्मिकेन सुधीमता ।।[३०*]

मंदारगिरि (मंदार) शिला लेख

(एक अंश)

ओ० परम भट्टारक महाराजाधिराज श्री **आदित्यसेनदेव** दयिता परम भट्टारिका राज्ञी महादेवी श्री **कोणदेवी** पुष्करिणी कृतं इयां कारित वति ।

(दूसरा अंश)

ओ० परमभट्टारक महाराजाधिराज श्री आदित्यसेनदेव दयिता परमभट्टारिका राज्ञी महादेवी कोणदेवी पुष्करिणी कृतं इयं कारितवति ।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

शाहपुर अभिलेख

चंद्रक्षितिकालं यावत्प्रतिपादितं ओ० सम्वत् ६०६ मार्ग सुदि ७ अस्यां दिवस मास संवत्सर अनुपूर्व्या श्री आदित्यसेन देव राज्ये नालंदा महाग्रहारे साधुना वलाधिकृत शालपक्षेण देय धम्मो यं प्रतिष्ठितं

माता पित्रो आत्मनश्च पुण्या—भिवृद्धये ।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

विष्णुगुप्त का अभिलेख

मंगरांव लेख

ओं महाराजाधिराज परमेश्वर श्री विष्णुगुप्त देव प्रवर्द्धमान विजय राज्यं सम्वत्सरे सप्तदेश सम्व (त) १ (या १००), १०, ७ श्रावण शुदि चुन्दस्कीला तपोवन प्रतिष्ठित श्री मित्र केशवदेव प्रतिवद्ध पुष्पपट्टे स्वसिद्धान्त भिरत अनेक शिव सिद्धायतन तीर्थावगाहन पवित्रीकृत तनुः कुट्टुकदेशीय अविमुक्तज्जः अंगार ग्राम के सकल कुटुम्बिनां सकासादा चन्द्रार्क क्षिति समकालीन तैलस्य पलमेकमुपक्रीय भगवतः श्री सुभद्रेश्वर देवस्य प्रदीपार्थं प्रतिपादितवान्। एवं योन्यथा करोति यदत्रापायं स्तनदवा नोतीति। लिखिता देवदत्तेन संक्षिप्ता क्रय चीरिका। उत्कीर्णा सूत्र धारेण कुलादित्येन धीमता।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

द्वितीय जीवितगुप्त का अभिलेख

देव वरनार्क लेख

१. स्वस्ति। शक्ति त्रयोपात्त जयशब्दान् महान्नौह हस्त्यअश्वपति संभार दुर्निवाराज्य स्कन्धावारात् गोमतिकोट्टक समीप वास

२. श्री माधवगुप्तस्तस्य पुत्रस्ततपादानुध्यातः परमभट्टारिकायां राज्ञां महादेब्यां श्री श्रीमत्यां उत्पन्नः परमभागवतः श्री आदित्य

३. **सेन** देवस्तस्य पुत्रस्ततपादानुध्यातः परमभट्टारिकायां राज्ञां महादेव्यां श्री कोणदेव्यामुत्पन्नः परममाहेश्वर परमभट्टारक महाराजा

४. धिराज परमेश्वर श्री देवगुप्तदेवस्तस्य पुत्र तत्पादानुध्यातः परम-भट्टारिकायां राज्ञां महादेव्यां श्री कमलदेव्यांमुत्पन्नः परम

५. माहेश्वर परमभट्टारक महाराजाधिराज परममाहेश्वर श्री विष्णुगुप्त-देवस्तस्य पुत्रः तत्पादानुध्यातः परमभट्टारिकायां राज्ञ्यां महादेव्यां श्री इज्जादेव्यां

६. उत्पन्नः परम ··· परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री जिवित गुप्तदेवा कुशली नगर भुक्तौ वालवि वैशयिक श्री वावो ··· ··· ··· ···

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

७. ... ... पद्रलिक क्षान्तशपाति वारुणिका ग्राम गोष्ठनकुल तलावाटक दूत सिमकर्मंकर मद्य ... ...

८. ... ... राजपुत्र राजामात्र महाक्ष(पट लिक महादण्ड नायमक महाप्रतिहार महासां(धि) ... ...

९. ... ... कुमारामात्य राजस्थानीय उपरिक ... ... चौरोद्धरणिक दण्डिक, दण्डपाशिक ... ...

१०. ... ... बलत्यावत किशोर वाटक ग्रामः ... ... यनिक ... ...

११. ... ... अस्मतपाद प्रसादो पजिविनः च प्रतिवासिन च ब्राह्मणोत्तरान् महत्तर ककुक्षिपुर

१२. ... ... विज्ञापित श्री **वरुणवासी** भट्टारक प्रतिवद्ध भोजक सूर्यमित्रेण उपरिलिखित

१३. ... ... ग्रामादि संयुक्तं परमेश्वर श्री **वलादित्यवेन** स्वशासनेन भगव श्री वरुणवासी भट्टारक

१४. ... ... परिवाहक भोजक हंसमित्रस्य समापत्या यथाकालाध्यासिभिश्च इवं परमेश्वर

१५. **श्री सर्व्ववर्म्मा** ... ... भोजक ऋषिमित्र यतकां एवं परमेश्वर श्रीमद् अवन्तिवर्म्म पूर्वदत्तकं

१६. ... ... एवं महाराजाधिराज परमेश्वर ... ... शासनदानेन भोजक दुर्घमित्रस्य अनुमो (दित)

१७. ... ... तेन भुज्यते तदहं किमपि एवं मतिमान अनुमोदितं इति

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

सामंतों के अभिलेख

वैग्राम ताम्रपत्र लेख (गु० सं० १२९)

पहली ओर

१. स्वस्ति[।।*] **पञ्चनगर्य्यां** भट्टारक-पादानुध्यातः कुमारामात्य-**कुलवृद्धिरेत**-द्विषयाधिकरणञ्च

२. **वायिग्रामिक-त्रिवृत(।*)-श्रीगोहाल्योः** ब्राह्मणोत्तरान्सम्व्यवहारि-प्रमुखान्ग्राम-कुटुम्बिनः कुशलमनु-

३. वर्ण्य बोधयन्ति [।*] विज्ञापयतोरत्रैव वास्तव्य-कुटुम्बि-**भोयिल-भास्करावावयोः** पित्रा शिवनन्दि-

४. ना कारि[त]क(*) भगवतो **गोविन्दस्वामिनः** देवकुलस्तदसावल्प-वृत्तिकः [।*] इह-विषये समुदय-

५. बाह्याद्यस्तम्ब-खिल-क्षेत्राणामकिञ्चित्प्रतिकराणां शश्वदाचन्द्रार्क्कतारक-भोज्याना-मक्षय-नीव्या

६. **द्विदीनारिक्क्यकुल्यवाप**-विक्क्रयो(ऽ*)नुवृत्तस्तदर्हथावयोस्सकाशात्षड्दी-नारानष्ट च रूप-कानायी-

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

७. [कृ]त्य भगवतो **गोविन्दस्वामिनो देवकुले [ख]ण्ड-फुट्ट-प्रतिसंस्क (ा*)र करणाय गन्ध-धूप-दीप-**

८. **सुमनसा(ं*) प्रवर्त्तनाय च त्रिवृतायां भोगिलस्य** खिलक्षेत्र-कुल्यवाप-त्रयं **श्रीगोहाल्याश्चापि**

९. तल-वाटकार्थं(ं*) स्थल-वास्तुनो द्रोणवापमेकं **भास्करस्यापि** स्थलवास्तुनो द्रोण-वापञ्च दातु-

१०. मि[ति] [।*] यतो युष्मान्बोधयाम(:*) पुस्तपाल-दुर्ग्गदत्तार्क्कदास-योरवधारणया अवधृत-

११. मस्तीह-विषये समुदय-ब्याह्याद्यस्तम्ब-खिल-क्षेत्राणा(ं*) शश्वदा-चन्द्रार्क्क-तारक-भोज्यानां द्विदी-

१२. नारिक्यकुल्यवाप-विक्रयो(ऽ*)नुवृत्तः [।*] एवंविधाप्रतिकर-खिलक्षेत्र-विक्क्रये च न कश्चिद्राजार्त्थ-

१३. विरोध उपचय एव भट्टारक-पादानां धर्म्मफल-षड्भागावाप्तिश्च तद्दीयतामिति [।*] एतयोः

१४. भोयिल-भास्करयोस्सका(शा*)त्षड्दीनारानष्ट च रूपकानायीकृत्य भगवतो **गोविन्द-स्वामिनो**

१५. देवकुलस्यार्त्थे भोयिलस्य **त्रिवृतायां** खिलक्षेत्र-कुल्यवापं-त्रयं तलवाट-काद्यर्त्थम्

दूसरी ओर

१६. **श्रीगोहाल्या(ं*)** स्थल-वास्तुनो द्रोणवापं भास्करास्याप्यत्रैव स्थले-वस्तुनो द्रोणवाप-

१७. मेव(ं*) कुल्यवाप-त्रयं स्थल-द्रोणवाप-द्वयञ्च अक्षयनीव्यास्ताम्र-पट्टेन दत्तम् [।*] निम्न-

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

१८. कु ३ स्थल-द्रो २ [।*] ते यूयं स्वकर्षणाविरोधि-स्थाने दर्व्वी-कर्म्म-
हस्तेनाष्टक-नवक-नलाभ्या-

१९. मंपविञ्च्छद्य चिरकाल-स्थ(ा*)यि-तुषाङ्गारादिना चिह्नैश्चातुर्द्दिशो
नियम्य दास्यथाक्षय-

२०. नीवी-धर्म्मेन च शश्वत्कालमनुपालयिष्यथ [।*] वर्त्तमान-भविष्यैश्च
संव्यवहार्य्यादि-भिरेत-

२१. द्धर्म्मापेक्षयानुपालयितव्यमिति [॥*] **उक्तञ्च भगव(ता*) वेदव्यास-
महात्मना** [।*] स्व-दत्तां पर-दत्तां

२२. व्वा यो हरेत वसुन्धरां ।
स विष्ठायां क्रिमिर्भूत्वा पितृभिस्सह पच्यते [॥*]
षष्टिं वर्ष-सह-

२३. स्राणि स्वर्ग्गे मोदति भूमिदः [।*]
आक्षेप्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत्- [॥*]
पूर्व्वं-

२४. दत्तां द्विजातिभ्यो यत्नाद्रक्ष युद्धिष्ठिर [।*]
मही(*) महिमतां श्रेष्ठ दानाच्छ्रेयो(ऽ*)नुपाल-

२५. नमिति [॥*]
सं १००(+*)२०(+*)८ माघ-दि १०(+*)९ [॥*]

पहाड़पुर ताम्रपत्र लेख (गु० सं० १५९)

पहली ओर

१. स्वस्ति [॥*] पुण्ड्र[वर्द्ध]नानायुक्तका आर्य्यनगरश्रेष्ठि-पुरोगञ्चाधिष्ठा-
नाधिकरणम् दक्षिणांशकवीथेय-नागरिट्ट-

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

२. माण्डलिक-**पलाशाट्ट**पार्श्विक-**वटगोहाली**-जम्बुदेवप्रावेश्य**पृष्ठिमपोत्तक-**
गोषाट-पुञ्जक-मूलनागिरट्टप्रावेश्य-

३. **नित्वगोहालीषु** ब्राह्मणोत्तरान्महत्तरादि-कुटुम्बिनः कुशलमनुवर्ण्यानु-
बोधयन्ति [।*] विज्ञापयत्यस्मान्ब्राह्मण-नाथ-

४. शर्म्मा एतद्भार्य्या रामी **च** [।*] युष्माकमिहाधिष्ठानाधिकरणे
द्वि-दीनारिक्क्य-कुल्यवापेन शश्वत्कालोपभोग्याक्षयनीवी-समुदय-
वाह्या-

५. प्रतिकर-खिलक्षेत्रवास्तु-विक्क्रयो(ऽ*)नुवृत्तस्तदर्हथानेनैव क्क्रमेणावयो-
स्सकाशाद्दीनार-त्रयमुपसङ्गृह्यावयो(:*) स्व-पुण्याप्या-

६. यनाय **वटगोहाल्या**मवास्याङ्काशिक-पञ्चस्तूपनिकायिक-निग्रन्थश्रमणा-
चार्य्य-गुह-नन्दि-शिष्यप्रशिष्या**धिष्ठित-विहारे**

७. **भगवतामर्हतां गन्ध-धूप-सुमनो-दीपाद्यर्थन्तलवाटक-निमित्तञ्च अ**
(तः*) एव **वट-गोहली**तो वास्तु-द्रोणवापमध्यर्द्धञ्ज-

८. म्बुदेवप्रावेश्य-**पृष्ठिमपोत्तके** क्षेत्रं द्रोणवाप-चतुष्टयं **गोषाटपुञ्जा-**
द्द्रोणवाप-चतुष्टयम् मूलनागिरट्ट-

९. प्रावेश्य-**नित्वगोहालीतः** अर्द्धत्रिक-द्रोणवापानित्येवमध्यर्द्धं क्षेत्र-
कुल्यवापमक्षय-नीव्या दातुमि[ति] [।*] यतः प्रथम-

१०. पुस्तपालदिवाकरनन्दि-पुस्तपालधृतिविष्णु-विरोचन-रामदास-हरिदास-
शशिनन्दि-[सु]प्रभ-मनुद[त्ताना]मवधारण-

११. यावधृतम् अस्त्यस्मदधिष्ठानाधिकरणे द्वि-दीनारिक्क्य-कुल्यवापेन
शश्वत्कालोपभोग्या-क्षयनीवी-समु[दय]वाह्याप्रतिकर-

१२. [खिल*]क्षेत्रवास्तु-विक्क्रयो(ऽ*)नुवृत्तस्तद्यद्युष्माम्ब्राह्मण-नाथशर्म्मा
एतद्भार्य्या रामी च **पलाशाट्ट**पार्श्विक-**वटगोहाली-स्थ[ायि]-**

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

दूसरी ओर

१३. [का।श॰]क-पञ्चस्तूपकुलनिकायिक-आचार्य्य-निग्रन्थ-गुहनन्दि-शिष्य-
प्रशिष्याधिष्ठित-सद्विहारे अरहतां गन्ध-[धूप]ाद्यु पयोगाय

१४. [तल-वा॰]टक-निमित्तञ्च तत्रैव **वटगोहाल्यां** वास्तु-द्रोणवापमध्यर्द्धं
क्षेत्रञ्जम्बुदेव-प्रावेश्य-**पृष्ठिमपोत्तके** द्रोणवाप-चतुष्टयं

१५. **गोषाटपुञ्जाद्द्** ोणवाप-चतुष्टयं मूलनागिरट्ट-प्रावेश्य-**नित्वगोहालीतो**
द्रोणवाप-द्वय-माढवा[प-द्व]याधिकमित्येवम-

१६. ध्यर्द्धं क्षेत्र-कुल्यवापम्प्रार्थयते(ऽ॰)त्र न कश्चिद्विरोधः गुणस्तु
यत्परमभट्टारक-पादानामर्त्थोपचयो **धर्म्म-षड्भागाप्याय-**

१७. नञ्च भवति [।॰] तदेवङ्कि्रयतामित्यनेनावधारणा-क्रमेणा-
स्मादब्राह्मणनाथशर्म्मत एतद्भार्य्याराामियाश्च दीनार-त्र-

१८. यमायीकृत्यैताभ्यां विज्ञापितक - क्रमोपयोगायोपरि - निर्द्दिष्ट - ग्राम-
गोहालिकेषु तल-वाटक-वास्तुना सह क्षेत्रं

१९. कुल्यवाप(:॰) अध्यर्द्धो(ऽ॰)क्षय-नीवी-धर्म्मेण दत्तः [।॰] कु १ द्रो ४
[।॰] तद्यु ष्माभिः स्व-कर्षणाविरोधि-स्थाने षट्क-नडैरप-

२०. विञ्छ्छ्य दातव्यो(ऽ॰)क्षय-नीवी-धर्म्मेण च शश्वदाचन्द्रार्क्क-तारक-
कालमनुपाल-यितव्य इति [।।॰] **सम्** १००(+॰)५०(+॰)९

२१. माघ-दि ७ [।॰] उक्तञ्च भगवता व्यासेन [।॰]
स्व-दत्तां परदत्तां वा यो हरेत वसुन्धराम् [।॰]

२२. स विष्ठायां क्रिमिर्भूत्वा पितृभिस्सह पच्यते [।।॰]
षष्टि-वर्षसहस्राणि स्वर्ग्गे वसति भूमिदः [।*]

२३. आक्षेप्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत् [।।*]
राजभिर्व्वहुभिर्द्दत्ता दीयते च पुनः पुनः [।*]
यस्य यस्य

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

२४. यदा भूमि तस्य तस्य तदा फलम् [।।*]
पूर्व्वं-दत्तां द्विजातिभ्यो यत्नाद्रक्ष युधिष्ठिर [।*]
महीम्महीमतां श्रेष्ठ
२५. दानाच्छ्रेयो(ऽ*)नुपालनं [।।*]
विन्ध्याटवीष्वनम्भस्सु शुष्क-कोटर-वासिन(:*) [।*]
कृष्णाहिनो हि जायन्ते देव-दायं हरन्ति ये [।।*]

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

परिव्राजक महाराजा हस्तिन का अभिलेख

खोह ताम्रपत्र लेख

पहली ओर

१. नमो महादेवाय—स्वस्ति त्रि-षष्टचुत्तरे [ऽ*]ब्द-शते **गुप्त-नृप-राज्य-भुक्तौ**

२. महाश्वयुज-संवत्य (त्स)रे चैत्र-मास-शुक्ल-पक्ष-द्वितीय[ा*]या-मस्य[ा*]न्दिवस-

३. पूर्व्व[ा*]या(यां) नृपति-परिव्राजक-कुलोत्पन्नेन महाराज-देवाढ्य-प्रनप्त(प्त्र)ा

४. महाराज-श्री-प्रभञ्जन-नप्त्रा महाराज-दामोदर-सुतेन गो-सहस्र-

५. हस्त्यश्व-हिरण्यानेक-भूमि-प्रदेन गुरु-पितृ-मातृ-पूज[ा*]-तनत्प-(तत्प)रेणा-

६. त्यन्त-देव-ब्राह्मण-भक्तेन नैक-समर-शत-विजयिना स्व-वन्शा-मोद-क-

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

७. रेण-महाराज-श्री-**हस्तिना** स्व-पुण्याप्यायनार्थमग्निस्व[ा*]मि-
पुत्त्र-भरद्वाज-

८. सगोत्त्रस्वाजि(ज)सनेय-सब्रह्मचारि (रि)णे देवस्वामिने शर्व्वस्वा-
मिने च

९. गोरि(गौरी)स्वामिने वाजि(ज)सनेय - सब्रह्मचारिणे कौत्स-
सगोत्त्राय दि-

१०. वाकर-स्वामिने च स्व[ा*]तिस्वामिने वाजसनेय-सब्रा (ब्र)ह्मचा-
रिणे भार्ग्ग-

११. व-सगोत्त्राय वरुणशर्म्मणः(णे) बप्पस्वामिने वासुल-सगोत्त्र[ा*]य

१२. कठ-सब्रह्मचारिणे कुमारदेवरेव(देवाय) वाजि(ज) सनेय-सब्रह्म-
च[ा*]रि-

१३. न (णे) मात(तृ) शर्म्मः (र्म्म)-रुखरदेवः (व) -कौद्रवदेवः (व)-
विष्ण(ष्णु)देवः (व)-

दूसरी ओर

१४. देवनाग-कुमारसेन-रुद्रशर्म्म-। देवदाङ्ग(ङ्गि)र[ो*]-लम्वो(म्बो)
ष्ठदेदमित (देवमित्र)-

१५. महादेव-गुण्ठक-इत्येवमादिभ्यो ब्रह्मणेभ्यो (भ्य) [उ*]त्तरे पट्टे
कोर्प्परि-

१६. काग्रहारः **सोद्रङ्गः सोपरिकरः अ-चाट-भट-प्रावेश्यो** [ऽ*]तिसृष्टः

१७. स्त(त)स्याघाटाः पूर्व्वेण कोर्प्पर-गर्त्ता। उत्तरेणानिमुक्तक-कोणकः

१८. वङ्गर-ग्रामकस्य दक्षिण-प[ा*]श्वें वलक-मद्धचेम(द्धचमे) वृकः
अम्ब्र(भ्र)ातसंता (भा ?) र-

१९. कः [।*] पश्चिमेन नागसरी। दक्षिणेन बलवर्म्म-परिच्छेदः [।।*]
तदस्म-

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

२०. कु (त्कु)लोत्थैर्म्मत्पादमि(पि)ण्डोपजीविभिर्व्वा कालान्तरेष्वपि न व्याघातः कार्य्यं[:※] [।※]

२१. एवमाज्ञाप्त(ज्ञप्ते) यो [ऽ※]न्यथा कुर्य्यान्ति(त्त) महं देहान्तर-गतो [ऽ※] पि महतावध्याने-

२२. न निर्दहे[यम् ।※] दु(उ) क्तञ्च भगवता परमर्षिणा वेद-व्यासेन [।※] पूर्व्व-दत्ता (त्तां)

२३. द्विजातिभ्यो यत्नाद्रक्ष्य (क्ष) युधिष्ठिरः (र) [।※] मही (हीं) मह-(हि)मतां श्रे ष्ठ दानाच्छ्रे -

२४. यो [ऽ※]नुपालनं ।[।१※] बहुभिर्व्वसुधा भुक्ता राजभिः सगरा-दिभिः [।※] स(य)स्य य

२५. यस्य यदा भूमिस्तस्य [तस्य※] तदा फलन्(म्) [।।२※] स्व-दत्ता-(त्तां) पर-दत्तां वा यो हरे-

२६. त वसुन्धराः(राम्) [। ※] स विष्ठया(विष्ठायां) कृमिभूंत्वा पित्रभि(पितृभिः) सह पच्यते [।।३※]

तीसरी ओर

२७. षष्टः(ष्टिं) व्व (व) [र्ष※]-सहस्राणि स्वर्गे मोदति भु (भू) मिदः [।※] आच्छेता (त्ता)

२८. चानुमन्ता[※] म(च) त[ा※]न्येव नरके वसे[त्※] [।।४※] लिखि-तञ्च वक्काम[ा※]त्य-प्रन-

२९. प्त्रनत्रा(प्त्रा) भोगिक-नरदत्त-नप्ता(प्त्रा) भोगिक-रविदत्त-पुत्रेन्(ण) महा-

३०. सान्धिविग्रहिक-सूर्यदतेनः(दत्तेन) [।※] भग्रहो दूतक[:।।※]

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

उच्छकल्प महाराजा जयनाथ का अभिलेख

कारितलाई ताम्रपत्र लेख (तिथि १७४)

१. ओं स्वस्ति । उच्चकलपान् महाराजा ओझदेवस् तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातो

२. महादेव्यां कुमार देव्यामुत्पन्नो महाराज कुमार देवस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातो

३. महादेव्यां जयस्वामिन्यामुत्पन्नो महाराज जयस्वामि तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातो

४. महादेव्यां रामदेव्यामुत्पन्नो महाराज व्याघ्रस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातो महा-

५. देव्यां अज्झितदेव्यामुत्पन्नो महाराज जयनाथः कुशली। नागदीय सेतक

६. छँदापालिकायां ब्राह्मणादीन् कुटुम्बिना कारुकांश्च समाज्ञापयति। वदतं (विदितं)

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

७. स्तुयथैस ग्रामो मया स्वपुण्याभिवृद्धये काण्व सगोत्र वाजसनेय माध्यन्दिन

८. ब्राह्मण मित्रस्वामिन। सोद्रंग सोपरिकर अचाट भट प्रवेश्यः

९. चोर वर्ज्जितोतिसृष्ठ युयं अस्य समुचित भागभोग कर प्रत्यायोपनयं

१०. ककरिस्थथ आज्ञा श्रवण विधेयश्च भविष्यत चास्मद् वंशोत्पद्य मानक

११. राजानस्तैरियं दत्तिर्न्न विलोप्यानुमोदनिया। समुचित राजा। यश्च

१२. भाव्य कर प्रत्याया न ग्राह्याः
इमां दत्तं लोपयेत स पंचभिः

१३. महापातकैः उपपातकैश्च संयुक्तः स्याद् उक्तं च महाभारते भगवता व्यासेन।

१४. स्वदत्ता परदत्तां वा यत्नाद रक्ष युधिष्ठिर महिं महिमतां श्रेष्ठ

१५. दानो च छ्रेयोनुपालनां। बहुभि बसुधा भुक्ता राजाभिः सागरादिभिः

१६. यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलम्
प्रायेण हि नरेन्द्राणां विद्यते ना

१७. शुभा गतिः, पूयान्ते तेस्तु सततं प्रायच्छन्तो बसुन्धराम्॥

१८. षष्टि वर्ष सहस्राणि स्वर्गमोदतिभूमिदः आच्छता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत्

१९. आस्फोट लयन्ति पितरः प्रवल्गंति पितामहाः भूमि दोस्म कुले जातः

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

२०. नो त्राता भविष्यन्ति। सर्व्वं सस्य समृद्धान्तु यो हरेत वसुन्धराम् स्व विष्ठायां कृमिभूत्वा

२१. पितृभिः सह मज्जति संवत्सर गते चतुः सप्तते आषाढ़-मास-

२२. स्य चतुर्दशमे दिवसे अस्यां दिवस पूर्व्वायां लिखितं मया भोगिक राज्ञी

२३. आमात्य नप्तृ भोगिक ध्रुवदत्त पुत्र भोगिक गुञ्जकीर्तिना दूतक उपरिक

२४. दीक्षित गृहपति स्थपति सम्राट् सर्व्वदत्त इति। संवत् १०० ७० ४ आषाढ़ दिवस १०

खोह ताम्रपत्र लेख (गु० सं० १७७)

प्रथम भाग

१. स्वस्त्य। उच्छकल्पान् महाराज औघदेवस तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातो महा-

२. देव्यां कुमारदेव्यां उत्पन्नो महाराज कुमार देवस तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातो

३. महादेव्यां जयस्वामिन्यां उत्पन्नो महाराज जयस्वामि तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातो

४. महादेव्यां रामदेव्यां उत्पन्नो महाराज व्याघ्रस तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातो महा-

५. देव्यां अज्झित देव्यां उत्पन्नो महाराज जयनाथः कुशली घवशंडिकायां

६. ब्राह्मणादीन कुटुम्बिनां कारुकांश्च समाज्ञापयति। विदितं वोस्तु यथा एश ग्रामो मया

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

७. चंद्रार्क समकालीनः शाशातनेय सर्व्ववाढ़ दिविर तत्पुत्र भागवत गंग पुत्र

८. रंकवोट अजगर दासानां स्वपुण्याबभिवृद्धये भगवत पादेभ्यः देवग्राहारो त्रिषिष्ठः

९. एभिः च आत्र प्रतिष्ठापितक भगवत पादानां पुत्र प्रपौत्र तत्पुत्रादि क्रमेण खंड

१०. फुट प्रतिसंस्कारेण वलि चारु सत्र प्रवर्तनाद्यनुष्ठानेन च स्वपुण्याभिवृद्धः

११. कर्त्तव्या। ते यूयं एषां समुचित शुल्क भाग भोग कर हिरण्यादि प्रत्यायोपनयं

१२. करिष्यत आज्ञा श्रवण विधेयाश्च भविष्यत। ये चास्मद वंशोत्पद्य मानक राज्ञानस्तैर्यं

१३. दत्तिन्न विलोप्या अनुमोदनिया समुचित राजाभाव्य कर प्रत्याया न ग्राह्याः।

द्वितीय भाग

१४. चोर दंड वर्ज्यं। कालानुकालां च प्रतिपालनिय। यश्च इमां दत्तं लोपयेत्स पंचभिः

१५. महापातकैः उपपातकैश्च संयुक्तः स्यात्। उक्तं च महाभारते भगवता वेदव्यासेन

१६. व्यासेन। स्वदत्तां परदत्तां वा यत्नात्रक्ष युधिष्ठिर।
महीं महीमतां श्रेष्ठ दाना च श्रेयोनुपालनं

१७. प्रायेणंहि नरेन्द्रानां विद्यते ना शुभा गतिः
पूयत्ते तेतु सततं प्रयच्छन्तो बसुन्धराम्।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

१८. स षष्टि वर्ष सहस्राणि स्वर्गे मोदति भूमिदः ।
आच्छेत्ता चानुमंता च तान्येव नरके वसेत् ।।

१६. वहुभिर्व्वसुधा भक्ता राजभिः सगरादिभिः ।
यस्य यस्य यदा भूमिः तस्य तस्य तदा फलम् ।।

२०. सर्व्वं सस्य समृद्धान् यो हरेत बसुन्धराम् ।
स विष्ठायां कृमि भूत्वा पितृभिः सह मज्जते ।।

२१. संवत्सर शते सप्त सप्तत्युत्तरे चैत्रमास दिवसे द्वाविंशतिमे लिखितं
भोगिक फाल्गुदत्त आमात्य

२२. आमात्य नपत्रा भोगिक वराहदिन पुत्र सांधिविग्रहिक गल्लुनां ।
दूतको परिक दीक्षित गृह

२३. पति स्थपति सम्राट् छर्वदत्तः ।।
यात्राधाटः धान्यवाहिक प्रत्युद्देशे गर्त्ता पाली च ।

२४. दुर्ग्गमंडल प्रदेशे पाली ।
सुवर्णकक्षक प्रदेशे गोपथ सरः अर्द्धेन च पाली ।

२५. आमुक प्रदेशे गर्त्ता दारमंडल प्रदेशे पाली । वक्रवन प्रावेश्य मंडल
प्रदेशे पाली ।

२६. ग्रामे यावत्कूपं प्रविष्ठः इति ।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

उच्छकल्प महाराज सर्वनाथ का अभिलेख

खोह ताम्रपत्र लेख (तिथि १९३)

प्रथम भाग

१. ओं स्वस्त्य। उच्छकल्पान महाराज औघदेवः तस्य पुत्रः तत्पादानुध्यातो महादेव्यां

२. कुमारदेव्यामुत्पन्नो महाराज कुमारदेवस्तस्य पुत्रः तत्पादानुध्यातो

३. महादेव्यां जयस्वामिन्यामुत्पन्नो महाराज जयस्वामि

४. तस्य पुत्रः तत्पादानुध्यातो महादेव्यां रामदेव्यां उत्पन्नो महाराज व्याघ्रस तस्य

५. पुत्रो तत्पादानुध्यातो महादेव्यां अज्झितदेव्यां उत्पन्नो महाराज जय-

६. नाथस तस्य पुत्रस् तत्पादानुध्यातो महादेव्यां मुरुण्डादेव्यां उत्पनो महाराज

७. **सर्वनाथः** कुशली। तमसा नद्या उत्तरपारे आश्रमके ब्राह्मणादिन

८. कुटुम्बिन सर्व्वं कारुणश्च समाज्ञापयति। विदितं वास्तु यथा ऐश

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

९. ग्रामो मया चंद्रार्क समकालीनः सोद्रंगः सोपरिकरः अचाट
१०. भट प्रावेश्यस्चोर दंड वर्जितः चातुर्भि अंशैः प्रतिपादितः
११. अथोंश द्वयं विष्णु नंदिनः अपरोप्यंशः स्वामिनाग पुत्र वणिज
१२. शक्तिनागस्य अपरोप्यंशः कुमारनाग स्कंद नागयोः एतत्
१३. पुत्र प्रपौत्र तत्पुत्रादि अनुक्रमेण ताम्रशासनेन आतिश्रिष्ठः एभिः अपि मया
१४. नुमोदितकं यथोपरिलिखितक क्रमेणैव स्वपुण्याभिवृद्धये स्वप्रति-
१५. ष्ठापितक भगवत पदानां आदित्य भट्टारक पादानांञ्च खंड फुट प्रतिसं-
१६. स्कार करणाय **वलिचारुसत्र** गंधधूप माल्यादिप प्रवर्तनाय चातिश्रेष्ठः

द्वितीय भाप

१७. तै यूयं एषां समुचित भाग भोगकर हिरण्यादि प्रत्यायोपनयं
१८. करिष्यतैज्ञा श्रवण विधेयाश्च भविष्यत येचास्मद वंशोत्पद्य
१९. मानक राजानः तै इयं दत्तैः न विलोप्यानुमोदनिया यथा कालञ्च
२०. प्रतिपालनीया समुचित राजा भाव्य कर प्रत्यायाश्च न ग्राह्यः यः
२१. इमान् दत्तिन् लोपयेत् सः पंचभिर्महापातकैः उपपातकैश्च संयुक्तः
२२. स्माद् उक्तं च महाभारते भगवता वेदव्यासेन व्यासेन स्वदत्तं पर दत्तां
२३. वा यत्नारक्ष युधिष्ठिर। महीम् महीमतां श्रेष्ठः दाना च श्रेयोनुपालम्।
२४. प्रायेण हि नरेन्द्रां विद्यते ना शुभा गतिः पूयन्ते तु सततं।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

२५. प्रयच्छन्तो बसुन्धरां ।। वहुभिः बसुधा भूक्ता राजाभिः सगरादिभिः, यस्य

२६. यस्य यदा भूमिः तस्य तस्य तदा फलम् ।। षष्टि वर्ष सहस्राणि स्वर्गे मोदति

२७. भूमिदः, आच्छेत्ता चानुमंता च तान्येव नरके वसेत् । सर्व्व सस्य समृद्धौ

२८. यो हरेत बसुन्धरां, स्व विष्ठायां कृमिः भूत्वा पितृभिः सह मज्जते ।।

२९. लिखितं संवत्सरे शते त्रिनवत्युत्तरे चैत्रमास दिवसे दशमे

३०. भोगिक फाल्गुदत्तामात्य नपत्रा भोगिक वराहदिन्न पुत्रेण महा

३१. सांधिबिग्रहिक मनोरथेन दूतक महादेव बलाधिकृत क्षत्रिय

३२. शिवगुप्तः

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

महाराजा सर्वनाथ

खोह ताम्रपत्र लेख (गु० सं० १९७)

(प्रथम भाग अप्राप्य)

द्वितीय भाग

१. यथा कालां च प्रतिपालनीया। समुचित राजाभाव्य ; कर प्रत्यायाः

२. ग्राह्याः। य इमान् दत्तिं लोपयेत सः पंचभिर्महापातकैः उपपातकैः

३. च संयुक्तस्याद् उक्तं च महाभारते भगवता वेद व्यासेन व्यासेन

४. स्वदत्तां परदत्तं वा यत्नात् रक्ष युधिष्ठिर महीं महीमतां श्रेष्ठः दाना

५. च श्रेयोनुपालनं। प्रायेणहि नरेन्द्रानां विद्यते न शुभा गतिः

६. पुयन्ते तेतु शततं प्रायच्छन्तो बसुन्धरां। बहुभिः वसुधा भुक्ता राजाभिः सगरादि-

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

७. भिः यस्य यस्य यदा भूमिः
तस्य तस्य तदा फलम् ।
षष्टि वर्ष सहस्राणि

८. स्वर्ग्गे मोदति भूमिदः आच्छेत्ता चानुमत्ता च तान्येव नरके वसेत

९. सर्व्व सस्य समृद्धान्तु यो हरेत वसुन्धरां स्व विष्ठायां कृमिभूत्वा

१०. पितृभिः सह मज्जते। लिखितं संवत्सर शते सप्त नवत्युत्तरे अश्व

११. युज मास दिवसे विंशतिमे भोगिक फाल्गुदत्त आमात्य नयत्रा

१२. भोगिक वराह दिन पुत्रेण महासांधिविग्रहिक **मनोरथेन** ।

१३. दूतकः महावलाधिकृत शिवगुप्तः। हलिराकर खंभ दंड

१४. प्रतिमो मोचनातिलेखिने पि दूतकः उपरिक मातृशिवः।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

महाराजा संक्षोभ का अभिलेख

खोह ताम्रपत्र लेख (गु० सं० २०९)

पहली ओर

१. ओम् नमो भगवते वासुदेवाय ।। स्वस्ति नवोत्तरेब्द(ब्द)-शत-द्वये गुप्त-नृप-र[ा*]ज्य-भुक्तौ

२. श्रीमति प्रवर्द्धमान-विजय-राज्ये महाश्वयुज-स (सं) वत्सरे चैत्र-मास-शुक्ल-

३. पक्ष-त्त्रयोदश्य[ा*]मस्यां संब(व)त्सर-मास-दिवस-पूर्व्वायाा(यां) [तिथौ ।*] चतुर्दश-विद्या-स्थान-विदि-

४. त-परमार्थस्य-कपिलस्य(स्यै)व महर्षेः सर्व-तत्व(त्त्व)ज्ञस्य भर-द्वाज-सगोत्रस्य नृप-

५. पि(ति)-परिव्राजक-सुशर्म्मणः कुलोत्पन्नेन महाराज-श्री-देवाढ्य-पुत्र-प्रनप्त्रा महारा-

६. ज-श्री-प्रभञ्जन-प्रनप्त्रा महाराज-श्री-दामोदर-नप्त्रा गो-सहस्र-हस्त्यश्व-हिरण्यानेक-

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

७. भूमि-प्रदस्य गुरु-पितृ-मातृ-पूजा-तत्परस्यात्यन्त-देव-ब्रा(ब्रा)ह्मण-भक्तस्यानेक-समर-

८. शत-विजयिनः साष्टादशाटवीराज्याभ्यन्तरं **डभा(? हा)ला**-राज्यमन्वयागतं समदि(? सम्यक्, सम्पदि और सपदि ?)

९. पालयिष्णो(ष्णो)रनेक-गुण-विख्यात-यशसो महाराज-श्री(श्री)-**हस्तिनः** सुतेन

१०. वर्ण्णाश्रम-धर्म्म-स्थापना-निरतेन परम-भागवतेनात्यन्त-पितृ-भक्तेन स्व-वं-

११. शामोद-करेण महाराज-श्री-**संक्षोभेन**(ण) मातापित्रोरात्मनश्च-पुण्याभि-

१२. व्रिर्द्धं(वृद्ध)ये छोड्डुगोमि-विंज्ञा (ज्ञ)प्त्या तमेव च स्वग्ग(र्ग्ग)-सो-पान-पंक्तिमारोपय-

दूसरी ओर

१३. ता भगवत्याः पिष्टपुर्याः कारितक-देवकुले व(ब)लि-चरु-सत्रो-(त्रो)पयो-

१४. गार्थः(र्थं) खण्ड-स्फुटित-संस्कारार्थञ्च मणिनाग-पेठे ओपाणि-ग्राम-

१५. स्यार्द्धं चोर-द्रोहक-वर्ज्जः(वर्ज्जं) ताम्रशासनेनातिसृष्टं(टम्) [।*] तदस्मत्कुलोत्थौः(त्थैः) म-

१६. त्पाद-पिण्डोपजीविभिर्व्वा कालान्तरेष्वपि न व्याघातः कार्य्यः[।*] एवमाज्ञा (ज्ञ)-

१७. प्त(प्ते) यो [ऽ*]न्यथा कुर्यात्तमहं देहान्तर-गतो [ऽ*]पि महता [ऽ*]वध्यानेन निर्द्दहेयं(यम्) [॥*]

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

१८. उक्तं च भगवता परमर्षिणा वेदव्यासेन व्यासेनः(न) [।*] पूर्व्वं-
दत्तां द्विजातिभ्यो

१९. यत्नाद्रक्ष युधिष्ठिरः(र) [।*] महीम्महिमता(तां)श्रेष्ठ दानाच्छ्रे-
यो [ऽ*]नुपालनः (नम्) [॥१*] व(ब)हुभिः

२०. वसुधा भुक्ता राजभिस्सगरादिभिः [।*] यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य
तस्य तदा

२१. फलं(लम्) [॥२*] षष्ठि वर्ष-सहस्राणि स्वर्ग्गे मोदति भूमिदः
[।*] आक्षेप्ता चानुमन्ता च तान्ये-

२२. व नरके वसेत् [॥३*] भूमि-प्रदानान्ना(न्न) परं प्रदानं दानाद्वि-
शिष्टं परिपालनञ्छ(ञ्च) [।*]

२३. सर्व्वे [ऽ*]तिसृष्टा(ष्टां) परिपाल्य भूमि(मिं) नृपा नृगाद्यास्त्रिदिवं
प्रपन्नाः ॥ लिखितं ञ्च (च)

२४. जीवित-नप्त्रा भुजंगदास-पुत्रेश्वरीदासेनेति [।*] स्व-मुखाज्ञा [।*]
चैत्र-दि २० ८ [॥*]

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

महाराज सर्वनाथ अभिलेख

खोह ताम्रपत्र लेख तिथि (गु० स० २१४)

(प्रथम भाग)

१. ओं स्वस्त्य। उच्छकल्पान् महाराजा औद्यदेवस तस्य पुत्रः तत्पादानुध्यातो महादेव्यां
२. कुमारदेव्यां उत्पन्नो महाराज कुमारदेवस तस्य पुत्रः तत्पादानु-ध्यातो
३. महाँदेव्यां जयस्वामिन्यां उत्पनो महाराज जयस्वामि तस्य पुत्रः तत्पादा
४. नुध्यातो महादेव्यां रामदेव्यां उत्पन्नो महाराज व्याघ्रस तस्य पुत्रः तत्पादानुध्यातो
५. महादेव्यां अम्झितदेव्यां उत्पन्नो महाराज जयनाथस तस्य पुत्रः तत्पादानु
६. ध्यातो महादेव्यां मुरुण्डस्वामिन्यां उत्पन्नो महाराज सर्व्वनाथः कुशली मनि

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

७. नागापट्टे व्याघ्रपालिक काचरपाल्लिक ग्रामयोः ब्राह्मणादि प्रतिवासिनः

८. समाज्ञापयति। विदितं वो स्तु यथैशग्रामो मया सोद्रंगौ सोपरिकरौ

९. अचाट भट प्रावेश्यो राजाभाव्य सर्व्वंकर प्रत्यायोत्पन्न कोटपद्ममानक समेतौ

१०. आचंद्रार्क समकालीकौ चोरदंड वर्ज्जितौ पुलिंद भटस्य प्रसादीकृतौ

११. तेनापि कानपुरे कारितक देवकुले भगवत्याः पुष्ठपुरिका देव्याः पूजा

१२. निमित्तेन खंड स्फुट प्रति संस्कारणाय च कुमारस्वामिने पुत्र पौत्रान्वयोप

१३. भोज्यो प्रतिपादितौ। मयापि भूमिच्छिद्र न्यायेन ताम्रशासने अनुमोदितौ।

१४. ते यूमं एवं उपलभ्याज्ञा श्रवण विधेया भूत्वा समुचित भागभोग्न कर हिरण्या

१५. वातायादि प्रत्यायन् उपनेश्यक।

(द्वितीय भाग)

१६. ये चास्मद् वंशोत्पद्य मानक राजा न स्तैरियं दत्तिर्न्न विलोप्या यथा कालं संवर्द्धनिया

१७. अनुमोदनिया परियालनिया च राजाभाव्य कर प्रत्यायाः सर्व्वें न ग्राह्या।

१८. यश्चैतां दत्ति लोपयेत सः पंचभिः महापातकैः उपपातकैश्च

१९. संयुक्तो भूयात्

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

२०. उक्तं च महाभारते शतसाहस्रयां संहितायां परमर्शिना पराशर सुतेन

२१. वेद व्यासेन व्यासेन। पूर्व्वदत्तं द्विजातिभ्यो यत्नात्रक्ष युधिष्ठिर महीं मही-

२२. वतां श्रेष्ठ दानाच्छ्रेयोनुपालनम् ॥ प्रायेण हि नरेन्द्रानां विद्यते नाशुभा

२३. गतिः पूयन्तेन ते तौ सततं प्रयच्छन्तो वसुन्धराम् ॥ बहुभिर्व्वसुधा भुक्ता **राजभिः** सगरादिभिः

२४. यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलम् ॥ षष्ठि वर्ष सहस्रांणि

२५. स्वर्गे मोदति भूमिदः आचेप्ता चानुमंता च तान्येव नरके वसेत्।

२६. स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत वसुन्धरां, स्वविष्ठायां कृमिर्भूत्वा पितृभिः सह

२७. मज्जति। अपानयेश्वरण्येशु शुष्क कोटर वासिनः, कृष्णाहयो हि जायन्ते

२८. पूर्व्वं दायं हरन्तिये। लिखितं संवत्सरे शत द्वये चतुर्द्दशोत्तरे

२९. पौष मास दिवसे षष्ठे फलगुदत्तामात्य प्रनप्ता वराह दिन **नप्रा**

३०. मनोरथ सुत्तेन सांधिविग्रहिक नाथेन दूतको धृतिस्वामिकः।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

भूमरा शिलास्तंभ अभिलेख

महाराज हस्तिन एवं महाराज सर्वनाथ

१. स्वस्ति महादेव पादानुध्यातो
२. महाराज हस्तिन
३. राज्ये आम्लोदे महाराज
४. सर्वनाथ भागे इदन
५. न पूत्रा वासुग्रामिक पुत्र
६. शिवदासेन वल
७. यष्टि उच्छ्रितः । महा माधे
८. संतत्सरे कार्तिक मास
९. दिवस १० ९

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

समसामयिक नरेशों के अभिलेख

यशोधर्मन का मंदसोर लेख (मा० स० ५८९)

१. स जयति जयतां पतिः **पिनाकी**
स्मित-रव-गीतिषु यस्य दन्त-कान्तिः ।
द्युतिरिव तडितां निशि स्फुरन्ती
तिरयति च स्फुटयत्यदश्च विश्वम् ॥१
स्वयम्भू र्भूतानां स्थिति लय सभु
२. त्पत्ति-विधिषु
प्रयुक्तो येनाज्ञां वहति भुवनानां विधृतये ।
पितृत्वं चानीतो जगति गरिमाणं गमयता
स शम्भूर्भूयान्सि प्रतिदशतु भद्राणि भव[ताम्*] ॥२
फण-मणि-गुरुभार[ाक्रा]-
३. न्ति-दूरावनम्रं
स्थगयति रुचमिन्दोर्म्मण्डलं यस्य मूर्ध्नाम् [।*]
स शिरसि विनिबध्ननूध्रनीमस्थिमालां

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

सृजतु भव-सृजो वः क्लेश-भङ्गं भुजङ्गः ।।३
पष्ठ्या सहस्रैः सगरात्मजानां
खात[ः*]

४. ख-तुल्यां रुचमादधानः ।
अस्योदपानाधिपतेश्चिराय
यशान्सि पायात्पयसां विधाता ।।४
अथ जयति जनेन्द्रः श्री-**यशोधर्म्म**-नामा ।
प्रमद-वनमिवान्तः शत्रु-सैन्यं विगाह्य [।*]
व्रण-

५. किसलय-भङ्गैर्य्यो[ऽ*] ङ्ग भूषां विधत्ते
तरुण-तरु-लटावद्वीर-कीर्त्तीर्व्विनाम्य ।।५
आजो जिती विजयते जगतीम्पुनश्च
श्री**विष्णुवर्द्धन**-नराधिपतिः स एव ।
प्रख्यात औलिकर-लाञ्छन आत्म-

६. वङ्शो
येनोदितोदित-पदं गमितो गरीयः ।।६
प्राचो नृपान्सुबृहतश्च बहूनु**दीचः**
साम्ना युधा च वशगान्प्रविधाय येन [।*]
नामापरं जगति कान्तमदो दुरापं
राजाधिराज-परमे-

७. **श्वर** इत्युदूढम् ।।७
स्निग्ध-श्यामाम्बुदाभैः स्थगित-दिनकृतो यज्वनामाज्य-धूम्रै-
रम्भोमेघ्यं मघोनावधिषु विदधता गाढ-सम्पन्न-सस्याः ।
संहर्षाद्वाणिनीनां कर-रभस-हृतो-

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

८. द्यानचूताङ्कराग्रा

राजन्वन्तो रमन्ते भुज-विजित-भुवा भूरयो येन- देशाः ॥८

यस्योत्केतुभिरुन्मद-द्विप-कर-व्याविद्ध-लोध्र-द्रुमै-

रुद्धूतेन वनाध्वनि ध्वनि-नदद्विन्ध्याद्रि-रन्ध्रैर्ब्बलैः [।*]

बाले

९. य-च्छवि-धूमरेण रजसा मन्दांशु संलक्ष्यते

पर्य्यावृत्त-शिखण्डि-चन्द्रक इव ध्यामं रवेर्मण्डलम् ॥९

तस्य प्रभोर्व्वंशकृतां नृपाणां

पादाश्रयाद्विश्रुत-पुण्य-कीर्त्तिः ।

भृत्यः ख-नैभृत्य-जिता-

१०. रि-षट्क

आसीद्वसीयान्किल षष्ठिदत्तः ॥१०

हिमवत इव गाङ्गस्तुङ्ग-नम्रः प्रवाहः

शशभृत इव रेवा-वारि-राशिः प्रथीयान् [।*]

परमभिगमनीयः शुद्धिमानन्ववायो

यत उदित-गरि-

११. म्णस्तायते नैगमानाम् ॥११

तस्यानुकूलः कुलजात्कलत्रा-

त्सुतः प्रसूतो यशसां प्रसूतिः ।

हरेरिवांशं वशिनं वराहं

वराहदासं यमुदाहरन्ति ॥१२

सुकृति-विषयि-तुङ्गं रुढमूलं

१२. धरायां

स्थितिमपगतभङ्गां स्थेयसीमादधानम् [।*]

गुरु-शिखरमिवाद्रेस्तत्कुलं स्वात्म-भूत्या

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

रविरिव रविकीर्त्तिःसुप्रकाशं व्यधत्त ।।१३
बिभ्रता शुभ्रमभ्रङ्-िश स्मार्त्तं वर्त्मोचितं सताम् [।*]
न विसंब्बा-

१३. दिता येन कलावपि कुलीनता ।।१४
धुत-धीदीधिति-ध्वान्तान्हविर्भुज इवाध्वरान् [।*]
भानुगुप्ता ततः साध्वी तनयांस्त्रीनजीजनत् ।।१५
भगवद्दोष इत्यासीत्प्रथमः कार्य्यवर्त्मसु ।
आल-

१४. म्बनं बान्धवानामन्धकानामिवोद्धवः ।।१६
बहु-नय-विधि-वेधा गह्वरे(ऽ*)प्यर्थ-मार्ग्गे
विदुर इव विदूरं प्रेक्षमाणाः ।
वचन-रचन-बन्धे संस्कृत-प्राकृते यः
कविभिरुदि-

१५. त-रागं गीयते गीरभिज्ञः ।।१७
प्रणिधि-दृगनुगन्त्रा यस्य बौद्धेन चाक्ष्णा
न निशि तनु दवीयो वास्त्यदृष्टं धरित्र्याम् [।*]
पदमुदयि दधानो(ऽ*)नन्तरं तस्य चाभू-
त्स भयम**भयदत्तो** नाम

१६. वि[घ्न]न्प्रजानाम् ।।१८
विन्ध्यस्यावन्ध्य-कर्म्मा शिखर-तट-पतत्पाण्डु-**रेवा**म्बुराशे-
र्ग्गो-लाङ्गूलैःसहेल-प्लुति-नमित-तरोः**पारियात्र**स्य चाद्रेः ।
आ **सिन्धो**रन्तरालं निज-शुचि-सचिवाद्ध्या-

१७. सितानेक-देशं/
राजस्थानीय-वृत्या सुरगुरुरिव यो वर्ण्णिनां भूतये(ऽ*) पात् ।।१९

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

विहित-सकल-वर्ण्णासङ्करं शान्त-डिम्बं
कृत इव कृतमेतद्येन राज्यं निराधि ।
स धुरमयमिदानीं

१८. दोषकुम्भस्य सूनु-
गुरु वहति तदूढां धर्म्मतो **धर्म्मदोषः** ।।२०
स्व-सुखमनभिवाच्छन्दुर्ग्गमे(ऽ*)द्ध्वन्यसङ्गां
धुरमतिगुरुभारां यो दधद्भर्त्तुरर्थे ।
वंहति नृपति-वेषं केवलं लक्ष्म-मात्रं

१९. वलिनमिव विलम्बं कम्बलं बाहुलेयः ।।२१
उपहित-हित-रक्षमण्डनो जाति-रत्नै-
र्भुज इव पृथुलांसस्तस्य **दक्षः** कनीयान् [।*]
महदिदमुदपानं खानयामास बिभ्र-

२०. च्छ्रुति-हृदय-नितान्तानन्दि **निर्द्दोष**-नामा ।।२२
सुखाश्रय-च्छायं परिणति-हित-स्वादु-फलदं
गजेन्द्रेणारुग्णं द्रुममिव कृतान्तेन बलिना ।
पितृव्यं प्रोद्दिश्य प्रियम**भयदत्तं** पृ-

२१. थु-धिया
प्रथीयस्तेनेदं कुशलमिह कर्म्मोपरचितं ।।२३
पञ्चसु शतेषु शरदां यातेष्वेकान्ननवति-सहितेषु ।
मालव-गण-स्थिति-वशात्काल-ज्ञानाय लिखितेषु ।।२४
य-

२२. स्मिन्काले कल-मृदु-गिरां कोकिलानां प्रलापा
भिन्दन्तीव स्मर-शर-निभाः प्रोषितानां मनांसि ।
भृङ्गालीनां ध्वनिरनुवनं भार-मन्द्रश्च यस्मि-

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

न्नाधूत-ज्यं धनुरिव नदच्छ्रूयते पुष्प-
२३. केतोः ॥२५
प्रियतम-कुपितानां कम्पयन्वद्धराग
किसलयमिव मुग्धं मानसं मानिनीनां [।*]
उपनयति नभस्वान्मान-भङ्गाय यस्मि-
न्कुसुम-समय-मासे तत्र निर्म्मापितो(ऽ*)यम् ॥२६
२४. यावत्तुङ्गैरुदन्वान्किरण-समुदयं सङ्ग-कान्तं तरङ्गै-
रालिङ्गन्निन्दु-बिम्बं गुरुभिरिव भुजैः संविधत्ते सुहृत्ताम् [।*]
बिभ्रत्सौधान्त-लेखा-वलय-परिगतिं मण्डमालामिवायं
सत्कूपस्तावदा-
२५. स्ताममृत-सम-रस-स्वच्छ-विष्यन्दिताम्बुः ॥२७
धीमां दक्षो दक्षिणः सत्यसन्धो
ह्रीमांच्छूरो वृद्ध-सेवी कृतज्ञः ।
बद्धोत्साहः स्वामि-कार्य्येष्वखेदी
निर्द्दोषो(ऽ*)यं पातु धर्म्मं चिराय ॥२८
उत्कीर्ण्णा गोविन्देन ॥

यशोधर्मन का मंदसोर स्तंभ लेख

१. वेपन्ते यस्य भीम-स्तनित-भय-समुद्भ्रान्त-दैत्या दिगन्ताः
शृङ्गाघातैः सुमेरोर्व्विघटित-दृषदः कन्दरा यः करोति ।
उक्षाणं तं दधानः क्षितिधर-तनया-दत्त-[पञ्चाङ्गुला]ङ्कं
द्राधिष्ठः शूलपाणेः क्षपयतु भवतां शत्रु-तेजाङ्सि केतुः ॥
२. आविर्भूतावलेपैरविनय-पटुभिर्ल्लङ्घिताचार-[मा]र्गै-
र्म्मोहादैदं-युगीनैरपशुभ-रतिभिः पीड्यमाना नरेन्द्रैः ।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

यस्य क्ष्मा शार्ङ्गपाणेरिव कठिन-धनुर्ज्या-किणा[ङ्क]-प्रकोष्ठ[ं]
बाहुं लोकोपकार-व्रत-सफल-परिस्पन्द-धीरं प्रपन्ना ।।२

३. निन्द्याचारेषु यो(ऽ॥)स्मिन्विनय-मुषि युगे कल्पना-मात्त्र-वृत्या
राजस्वन्येषु पाङ्सुष्विव कुसुम-बलिर्न्नाविभासे प्रयुक्तः ।
स श्रेयो-धाम्नि सम्राडिति मनु-भरतालर्क्क-[मान्धा]तृ-कल्पे
कल्याणें हेम्नि भास्वान्मणिरिव सुतरां भ्राजते यत्र शब्दः ।।३

४. ये भुक्ता गुप्त-नाथैर्न्न सकल-वसुधाक्क्रान्ति-दृष्ट-प्रतापै-
र्न्नाज्ञा हूणाधिपाना[ं] क्षितिपति-मुकुटाद्ध्यासिनी यान्प्रविष्टा ।।
देशांस्तान्धन्व-शैल-द्रुम-शहन-सरिद्वीरबाहूपगूढा-
न्वीर्य्यावस्कन्न-राज्ञः स्व-गृह-परिसरावज्ञया यो भुनक्ति ।।४

५. आ लौहित्यौपकण्ठात्तलवन-गह[नो]पत्यकादा महेन्द्रा-
दा गङ्गाश्लिष्ट-सानोस्तुहिनशिखरिणः पश्चिमादा पयोधेः ।
सामन्तैर्यस्य बाहु-द्रविण-हृत-म[दै]ः पादयोरानमद्भि-
श्चूडा-रत्नाङ्शु-राजि-व्यतिकर-शबला भूमि-भागाः क्रियन्ते ।।५

६. स्थाणोरन्यत्र येन प्रणति-कृपणतां प्रापितं नोत्तमाङ्गं
यस्याश्लिष्टो भुजाभ्यां वहति हिमगिरिदुर्ग्ग-शब्दाभिमान[म्] ।
नोचैस्तेनापि यस्य प्रणति-भुजबलावर्ज्जन-क्लिष्ट-मूर्द्ध्ना
[चू]डा-पुष्पोपहारैर्म्मिहिरकुल-नृपेणार्च्चित[ं] पाद-युग्मं ।।६

७. [गा॥]मेवोन्मातुमूर्द्ध्वं विगणयितुमिव ज्योतिषां चक्क्रवालं
निर्द्देष्टुं मार्ग्गमुच्चैर्द्दिव इव [स]कृतोपार्ज्जितायाः स्व-कीर्त्तेः ।
तेनाकल्पान्त-कालावधिरवनिभुजा श्री-यशोधर्म्मणायं
स्तम्भः स्तम्भाभिराम-स्थिर-भुज-परिघेणोच्छ्रितिं नायितो(ऽ॥)त्र ।।७

८. [श्ला]घ्ये जन्मास्य वङ्शे चरितमघहरं दृश्यते कान्तमस्मि-

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

न्धर्म्मस्यायं निकेतश्चलति नियमितं नामुना लोकवृत्तम् [।*]
इत्युकर्षं गुणानां लिखितुमिव **यशोधर्म्मणश्**चन्द्र-बिम्बे
रागादुत्क्षिप्त उच्चैर्भुज इव रुचिमान्यः पृथिव्या विभाति ॥८

९. इति तुष्टूषया तस्य नृपतेः पुण्यकर्म्मणः ।
वासुलेनोपरचिताः श्लोकाः कक्कस्य सूनुना ॥९
उत्कीर्ण्णा गोविन्देन ॥

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

हूण नरेशों के अभिलेख

तोरमाण का एरण वराहमूर्त्ति लेख

१. १॰ [।।*]
जयति धरण्युद्धरणे घन-घोणाघात-घूर्ण्णित-महीध्रः [।*]१
देवो **वराहमूर्त्तिस्**त्रैलोक्य-महागृह-स्तम्भः [।।*]
वर्षे प्रथमे पृथिवी[म्]

२. पृथु-कीर्त्तौ पृथु-द्युतौ [।*]
महाराजाधिराज-श्री**तोरमाणे** प्रशासति । [।*]२
फाल्गुन-दिवसे दशमे । इत्येवं राज्य-वर्ष-मास-दिनैः [।*]
एतस्यां

३. पूर्व्वायाम् । स्व-लक्षणैर्युक्त-पूर्व्वायाम् । [*]३
स्वकर्म्माभिरतस्य क्रतुयाजिनो(ऽ*)धीत-स्वाध्यायस्य विप्रर्षेर्म्मैत्रायणीय-वृषभस्येन्द्र-विष्णोः प्रपौत्रस्य ।

४. पितुर्गुणानुकारिणो वरुणविष्णोः पौत्रस्य पितरमनुजातस्य स्ववंश-वृद्धि-हेतोर्हरिविष्णोः पुत्रस्यात्यन्त-भगवद्भक्तस्य विधातुरिच्छया ।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

५. स्वयंवरयेव राजलक्ष्म्याधिगतस्य चतुःसमुद्र-पर्यन्त-प्रथितयशसः अक्षीण - मान[ध]न-स्यानेक - शत्रु-समर - जिष्णोः महार(ा*)ज-**मातृविष्णोः**

६. स्वर्ग्गतस्य भ्रात्रानुजेन। तदनुविधायिना तत्प्रसाद-परिगृहीतेन **धन्यविष्णुना** तेनैव [स] हाविभक्त-पुण्यक्रियेण मातापित्त्रोः

७. पुण्याप्यायनार्थमेष भगवतो **वराहमूर्त्ते**र्ज्जगत्परायणस्य **नारायणस्य** शिला-प्रा [सादः] स्व-विष[ये](ऽ*) स्मिन्**नैरिकिणे** कारितः। [।*]

८. स्वस्त्यस्तु गो-ब्राह्मण-पुरोगाभ्यः सर्व्व-प्रजा [भ्य इ] ति ।।

तोरमाण का कुरा शिलालेख

१. [१॰*] [राजाधि*]राज-महाराज-**तोरमाण-षा[हि]**-जऊ[ब्लस्याभि-वर्ध*] [मान-राज्ये] * * [संवत्सरे*]

२. * * * * मे मार्गशिर-मासःशुक्ल-द्वितीयायाम् चन्द्र [मग्र ?] * * * * * * गग[न*]-

३. [चरे च] वर*शुचि-शात-ध्यानाध्ययन-मोक्ष-चित्तानुकूले प्र [दिष्ट] * * * * * * * * [न*]-

४. क्षत्रे भगवतो **बुद्धस्य** देवातिदेवस्य सर्वपापपरिक्षीण-सर्वपुण्यसमुद्गत [स्य]

५. तीर्ण-स(ं *)साराणंव(स्य*) सत्वानां तारयिता दशबल-बलिन(: *) चतुवैशारद्य-चतस्रप्रतिसं [भिदा]-

६. अष्टादशावेणीकाद्भु्त-धर्म-समन्वागतस्य सर्वसत्ववत्सल-महाकारुणि-कस्य बु-

७. द्धप्रमुख-चातुर्दिशे भिक्षु-संघे देयधर्मो(ऽ*)य(ं*) विहार(:*)प्रतिष्ठापन **नश्चीर-पति-प्रशस्ता-**

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

८. दारित-नामधेय-विशेषवृद्धिः रोट्ट-जयवृद्धि अनेक-विहार-स्वामिनो सत्पुत्रेण [।*] यदत्र पुण्यं तद्भवतु

९. [मा]तापित्रो(:*) आपायक-पोषक(योः*) चित्रस्य **जंबुद्वीपस्य** दर्शयितारो अग्र्ें-भावप्रत्यंशतायास्तु तथा विहार-स्वामिनो

१०. रोट-सिद्धवृद्धि सर्वेषां भ्रातराणां भगिनीनां पत्नीनां पुत्राणां दुहितृणां महाराज-**तोरमाण षाह-जऊव्लः** स-

११. र्वेषा देवानां राजपुत्राणां राजदुहितानां च सर्व-सत्वानां अनुत्तर-ज्ञानावाप्तये [।*] अयं पुन(:*) विहारस्यो-

१२. पकरण चातुर्दिशे भिक्षुसंघे परिग्रहे आचय(र्णां*) [म]हीश[ासकानां [।*] [साद्धक-पु]- * * त्रेण* [आचार्यं]-

१३. ... ...

मिहिर कुल की ग्वालियर प्रशस्ति

१. [१ँ ।। स्वस्ति ।।*]
[ज*] [य] ति जलद-वल-ध्वान्तमुत्सारयन्स्वैः
किरण-निवह-जालैर्व्योम विद्योतयद्भिः [।*]
उ[दय*]-[गिरि]-तटाग्र[ं*] मण्डयन् यस्तुर(ं*)गैः
चकित-गमन-खेद-भ्रान्त-चंचत्सटान्तैः । [।*]१
उदय-[गिरि]-

२. ⏑ — — ग्रस्त-चक्रो(ऽ*)र्त्ति-हर्त्ता
भुवन-भवन-दीपः शर्व्वरी-नाश-हेतुः [।*]
तपित-कनक-वर्णैरंशुभिः पङ्कजाना(।*)-
मभिनव-रमणीयं यो विधत्ते स वो(ऽ*)व्यात् । [।*]२
श्री-**तोर[माण** इ*]ति यः प्रथितो

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

३. [भूचक*]पः प्रभूत-गुणः [।*]

सत्यप्रदान-शौर्य्याद्येन मही न्यायत[ः] शास्ता [।।*]३

तस्योदित-कुल-कीर्त्तेः पुत्रो(ऽ*)तुल-विक्रमः पतिः पृथ्व्याः [।*]

मिहिरकुलेतिख्यातो(ऽ*)भङ्गो यः **पशुपतिम** * * * [।।*]४

४. [तस्मिन्रा*]जनि शासति पृथ्वीं पृथु-विमल-लोचने(ऽ*)र्त्तिहरे [।*]

अभिवर्द्धमान-राज्ये **पंचदशाब्दे** नृप-वृषस्य । [।*]५

शशिरश्मिहास-विकसित-कुमुदोत्पल-गण्ध-शीतलामोदे [।*]

कार्त्तिक-मासे प्राप्त गगन-

५. [पतौ*] [नि*]र्म्मले भाति । [।*]६

द्विज-गण-मुख्यैरभिसंस्तुते च पुण्याह-नाद-घोषेण [।*]

तिथि-नक्षत्र-मुहूर्त्ते संप्राप्ते सुप्रशस्त-[दिने] । [।*]७

मातुतुलस्य तु पौत्रः पुत्रश्च तथैव मातृदासस्य [।*]

नाम्ना च **मातृचेटः** पर्व्व-

६. [त-दुर्ग*][।नु]वास्तव्यः [।।*]८

नानाधातु-विचित्रे **गोपाह्वय**-नाम्नि भूधरे रम्ये [।*]

कारितवान्शैलमयं भानोः प्रासाद-वर-मुख्यम् । [।*]९

पुण्याभिवृद्धिहेतोर्म्मातापित्रोस्तथात्मनश्चैव [।*]

वसता(ं*) च गिरिवरे(ऽ*)स्मि(न्*) राज्ञः

७. * * * [पा?]देन [।।*]१०

ये कारयन्ति भानोश्चन्द्रांशु-सम-प्रभं गृह-प्रवरं [।*]

तेषां वासः स्वर्ग्गे यावत्कल्प-क्षयो भवति ।।११

भक्त्या रवेर्व्विरचितं सद्धर्म्म-ख्यापनं सुकीर्त्तिमयं [।*]

नाम्ना च केशवेतिप्रथितेन च ।

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

८. * * * [दि?]त्येन ।।*१२

यावच्छर्व्व-जटा-कलाप-गहने विद्योतते चन्द्रमा
दिव्यस्त्री-चरणैर्व्विभूषित-तटो यावच्च मेरुर्नगः [।*]
यावच्चोरसि नील-नीरद-निभे विष्णुर्व्विभर्त्युज्वलां
श्रीस्तावग्दिरि-मूर्ध्नि तिष्ठति
[शिला-प्रा*]साद-मुख्यो रमे [।।*]१३

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

नालंदा की गुप्त वंशी मुहरें

नरसिंह गुप्त की मुहर

... ... व्याम अप्रतिरथस्य महाराजा श्री गुप्त प्रपौत्रस्य महाराजा श्री घटोत्कच पौत्र ... ... श्री चंद्रगुप्त पुत्रस्य लिच्छवि दौहित्रस्य महादेव्यां कुमार देव्यां उत्पन्नः श्री समुद्र गुप्तस्य पुत्र तत् परिग्रहितो महादेव्यां दत्तदेव्यां उत्पन्नः परम भागवतो महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त-स्तस्य पुत्रः तत्पादानु ... ... ध्रुवदेवव्यामुत्पन्नो महाराजाधिराज श्री कुमार गुप्तः तस्य पुत्रः ... ... देव्यां अनंतदेव्यां उत्पन्नः महाराजाधिराज श्री पुरुगुप्तः तस्य पु ... ... महादेव्यां श्री वैन्यदेव्यां उत्पन्नः परमभागवत ... ... श्री नरसिंह गुप्तः

द्वितीय कुमार गुप्त की नालदा मुहर

सर्वराजोच्छेतुः पृथिव्यां अप्रतिरथस्य महाराज श्री गुप्त प्रपौत्रस्य महाराज श्री घटोत्कच पौत्रस्य महाराजाधिराज श्री चंद्र गुप्त पुत्रस्य लिच्छवि दौहित्रस्य महादेव्यां कुमार देव्यां उत्पन्नस्य महाराजाधिराज श्री समुद्र गुप्तस्य पुत्रः तत्परिगृहितो महादेव्यां दत्तदेव्यां उत्पन्नः

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. ISarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. 1Sarai(CSDS) Collection. Digitized by eGangotri